अध्याय - 1

कब, कहाँ और कैसे

पिछली कक्षाओं में हमने यह जाना है कि अध्ययन की सुविधा के लिए इतिहास को प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक, तीन कालखण्डों में बाँटा गया है। कक्षा छह में आपने प्राचीन एवं कक्षा सात में मध्यकाल में हुए मुख्य परिवर्तनों एवं विशेषताओं के बारे में जाना। अब कक्षा आठ में हम मुख्य रूप से आधुनिक काल में हुए परिवर्तनों और उनकी जानकारी हमें जिन स्रोतों से मिलती है उनके बारे में जानेंगे। प्रत्येक काल में होने वाले परिवर्तन ही उस काल की विशेषता होती है। आप यह भी जानते हैं कि हमारी दुनिया शुरू से लेकर आज तक कभी भी स्थिर नहीं रही। यह हमलोगों के सामूहिक क्रिया कलापों के कारण हमेशा बदलती रहती है। इन बदलावों के कारण हमारे समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति, कला, संस्कृति, आदि प्रायः सभी क्षेत्रों में परिवर्तन होते रहते हैं।

आप कक्षा छह एवं सात में पढ़ी गई बातों के आधार पर चर्चा करें –

1. **प्राचीन काल में मनुष्य की जिंदगी में आने वाले पांच मुख्य परिवर्तन क्या हो सकते हैं?**
2. **मध्य काल में सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में आए पांच मुख्य परिवर्तन क्या हो सकते हैं?**

आधुनिक युग में भी बहुत सारे परिवर्तन हुए। ये परिवर्तन हमारे देश के साथ–साथ दुनिया के अन्य भागों में भी हुए। ये परिवर्तन कब और कैसे शुरू हुए और उन्होंने दुनिया को किस तरह प्रभावित किया, आइए इसे समझने का प्रयास करें।

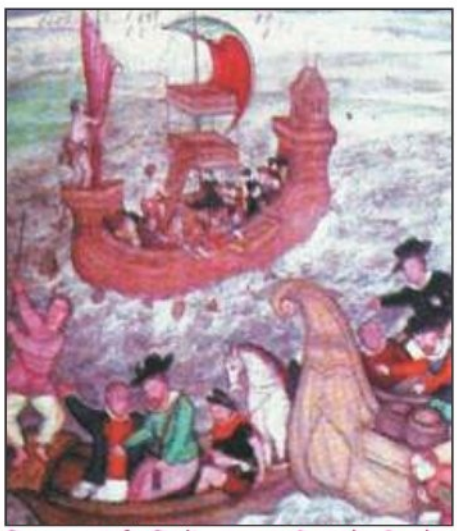
पुनर्जागरण

आधुनिक युग को जन्म देने वाले अनेक परिवर्तनों की शुरूआत सबसे पहले यूरोप में हुई। पन्द्रहवीं शताब्दी में इटली में एक नया आंदोलन आरंभ हुआ, जिसे 'पुनर्जागरण' कहा

जाता है। इस आंदोलन ने लोगों को स्वतंत्र रूप से सोचने और पहले से चले आ रहे सिद्धांतों पर प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित किया। फलतः वैज्ञानिक पद्धति का प्रसार हुआ। वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ है प्रश्न प्रस्तुत करके प्रयोग द्वारा सत्य को जानना। प्रश्न चिह्न लगाने की इस आजादी ने लोगों को अपने ही शासकों के प्रति आवाज बुलंद करने के लिए भी प्रेरित किया। धार्मिक क्षेत्र में भी लोग अंधविश्वास पर आधारित आपत्तिजनक प्रयासों के खिलाफ आवाज उठाने लगे। व्यापार–संबंधों और अन्य सम्पर्कों के जरिए इस दृष्टिकोण का धीरे–धीरे दुनिया के अन्य भागों में भी विस्तार हुआ।

खोज यात्राएं

सीमित मान्यताओं की सच्चाई जांचने के साथ–साथ इस वक्त नई चीजों को खोजने के भी काफी प्रयास किये गए। इसी समय अपने इलाके से बाहर की दुनिया के बारे में जानने का भी प्रचलन हुआ। इसके अन्तर्गत यूरोप के नाविकों और नौचालकों ने दुनिया के अन्य देशों तक पहुँचने के प्रयास भुरू किए। एशिया और अमेरिका के देशों तक पहुँचने के लिए समुद्री मार्गों की खोज भी इन्हीं प्रयासों का परिणाम थी। इन प्रयासों से यूरोप के लोग कुछ ऐसे देशों तक भी पहुंच पाये जिनके बारे में उन्हें और दुनिया के बहुत सारे लोगों को कोई जानकारी नहीं थी। आपने स्पेन के प्रसिद्ध नाविक कोलंबस के बारे में सुना होगा जिसने इसी समय 1492 ई. में अमेरिका महाद्वीप की खोज की। पुर्तगाल के नाविक वास्कोडिगामा के बारे में भी आपने सुना होगा कि उसने 1498 ई. में यूरोप से भारत तक के समुद्री मार्ग की खोज की थी। (इसके बारे में विशेष रूप से इकाई–2 में पढ़ेंगे) नये मार्गों और



चित्र 1 – पुर्तगालियों द्वारा समुद्री रास्ते की खोज



चित्र 2 – वास्कोडिगामा

भू–भागों की खोज का एक परिणाम यह हुआ कि यूरोप के देशों का इन नए देशों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित हुआ।

पूंजीवाद एवं औद्योगिक क्रांति

इन व्यापारिक संबंधों से यूरोप के व्यापारियों ने बहुत लाभ कमाया। लाभ होने के कारण धीरे–धीरे इनके पास पूँजी जमा होने लगी। इस पूँजी को उन्होंने पुनः व्यापार में लगाया। इस प्रकार पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप में एक नयी सामाजिक व्यवस्था का जन्म हुआ, जिसे 'पूंजीवाद' कहते हैं। इस नयी सामाजिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता थी पूंजीपतियों और श्रमिकों के दो नये वर्गों का उदय। पूंजीपति व्यापार के लिए तैयार होनेवाली वस्तुओं के मालिक थे और उनका मुख्य उद्देश्य था मुनाफा कमाना। श्रमिक लोग वस्तुओं का उत्पादन करते थे और पूंजीपतियों से वेतन प्राप्त करते थे। पूंजीवाद के विकास के साथ–साथ उत्पादन के तरीकों में भी परिवर्तन होने लगा। आपको याद होगा कि मध्यकाल में कपड़े जुलाहे अपने हाथों से बनाते थे। आधुनिक युग में कपड़े जुलाहे के अतिरिक्त मशीनों से भी तैयार किये जाने लगे। मशीनीकरण की यह प्रक्रिया इंग्लैड में अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुई और फिर धीरे–धीरे अन्य देशों में भी फैली, जिसे औद्योगिक क्रान्ति का नाम दिया गया।



चित्र 3 – कारखाना

उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद

उद्योगों की स्थापना के कारण इन देशों में वस्तुओं का उत्पादन काफी तेजी से होने लगा। अब इन तैयार वस्तुओं को बेचने के लिए बाजार की आवश्यकता थी। साथ ही इन वस्तुओं को तैयार करने के लिए कच्चे माल की आवश्यकता भी थी। इन दोनों ही

आवश्यकताओं ने यूरोप के देशों को अपने देशों से बाहर की दुनिया में पैर फैलाने पर मजबूर कर दिया। इन देशों को लगा कि अगर वे दूसरे देशों की अर्थव्यवस्था पर काबू पा लेंगे तो उन्हें अपने उद्योगों के लिए न केवल कच्चा माल सस्ते दामों में मिलने लगेगा बल्कि उनके तैयार माल के लिए बाजार भी उपलब्ध हो जाएगा। इससे साम्राज्यवादी व्यवस्था की शुरुआत हुई। अठारहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में शुरू हुई यह प्रक्रिया एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के अधिकांश देशों को औद्योगिक यूरोपीय देशों के आर्थिक व राजनीतिक नियंत्रण के अन्दर ले आई। इस प्रक्रिया के अन्दर शासित देश **'कॉलोनी'** अर्थात् **उपनिवेश** कहलाए। बड़े पैमाने पर इस प्रक्रिया को अपनाने के कारण इस युग को **'औपनिवेशिक युग'** भी कहते हैं।

इन्हें भी जानें

साम्राज्यवाद : सैनिक अथवा अन्य तरीके से विदेशी भू–भाग के प्रदेशों को अपने अधीन कर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना।

अमेरिकी एवं फ्रांसिसी क्रांति

दुनिया में हो रहे इन बदलावों के बीच अठारहवीं सदी के अंतिम दशकों में दो और महत्वपूर्ण बदलाव हुए। पहले का संबंध अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम से एवं दूसरे का संबंध फ्रांसिसी क्रांति से है। अमेरिका की खोज के बाद वहां पर यूरोप के देशों ने अपना कब्जा जमा लिया था। धीरे–धीरे यहां बस गए लोगों ने ही यूरोपीय देशों के भासन के खिलाफ संघर्ष भुरू किया। इसी तरह फ्रांस के लोगों ने भी राज परिवार तथा सामंत वर्ग के खिलाफ संघर्ष भुरू किया। इन दोनों ही देशों में लोगों का अत्याचार, शोषण और अन्याय के खिलाफ एकजुट होकर किया गया संघर्ष सफल रहा।



चित्र 4 – उत्तरी अमेरिका में ब्रिटिश उपनिवेशों के लोग "स्वतंत्रता की घोषणा" का उत्सव मनाते हुए।

इसके बाद इन देशों के लोगों ने अपने–अपने देशों में गणतंत्र प्रणाली की सरकार स्थापित की। स्वतंत्रता और समानता उनके मार्ग दर्शक सिद्धान्त बन गए। फ्रांस और अमेरिका के इन आन्दोलनों का कई देशों के लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इसका एक प्रभाव यह भी था कि धीरे–धीरे एक निश्चित क्षेत्र में रहनेवाले लोगों में, जो लंबे समय से एक दूसरे के साथ थे और जो एक जैसी भाषा बोलते थे, अपने को एक जैसा मानने या एक राष्ट्र के रूप में पहचाने जाने की परंपरा भुरू हुई।

अत्याचार और शोषण के शिकार हमारे देश में किस प्रकार की सरकार है? उसके नीति निर्देशक सिद्धान्तों पर चर्चा करें।

आधुनिक काल एवं हमारा देश

इन्हें भी जानें

प्रायः अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध को (1750 ई. के बाद) आधुनिक काल का प्रारंभ माना जाता है। आधुनिक शब्द का इस्तेमाल जब समय के सन्दर्भ में किया जाता है तो इसका अर्थ अतीत का सबसे नजदीक हिस्सा जो पिछले लगभग तीन सौ वर्षों से संबंधित है।

इस प्रकार यूरोप में हुए इन परिवर्तनों से प्रभावित होकर अन्य देशों के लोगों ने नये ढंग से सोचना–विचारना शुरू कर दिया। नये उपनिवेशों की तलाश में जब यूरोपीय हमारे देश में आए तो हमारे देश पर भी इन परिवर्तनों का प्रभाव पड़ा। आपको याद होगा कि अठारहवीं सदी के शुरू में हमारा देश किस प्रकार टुकड़ों में बंटा हुआ था।

इसी समय यूरोप के व्यापारी भारत के विभिन्न भागों में व्यापार में जुटे थे। उनमें से जो व्यापारी इंग्लैंड से आए वे व्यापार करते–करते धीरे–धीरे हमारे देश के शासक बन बैठे। इन्होंने हमारे देश के स्थानीय नवाबों व राजाओं को हराकर अपना शासन स्थापित किया (इनके बारे में विस्तार से आप इकाई–2 में पढ़ेंगे।) आगे के दो सौ सालों तक हमारे देश पर इनका भासन रहा। हमारे देश में अंग्रेजी शासन आने से अंग्रेजी शिक्षा एवं नवीन विचारों का प्रवेश हुआ। फलतः भारतीय लोगों में जागृति आई। आगे की इकाइयों में आप देखेंगे कि किस प्रकार अंग्रेजों ने हमारे देश के आर्थिक संसाधनों का अपने लाभ के लिए इस्तेमाल

किया, अपनी जरूरत की चीजों को सस्ती कीमत पर खरीदा, निर्यात के लिए या अपने लाभ के लिए नई फसलों की खेती करायी। आगे आप यह भी जानेंगे कि लम्बे समय तक अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप हमारे देश के मूल्यों, मान्यताओं, पसंद–नापसंद, रीति–रिवाज और तौर–तरीकों में महत्वपूर्ण बदलाव आए। जब एक देश पर किसी दूसरे देश के दबदबे से इस तरह के राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव आते हैं तो इस प्रक्रिया को **औपनिवेशीकरण** कहा जाता है और इस अवस्था को **'उपनिवेशवाद'** कहते हैं।

इस काल विभाजन से अलग हटकर कुछ इतिहासकार आर्थिक तथा सामाजिक कारकों के आधार पर भी अतीत के विभिन्न कालखंडों की विशेशताएँ तय करते हैं। इसी तरह कई अंग्रेज इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के कालखंडों को अपने नजरिये से बांटने की कोशिश की है। 1817 ई. में स्काटलैंड के अर्थशास्त्री, इतिहासकार और राजनीतिक दार्शनिक जेम्स मिल ने तीन खंडों में (हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया) ब्रिटिश भारत का इतिहास नामक एक किताब लिखी। इस किताब में उन्होंने भारत के इतिहास को हिन्दू–मुस्लिम और ब्रिटिश इन तीन काल खंडों में बांटा। यह विभाजन इस विचार पर आधारित था कि शासकों का धर्म ही एकमात्र महत्वपूर्ण ऐतिहासिक परिवर्तन होता है। कालखंडों के इस निर्धारण को उस वक्त लोगों ने मान भी लिया।

क्या आप भारतीय इतिहास को समझने के इस तरीके से सहमत हैं? कक्षा में चर्चा करें।

जेम्स मिल को लगता था कि एशियाई देश प्रगति और सभ्यता के मामले में यूरोप से काफी पीछे थे। उनका मानना था कि भारत में अंग्रेजों के आने से पहले यहाँ हिन्दू और मुसलमान तानाशाहों का शासन था। भारत के लोग इतने पिछड़े और असभ्य थे कि अंग्रेजी शासन से ही उसका कल्याण हो सकता था। अंग्रेज भारतीयों से श्रेष्ठ और बेहतर थे। एक ओर तो वे भारतीय इतिहास को हिन्दू और मुस्लिम काल में बाँटते हैं, जबकि अपने लिए ब्रिटिश भाब्द का प्रयोग करते हैं, इसाई शब्द का प्रयोग नहीं करते। ब्रिटिश शब्द से संभवतः अपनी एकता और राष्ट्रीयता का बोध कराना चाहते थे।

जरा सोचिए क्या इतिहास के किसी कालखण्ड की अवधि को 'हिन्दू' 'मुस्लिम' या 'ईसाई' दौर कहा जा सकता है? क्या किसी भी अवधि में कई तरह के धर्म एक साथ नहीं चलते? क्या किसी अवधि में अन्य धर्मों के लोगों के जीवन और तौर–तरीकों का कोई महत्व नहीं होता। हमें यह याद रखना चाहिए कि किसी भी अवधि का इतिहास किसी एक तरह के लोगों से अकेले नहीं बनता बल्कि समाज के सारे लोगों को एक साथ मिलकर साथ चलने से बनता है।

इतिहास को हम अलग–अलग कालखंडों में बाँटने की कोशिश क्यों करते हैं? चर्चा करें।

इतिहास को जानिए

आपने पिछली कक्षाओं में पढ़ा है कि इतिहासकार इतिहास को जानने के लिए जिन स्रोत साधनों का प्रयोग करते हैं उसे ऐतिहासिक स्रोत कहते हैं। कक्षा छह एवं कक्षा सात में भी आपने ऐतिहासिक स्रोतों के बारे में पढ़ा था। प्राचीन काल एवं मध्य काल के कुछ ऐतिहासिक स्रोतों का स्मरण करते हुए निम्न तालिका को भरने का प्रयास करें –

	प्राचीन काल	मध्य काल
स्रोत – 1	शिला लेख	पांडुलिपि
2		
3		
4		
5		

स्मरण करें प्राचीन काल एवं मध्य काल के स्रोत तो प्रायः एक ही थे। लेकिन प्राचीन काल की तुलना में मध्य काल में स्रोतों की संख्या काफी अधिक हो गई। आपने देखा कि पुराने प्रकार के स्रोतों के अतिरिक्त मध्य काल में कुछ नए स्रोत भी सामने आए। आगे आप पायेंगे कि आधुनिक काल में इन स्रोतों की संख्या एवं विविधता में और भी वृद्धि हुई। ऐसा क्यों हुआ? आईये इसे समझने का प्रयास करें।

सातवीं कक्षा में आपने पढ़ा था कि उन्नीसवीं सदी से पहले के सालों में छापाखाने नहीं थे। लिपिक या नकलनवीस हाथ से ही पाण्डुलिपियों की प्रतिकृति बनाते थे। बाद में उन्नीसवीं सदी के मध्य तक छपाई तकनीक के माध्यम से सरकारी विभाग की कारवाईयों के दस्तावेज की कई प्रतियाँ बनाई जाने लगीं। इन महत्वपूर्ण दस्तावेजों की प्रतियों को आप आज भी अभिलेखागारों एवं पुस्तकालयों में देख सकते हैं।

अभिलेखागारों में सरकार के दस्तावेजों को सुरक्षित रखा जाता है। इन दस्तावेजों में सरकार की योजनाओं एवं 'कर' से संबंधित दस्तावेज, पुलिस एवं सी.आई.डी. रिपोर्ट, विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की गतिविधियों के रिकार्ड, विभिन्न कमिशनों के रिकार्ड आदि शामिल होते हैं। आज भी हर जिले में एक–एक रिकार्ड रूम होते हैं। इन्हें आप भी देख सकते हैं। इनके अतिरिक्त तहसील के दफ्तर, कलेक्टरेट, कमिशनर के दफ्तर, कचहरी आदि के रिकार्ड रूम भी महत्वपूर्ण हैं।

आप अपने जिले के रिकार्ड रूम में जाकर अपने जिले से संबंधित क्या–क्या जानकारियाँ प्राप्त करना चाहेंगे? इन जानकारियों की एक सूची बनाएँ।

इसी तरह पुस्तकालयों में वर्षों पहले के पुराने अखबार, व्यक्तिगत पत्र, डायरियां, निजी दस्तावेज आदि चीजें सुरक्षित रखी जाती हैं। महान व्यक्तियों के जीवन एवं आत्मकथा भी इतिहास के अध्ययन में उपयोगी साबित हुए हैं। इन पुस्तकों से हमें उन व्यक्तियों के बारे में विशेष जानकारी मिलती है, जिन्होंने राजनीति, प्रशासन एवं समाज सेवा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। साथ ही इन पुस्तकों से हमें उस समय के समाज में हो रही विभिन्न प्रक्रियाओं के बारे में भी पता चलता है।

आत्मकथा एवं जीवनी के संबंध में अपने शिक्षक की सहायता से चर्चा करें।

अपने देश की राजधानी दिल्ली में राष्ट्रीय अभिलेखागार, नेहरू स्मारक पुस्तकालय एवं पटना स्थित सच्चिदानन्द सिन्हा पुस्तकालय, बिहार राज्य अभिलेखागार जैसी संस्थाओं में आप जाकर इन सामग्रियों का अध्ययन कर सकते हैं। इधर हाल के दिनों में पिछली पीढ़ी के

महत्वपूर्ण व्यक्तियों के भाषण, साक्षात्कार एवं स्मृतियों की रिकार्ड रखने की परम्परा भी कुछ संग्रहालयों में शुरू की गई है।



चित्र 5 – पटना स्थित बिहार अभिलेखागार

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक पूरे देश का मानचित्र तैयार करने के लिए बड़े–बड़े सर्वेक्षण किए जाने लगे। सर्वेक्षणों में धरती की सतह, मिट्टी की गुणवत्ता, वहाँ मिलने वाले पेड़ पौधों और जीव जन्तुओं तथा स्थानीय फसलों का पता लगाया जाता था। इसके अलावा वानस्पतिक सर्वेक्षण, प्राणि वैज्ञानिक सर्वेक्षण, पुरातात्वीय सर्वेक्षण, मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण, वन सर्वेक्षण आदि कई दूसरे सर्वेक्षण भी किए जाते थे। आज ये सारे सर्वेक्षण महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत साबित हो रहे हैं।



चित्र –6 शरीफे का पौधा – अंग्रेजों द्वारा बनाए गए वानस्पतिक उद्यान और प्राकृतिक इतिहास के संग्रहालयों में विभिन्न पौधों के नमूने और उनसे संबंधित जानकारियाँ इक्ट्ठा की जाती थीं। इन नमूनों के चित्र स्थानीय कलाकारों से बनवाए जाते थे।

उन्नीसवीं सदी के आखिर से हर दस साल में जनगणना भी की जाने लगी। जनगणना के द्वारा भारत के सभी प्रांतों में रहनेवाले लोगों की संख्या, उनका धर्म, जाति, व्यवसाय, शैक्षणिक स्तर आदि के बारे में जानकारियाँ इकट्ठी की जाती हैं। इन जानकारियों के आधार पर उनके बेहतरी के लिए भावी योजनाएँ तैयार की जाती हैं।

भारत में पहली और आखिरी जनगणना कब हुई? आखिरी जनगणना में पूछे गये कुछ सवालों को अपने शिक्षक की मदद से इक्ट्ठा करें?

इन सारे ऐतिहासिक स्रोतों के अलावे एक आम अनपढ़ आदमी, आदिवासी, किसान, खदानों में काम करनेवाले मजदूर, फुटपाथ पर जिंदगी गुजारने वाले गरीब क्या सोचते थे,

उनके अनुभव क्या थे, इसे जानने के लिए हमलोगों को अभी और कोशिश करनी पड़ेगी। इसके लिए हमें उस समय के कवियों और उपन्यासकारों की रचनाएँ, स्थानीय बाजारों में बिकनेवाली लोकप्रिय पुस्तकें, यात्रियों के संस्मरण आदि चीजों को टटोलना होगा। आपने महान उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद के बारे में अवश्य सुना होगा। इनकी कई रचनाएँ जैसे गबन, गोदान एवं कफन में एक सामान्य आदमी की परिस्थितियों का जिक्र है। इनकी रचनाओं में तत्कालीन समाज की तस्वीर भी देखने को मिलती है।

कुछ लोग कहानियाँ, उपन्यास एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित फिल्म भी बनाते हैं। इन फिल्मों के माध्यम से हम मनोरंजन के रूप में अतीत के बारे में जानकारी हासिल करते हैं।

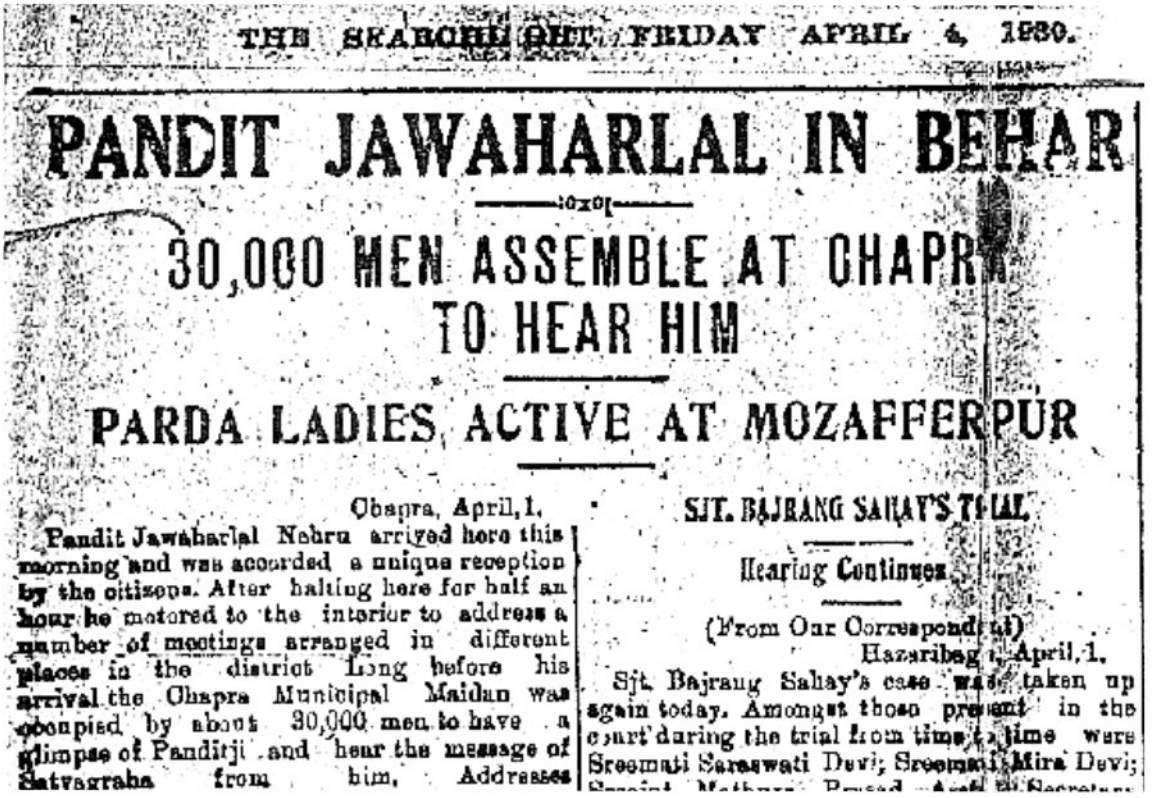
अगर आपने कुछ कहानियों एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित फिल्म देखी है तो वर्ग कक्ष में साथियों के बीच चर्चा करें।

करीब 200 साल पहले कैमरे का आविष्कार हुआ था। भारत में इसका इस्तेमाल 1850 ई. के दौरान शुरू हुआ। मुगल साम्राज्य के अंतिम बादशाह बहादुरशाह द्वितीय का फोटो उपलब्ध है। वह पहला और आखिरी मुगल बादशाह था जिसकी फोटो कैमरे से खींची गई थी। ऐतिहासिक स्रोत के रूप में व्यक्तियों, स्थानों और वस्तुओं के फोटो बहुतः उपयोगी साबित होते हैं।

आपने अभी तक ऐतिहासिक स्रोतों के बारे जाना। आइए कुछ ऐतिहासिक स्रोतों को विभिन्न समाचार पत्रों, सी. आई. डी. रिर्पोट, एवं पत्र के माध्यम से देखने का प्रयास करें–



चित्र 7 – बहादुरशाह जफर की कैमरे से ली गई तस्वीर



THE SEARCHLIGHT, FRIDAY APRIL 4, 1930.

PANDIT JAWAHARLAL IN BEHAR

30,000 MEN ASSEMBLE AT CHAPRA TO HEAR HIM

PARDA LADIES ACTIVE AT MOZAFFERPUR

Chapra, April, 1.

Pandit Jawaharlal Nehru arrived here this morning and was accorded a unique reception by the citizens. After halting here for half an hour he motored to the interior to address a number of meetings arranged in different places in the district. Long before his arrival the Chapra Municipal Maidan was occupied by about 30,000 men to have a glimpse of Panditji and hear the message of Satyagraha from him. Addresses

SJT. BAJRANG SAHAY'S TRIAL.

Hearing Continues.

(From Our Correspondent)

Hazaribag, April, 1.

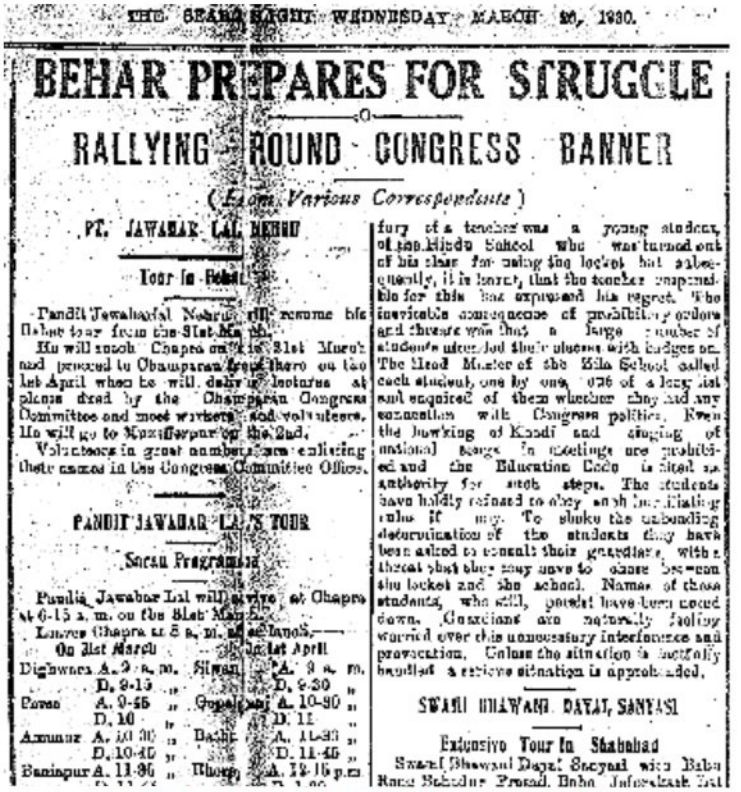
Sjt. Bajrang Sahay's case was taken up again today. Amongst those present in the court during the trial from time to time were Sreemati Saraswati Devi; Sreemati Mira Devi;

पंडित जवाहरलाल नेहरू का बिहार दौरा तीस हजार लोग छपरा में एकत्रित हुए

स्रोत

31 मार्च को पंडित जवाहरलाल नेहरू छपरा से अपनी सभा की शुरूआत की। छपरा रेलवे स्टेशन पर डा० महमूद एवं करीब 400 कार्यकर्त्ताओं ने उनका स्वागत किया। 9 बजे सुबह से आस–पास के इलाकों में करीब आठ गाँवों में सभाएं की। प्रायः हर जगह लोगों से अहिंसात्मक ढ़ंग से नमक कानून तोड़ने का आग्रह किया। 31 मार्च की रात को बेतिया के लिए रवाना हो गए। अगले दिन पहली अप्रैल को बेतिया में करीब बीस हजार लोगों की सभा को संबोधित किया। बेतिया से कार द्वारा मोतीहारी के लिए रवाना हुए। वहाँ दोपहर को करीब दस हजार लोगों की भीड़ को संबोधित किया। हर जगह लोगों ने उत्साहपूर्वक उनका स्वागत किया। अपने बिहार भ्रमण के दौरान उन्होंने सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर, हाजीपुर एवं सारण जिलों में लोगों को अंग्रेजी शासन द्वारा प्रतिबंधित नमक कानून तोड़ने के लिए प्रेरित किया। 3 अप्रैल को उन्होंने सारण जिले में चौकीदारों से अंग्रेजी सेवा छोड़ने का आग्रह किया।

सी.आई.डी. विभाग की रिर्पोट 1930 मेमो नं. 3639 (हिन्दी अनुवाद)



THE SEARCHLIGHT, WEDNESDAY, MARCH 26, 1930.

BEHAR PREPARES FOR STRUGGLE

RALLYING ROUND CONGRESS BANNER

(From Various Correspondents)

PT. JAWAHAR LAL NEHRU

Tour in Behar

Pandit Jawaharlal Nehru will resume his Behar tour from the 31st inst.

He will reach Chapra on the 31st March and proceed to Dhanapur from there on the 1st April when he will deliver lectures at places fixed by the Dhanapur Congress Committee and meet workers and volunteers. He will go to Muzaffarpur on the 2nd.

Volunteers in great numbers are enlisting their names in the Congress Committee Offices.

PANDIT JAWAHAR LAL'S TOUR

Saran Programme

Pandit Jawahar Lal will arrive at Chapra at 6-15 a. m. on the 31st March.

Leaves Chapra at 8 a. m. of 1st April.

On 31st March			1st April	
Dighwara	A. 9 a. m.	Siwan	A. 9 a. m.	
	D. 9-15 „		D. 9-30 „	
Parsa	A. 9-45 „	Gopalganj	A. 10-30 „	
	D. 10 „		D. 11 „	
Amnaur	A. 10-30 „	Bathe	A. 11-30 „	
	D. 10-45 „		D. 11-45 „	
Baniapur	A. 11-30 „	Bhore	A. 12-15 p.m.	

fury of a teacher was a young student of the Hindu School who was turned out of his class for using the locket but subsequently, it is learnt, that the teacher responsible for this has expressed his regret. The inevitable consequence of prohibitory orders and threats was that a large number of students attended their classes with badges on. The Head Master of the Zila School called each student, one by one, out of a long list and enquired of them whether they had any connection with Congress politics. Even the hawking of Khadi and singing of national songs in meetings are prohibited and the Education Code is cited as authority for such steps. The students have boldly refused to obey such beneficial rules if any. To shake the unbending determination of the students they have been asked to consult their guardians, with a threat that they may have to leave both the locket and the school. Names of those students, who still, persist have been noted down. Guardians are naturally feeling worried over this unnecessary interference and provocation. Unless the situation is tactfully handled a serious situation is apprehended.

SWAMI BHAWANI DAYAL, SANYASI

Exclusive Tour in Shahabad

Swami Bhawani Dayal Sanyasi with Babu Rama Sahadur Prasad, Babu Jafeshwar Dat

कांग्रेस के झंडे के तले बिहारी संघर्ष के लिए तैयार



THE SEARCHLIGHT, FRIDAY, APRIL 11, 1930.

SATYAGRAH IN BIHAR

CAMPAIGN IN FULL SWING IN SARAN

11 CHAUKIDARS AND ONE DAFADAR RESIGN

NARAYAN BABU GETS ONE YEARS' S. I.

Pt. Bharat Misra And Others Arrested

Dak Correspondent)

Chapra, April 2,

...rests were made at Baroja ...pril at about 5 30 P. M. The ...ctors arrested are Amodh ... Misra, Sakki Obed Sahi ... Pandey. The police party ... Satyagraha camp at about 8 ...waiting there all the time, ...the S. I. Police together ... came to the camp with some ...ers were twelve five Mahe ...) and consequently 12 mahe ...but curiously enough they ...out of them and told them ...arrested. Those four Satya... ...editately replaced by others. ...tors, who were arrested on ...are sentenced yesterday to ...six Imprisonments by Sub ...of Chapra. There was ...to the way. The students ... and Vishawar Seminary ...h by whole there was a ...the Rajput School and Saran ...therefore excitement prevailed ...day.

T GORE-KOTHI

MUZAFFARPUR TAKES FIELD

First Batch Starts, For Sonhar,

SATYAGRAH TO BEGIN ON APRIL 15

(From Our Own Correspondent)

Muzaffarpur, April 9.

Amid scenes of unprecedented enthusiasm the first batch of volunteers numbering eleven, captained by Bjt. Janakdhari Prasad, B. L.,

AT MAHNACHAK

Satyagrah To Be Started On 15th

Dighwara April 9.

It has been decided to start Satyagrah by preparing salt from the earth, at Gandhi Kutir, Mahnachak, in Dighwara Thana from the 15th April next. Permission was first sought, for beginning the campaign, from Babu Rajendra Prasad, the First Satyagrahi of the province, through a special

National Week

The celebration of National ...this city with hoisting of vic... National Flag and meetings ... whole area from Digha to the ... were held in the even... Bhanwarpokhar and Mangh... day in the morning. ...round the mahalla ... song and meetings ... in different quarters every ... decided to hold a meeting ... during the week.

Enrolment

Enrolment of volunteers is ... briskly. After every ... gathered and the recruits are ... the pledge at the Congress and ... Committee-office is kept very ... and morning to face ... Nigha days about 200 volunteers ... Many more are ready ... a motion is decided upon.

Collection

Thanks to the untiring ... of Pandit Dhandhari, Kumari ... Mandal Member Prasad money ... Besides volunteers are ... from door to door.

Field Of Activity

बिहार में सत्याग्रह पूरे उबाल पर 11 चौकीदार और एक दफादार ने अंग्रेजी सेवा से त्यागपत्र दिया



आज

काशी चैत्र शुक्ल १० सं० १९८७ मंगलवार सौर २५ चैत्र सं० १९८६ वै० ता० ८ अप्रैल सन १९३० इ०

महात्माजीने नमककानून तोड़ डाला !

न रोकटोक, न पुलिस ।

बम्बई और अन्य स्थानोंमें भी सत्याग्रह ।

बम्बई और खेड़ा जिलेमें प्रमुख कार्यकर्ता गिरफ्तार ।

रातमें एक प्रमुख कार्यकर्ताको २ साल की कैद, ५००) जुर्माना ।

दांडी शिविर, ६ अप्रैल ।

महात्मा गांधीने आज ठीक ६॥ बजे नमक-कानून तोड़ा। उन्होंने गांधीमें जमा हुए नमकबेंसे, जिसे लेनेकी मनाही है, थोड़ासा नमक उठा लिया। उनके साथके स्वयंसेवकोंने भी यही किया। इसके बाद महात्माजी

महात्माजीका संदेश

सत्याग्रहकी आम इजाजत ।

सगर परिणामको समझकर ।

स्त्रियोंके लिये विशेष कार्य ।

दांडी शिविर, ६ अप्रैल ।

महात्माजी ज्यों ही नमक कानून तोड़ कर—कुछ की वह निश्चित मात्रामें नमक बटोरकर—अपने बंगलेपर वापस आये त्यों-ही सर्व प्रथम "फ्री प्रेस"के प्रतिनिधिने जाकर उनका अभिनंदन किया और सन्देश देनेकी प्रार्थना की। महात्माजीके चेहरेसे मालूम होता था कि कुछदेर पहले उन्होंने जिस कार्य का प्रारंभ किया था उससे

काशीमें सत्याग्र

मंगलवार ८ अप्रैलसे आ

काशी विद्यापीठके पदाधिकारियोंसे

काशी, सोम

आज सायंकाल समय एक असाधारण

लेख पढ़ने निकला और राष्ट्रीय

शांतता अपनाकर करता दांडीयात्रा

यहां कार्यकर्ता श्रीयुत देवदासजीके सभाप

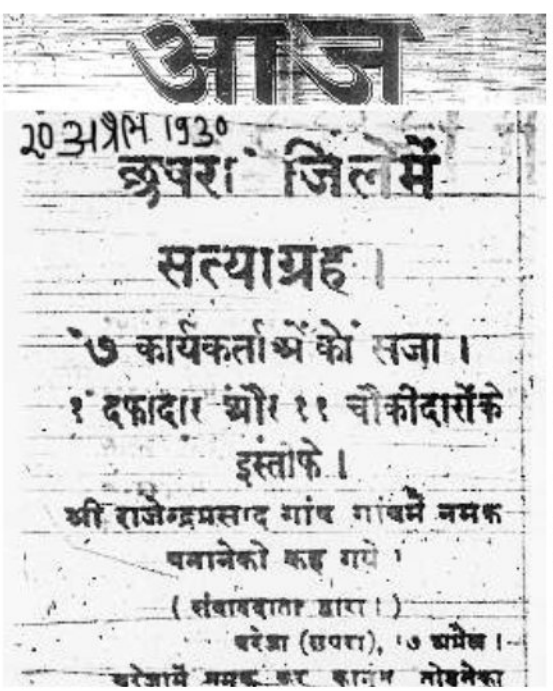
नेताओंके जोरदार भाषण हुए तथा

सत्याग्रहके अधिष्ठाताके सम्पूर्ण

ने सत्याग्रहके संगठन और स्थापनी

की । सभामें खूब उत्साह था ।

राष्ट्रीय गानके बाद सभापति,



आज

२० अप्रैल १९३०

छपरा जिलेमें

सत्याग्रह ।

७ कार्यकर्ताओंको सजा ।

१ दफादार और ११ चौकीदारोंके इस्तीफे ।

श्री राजेन्द्रप्रसाद गांव गांवमें नमक बनानेको कह गये ।

(संवाददाता द्वारा ।)

दरेजा (छपरा), १७ अप्रैल ।

दरेजामें नमक कर कानून तोड़नेका



आज

१८ अप्रैल १९३०

बिहारमें दमनचक्र ।

पटनेमें चार गिरफ्तारियां ।

कम्पारनके ११ कार्यकर्ताओंको सजा

पटना, १६ अप्रैल ।

पटना नगर कांग्रेस कमेटीके सभापति श्री अम्बिकाकान्त सिंह आज तीन स्वयं सेवकोंके साथ गिरफ्तार किये गये । ये लोग नमक बनानेके लिये मंगलेश तालाबको जा रहे थे । पुलिसने और लोगोंको भी यह कह कर रोका कि आपलोगोंने लैसेन्स नहीं लिया है, इसलिये पुलिस कानूनका उल्लंघन कर रहे हैं ।

विभिन्न समाचार पत्रों में छपे समाचारों में आप क्या समानता पाते हैं। वर्ग कक्ष में शिक्षक की सहायता से चर्चा करें।

बिहार सत्याग्रह-समाचार

११ मई, १९३० अंक - ८

सारन

ताड़ी इस साल न बजने पावे जी

छपरा :— छपरे से आए समाचारों से विदित होता है कि अभी तो कार्य-कर्त्ता लोग ताड़ के पेड़ों के केवल चार-चार काटे जा रहे हैं। कार्य-कर्त्ताओं को सख्त आदेश है कि इस साल जिले भर में ताड़ी न बिके और ऐसा ताड़ न बचेगा जिससे ताड़ी चुआई जा सके।

सैनिकों की भरती

मादक द्रव्य बहिष्कार और विदेशी वस्त्र बहिष्कार के लिए जिले भर में सैनिकों की भरती की जा रही है। सारे जिले में बहुत उत्साह दिखाई देता है। सिवान, छपरा, महाराजगंज और गोपालगंज में धरना देने के लिए पूरी तैयारी की जा चुकी है और चुने हुए स्वयंसेवकों को आदेश देने का उत्तर दायित्व सौंपा गया है।

सोनपुर में जाभन के जलाने, बहिष्कार और संगठन का काम जारी है।

मुजफ्फरपुर

मुजफ्फरपुर जिले में इस समय ७८ स्थानों में नमक बन रहा है। मादक द्रव्य बहिष्कार का काम जारी। हरेक जिले की रिपोर्ट हर रोज इसके लिए हो रही है।

हाजीपुर

ताड़-गाछ काटने के लिए जो जिलेदारी पर अपने आदमियों भिजवाने से लिए पासी हड़ताल रही। इसके लिए स्कूल और रजिस्ट्री ऑफिस बन्द रहे। अभी एक-एक सिंह को एक साल की सजा हो गई है। ताड़ी पर मुजफ्फरपुर से लेकर गया तक।

दरभंगा

सेवानिवृत्त आन्ध्रप्रदेश का अलंकार सैन्य सेना का मेजर

[illegible] जाकर हैजे के रोगियों की सेवा कर रहा है। [illegible] अपने [illegible] के नाम को सार्थक कर रहे हैं। [illegible] जिनेवा [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]

स्रोत

वाइसराय के नाम गांधीजी का पत्र

सत्याग्रह आश्रम, साबरमती
२ मार्च १९३०

प्रिय मित्र,

निवेदन है कि इसके पहले कि मैं सविनय कानून भंग शुरू करूँ और शुरू करने पर जिस जोखिम को उठाने के लिए मैं इतने सालों से हिचकिचाता रहा हूँ, उसे उठाऊँ, इस उम्मीद से मैं आपको यह पत्र लिखने जा रहा हूँ कि अगर समझौते का कोई रास्ता निकल सकें तो उसके लिए कोशिश कर देखें।

अंहिसा में मेरा विश्वास तो जाहिर ही है। जानबुझ कर मैं किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं कर सकता, तो फिर मनुष्य-हिंसा की तो बात ही क्या है? फिर भले ही उन मनुष्यों ने मेरा या जिन्हें मैं अपना समझता हूँ उनका, बड़े से बड़ा अहित ही क्यों न किया हो। इसलिए जो भी अंग्रेजी सल्तनत को मैं एक बला मानता है, तो भी मैं यह कभी नहीं चाहता कि एक भी अंग्रेज को या भारत में उपार्जित उसके एक भी उचित हित को, किसी तरह का नुकसान पहुँचे।

तो फिर मैं किस कारण अंग्रेजी राज्य को शापरूप मानता हूँ? कारण ये है: इस राज्य ने एक ऐसा तंत्र खड़ा कर लिया है कि जिसकी वजह से मुल्क हमेशा के लिए बढ़ते हुए परिणाम में बराबर चूसा जाता रहे; अलावा इसके, इस तंत्र का फौजी और दीवानी खर्च इतनी ज्यादा तबाही करने वाला है कि मुल्क उसे निकाले।

अगर आप न सुनेंगे तो-

लेकिन अगर ऊपर लिखी बुराइयों को दूर करने का कोई इलाज आप ढूँढ निकालेंगे और मेरे इस खत का आप पर कोई असर न होगा, तो इस महीने की ग्यारहवीं तारीख को मैं अपने आश्रम के जितने साथियों को ले जा सकूँगा उतने साथियों के साथ नमक संबंधी कानून को तोड़ने के लिए कदम बढ़ाऊँगा । गरीबों के दृष्टिबिन्दु से यह कानून मुझे सबसे ज्यादा अन्यायपूर्ण मालूम हुआ है। आजादी की यह लड़ाई खास कर देश के गरीब से गरीब लोगों के लिए है। अतः यह लड़ाई इस अन्याय के विरोध से ही शुरू की जायगी।

ऑल इंडिया कांग्रेस कमिटी - जी.-२९/१९३० (हिन्दी अनुवाद)

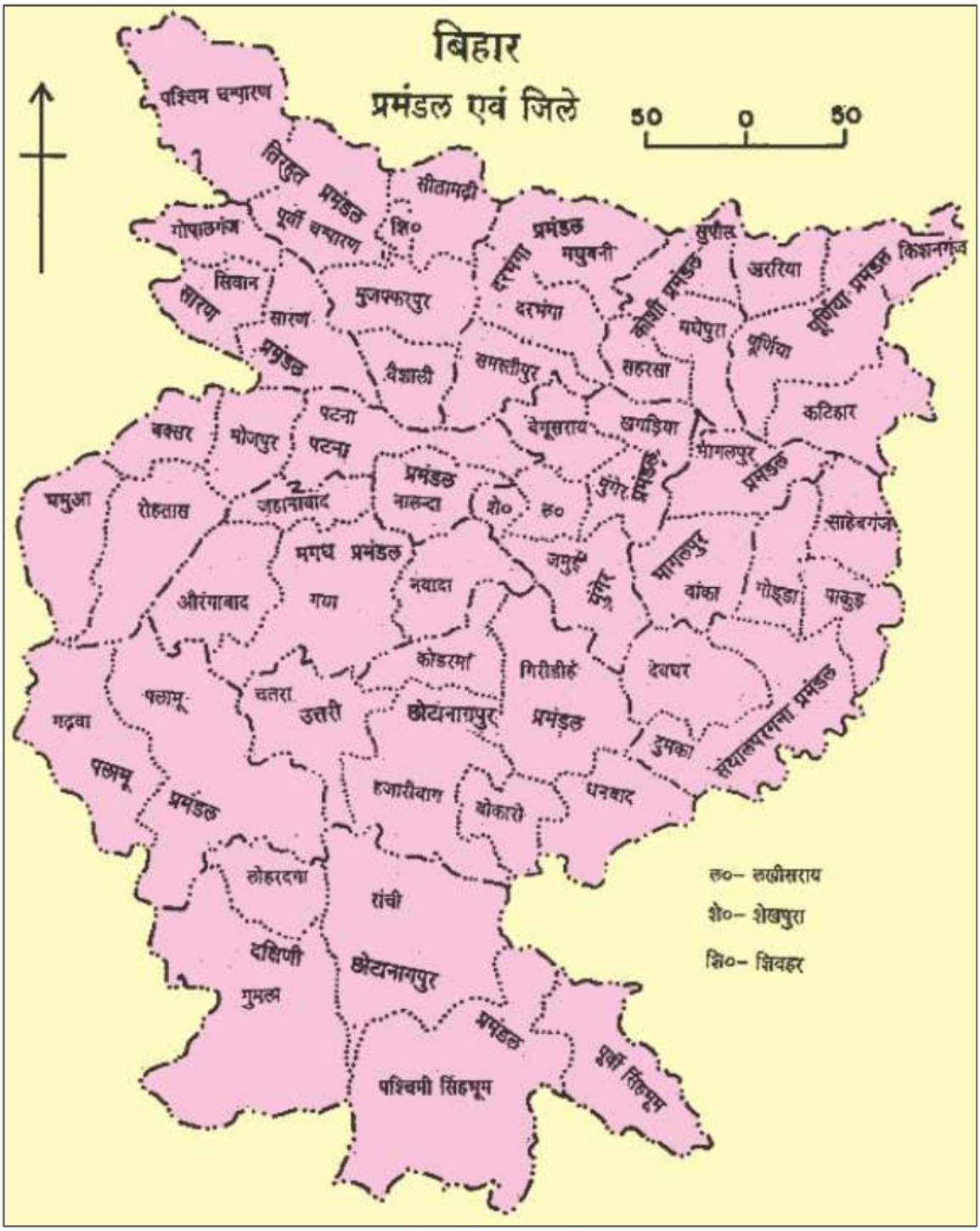
समय के साथ परिवर्तन

कक्षा सात में हमलोगों ने पढ़ा था कि समय के साथ हमारे समाज में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन कभी शब्दों के अर्थ, कभी स्थानों के नाम, कभी भौगोलिक सीमाओं एवं जीवन शैली के संदर्भ में होते रहते हैं।

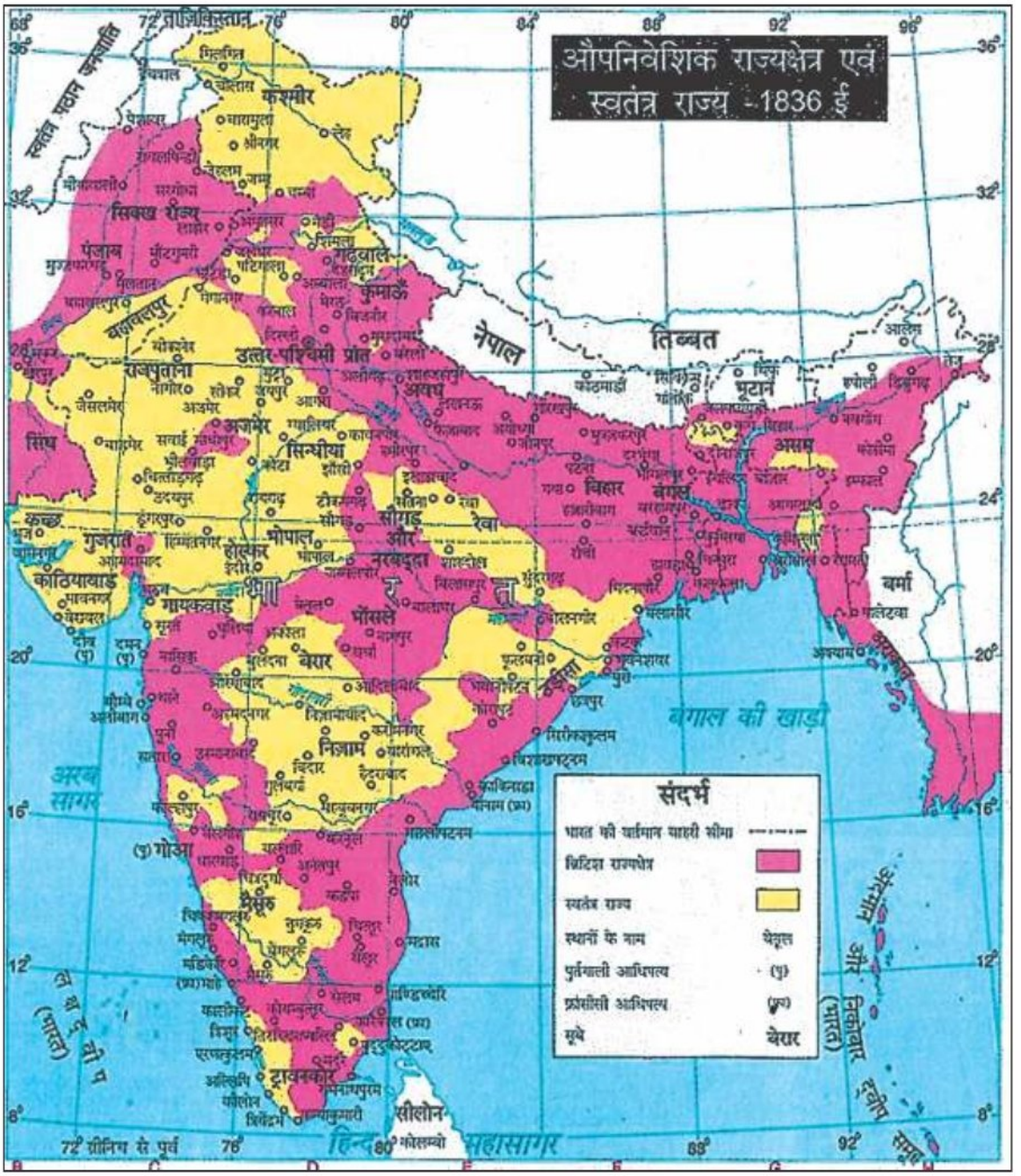
भारतीय उपमहाद्वीप में आधुनिक भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान, भूटान और मालदीव सम्मिलित हैं। इनमें भारत, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश अंग्रेजों के भारतीय साम्राज्य के अभिन्न अंग थे। म्यामांर (तत्कालीन बर्मा) तथा श्रीलंका (तत्कालीन सीलोन) भी 1937 ई. तक अंग्रेजों के एशियाई साम्राज्य के अंग थे। स्वतंत्रता के बाद हमारा देश हिन्दुस्तान दो भागों में विभाजित हो गया। बलुचिस्तान, सिंध, पश्चिमी पंजाब एवं पूर्वी बंगाल पाकिस्तान में चले गए। बाद में पाकिस्तान का पूर्वी हिस्सा अलग होकर बांग्लादेश के नाम से स्वतंत्र देश बना। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में बिहार एवं उड़ीसा बंगाल प्रांत के अंग थे। 1912 ई. में बिहार एवं उड़ीसा को बंगाल से अलग कर एक नये प्रांत के रूप में संगठित किया गया। 1936 में उड़ीसा को बिहार से अलग कर, दोनों को अलग प्रांत का दर्जा दिया गया। पुनः 15 नवम्बर 2000 को बिहार से उसके, दक्षिण पठारी क्षेत्र को अलग कर पृथक झारखंड राज्य गठित हुआ।



वर्त्तमान बिहार



विभाजन के पूर्व बिहार



आजादी के पहले का भारत



वर्त्तमान भारत

गतिविधि – भारत एवं बिहार के दिये गए इन चार अलग–अलग मानचित्रों से आपको किस प्रकार की जानकारी प्राप्त हो रही है। सोच कर बताएँ?

अभ्यास

आइए फिर से याद करें :–

1. रिक्त स्थानों को भरिए।

(क) पूँजीपतियों का मुख्य उद्देश्य था अधिक से अधिक ..... कमाना।

(ख) पंद्रहवीं शताब्दी में एक नये आंदोलन की शुरूआत हुई जिसे ..... कहते हैं।

(ग) मशीनों से वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया को ..... क्रांति कहते हैं।

(घ) ..... में सरकारी दस्तावेजों को सुरक्षित रखा जाता है।

(ङ) समय के साथ देश और राज्य की ..... सीमाओं में परिवर्तन होते रहते हैं।

2. सही और गलत बताइए।

(क) वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ है प्रश्न प्रस्तुत कर प्रयोग द्वारा ज्ञान प्राप्त करना।

(ख) अंग्रेज इतिहासकार जेम्स मिल का भारतीय इतिहास का धर्म के आधार पर बांटना उचित था।

(ग) अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम के बाद वहाँ के लोगों ने गणतंत्र प्रणाली की शुरूआत नहीं की।

(घ) ऐतिहासिक स्रोतों से एक आम आदमी के बारे में भी जानकारी मिलती है।

(ङ) आजादी के पहले हमारे देश की जो भौगोलिक सीमा थी, आजादी के बाद भी वही रह गई।

आइए विचार करें :–

(I) मध्यकाल और आधुनिक काल के ऐतिहासिक स्रोतों में आप क्या फर्क पाते हैं। उदाहरण सहित लिखिए।

(ii) जेम्स मिल ने भारतीय इतिहास को जिस प्रकार काल खंडो में बांटा, उससे आप कहाँ तक सहमत हैं।

(iii) सरकारी दस्तावेजों को हम कैसे और कहाँ–कहाँ सुरक्षित रख सकते हैं।

(iv) यूरोप में हुए परिवर्त्तन किस प्रकार आधुनिक काल के निर्माण में सहायक हुए।

आइए करके देखें :–

(I) भारत में पहली और आखिरी जनगणना कब हुई पता करें? इसके द्वारा कुछ ऐसे तथ्यों एवं सूचनाओं का संकलन करें जिसका उपयोग हम ऐतिहासिक स्रोत के रूप में कर सकें।

अध्याय - 2

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना

इस अध्याय में हम इंग्लैंड की व्यापारिक कंपनी के बारे में पढ़ेंगे, जो हमारे देश में मूलतः व्यापार करने आई थी। धीरे–धीरे इस देश पर वह शासन करने लगी। यह घटना अचानक नहीं घटी बल्कि इसके पीछे एक विस्तृत घटनाक्रम था। इस प्रक्रिया को समझने का हम प्रयास करेंगे।

कक्षा 7 में पढ़ी गई बातों के आधार पर बताएँ कि :–

(i) आठवीं शताब्दी में किस देश के व्यापारी भारत में व्यापार करने आए थे?

(ii) 1707 में मुगल बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् भारत में कौन–कौन से राज्य बने?

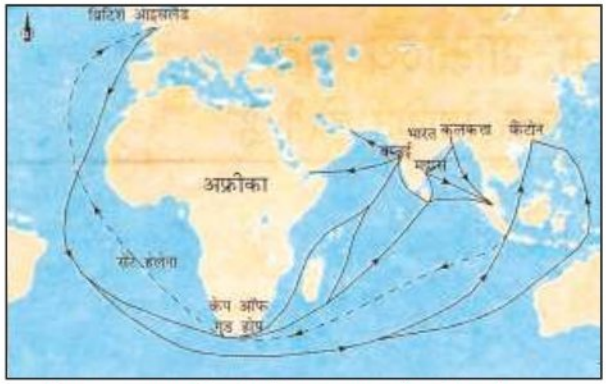
(iii) कुछ ऐसे यूरोपीय देशों के नाम बताएँ जो 15वीं से 17वीं शताब्दी के बीच व्यापार करने के उद्देश्य से हमारे देश में आए?

भारत और यूरोप के बीच व्यापार–

भारत और यूरोप के बीच प्राचीन काल से ही व्यापारिक संबंध थे। स्थल मार्ग से होने वाले इस व्यापार में अरब सौदागरों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। वे भारतीय व्यापारियों और कारीगरों से सामान खरीद कर अरब के बाजारों में लाते थे, जहां से यूरोप के व्यापारी उसे खरीद कर अपने देशों के बाजारों तक पहुंचाते थे। इस तरह के व्यापार से यूरोप के लोगों तक ये सामान पहुँचते–पहुँचते काफी मंहगे हो जाते थे। साथ ही इस व्यापार में यूरोप के व्यापारियों का मुनाफा भी कम होता था।

15वीं शताब्दी के आसपास यूरोप के व्यापारियों ने लाल सागर से होते हुए स्थल मार्ग से भारत आना शुरु किया, लेकिन इसमें उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

स्थल मार्ग से यूरोप तक माल पहुँचाने में समय काफी अधिक लगता था और रास्ते में लुट जाने का भय सदा बना रहता था। बहुत से स्थानों पर उन्हें चुँगी (कर) भी देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त अरब के व्यापारी समूह उनके लिए तमाम तरह की मुश्किलें खड़ी करते थे। इस लिए यूरोप के व्यापारियों के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे एशिया और भारत के लिए एक ऐसे रास्ते की खोज करें जिसमें ये सारी मुश्किलें न हों।



चित्र 1 – अठारहवीं सदी में भारत तक आने वाले रास्ते

आपने कक्षा सात में पढ़ा है कि इस दिशा में सर्वप्रथम सफलता पुर्तगाल के नाविकों को मिली। पुर्तगाल का नाविक वास्कोडिगामा 1498 ई. में यूरोप से होकर अफ्रिका का चक्कर लगाता हुआ उत्तमाशा अंतरीप (केप ऑफ गुड होप) के मार्ग से भारत के पश्चिमी तट पर स्थित कालीकट बन्दरगाह पर पहुँचा। कालीकट के शासक ने वास्कोडिगामा को अपने यहां व्यापार करने की अनुमति एवं सुविधा दी।

वास्कोडिगामा भारत से गरम मसालों को लेकर वापस लौटा उसे बेचकर यात्रा पर हुए खर्च से 60 गुणा लाभ हुआ। इससे पुर्तगाल के व्यापारी और नाविक बहुत उत्साहित हुए और उनका भारत आने का सिलसिला शुरू हो गया। आगे चलकर पुर्तगाली व्यापारियों ने भारत में कालीकट, गोआ, दमन, दीव एवं हुगली के बंदरगाहों में अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित की। उन्होंने भारत में राजनीतिक सत्ता स्थापित करने का प्रयास भी किया किन्तु वे सफल नहीं हुए।

आप भारत में मिलने वाले गरम मसालों की सूची बनाएँ।

भारत में पुर्तगाली व्यापारियों की सफलता ने यूरोप के दूसरे देशों के व्यापारियों को भी उत्साहित किया और वे भी उसी रास्ते से भारत आने लगे। इस तरह यूरोप के कई देशों में भारत तथा एशिया के अन्य भागों से व्यापार करने के लिए व्यापारिक कंपनियाँ स्थापित की गयीं। इनमें पुर्तगाल के अलावे हॉलैंड, इंग्लैंड, फ्रांस तथा डेनमार्क की कंपनियाँ प्रमुख थीं।

इन्हीं कंपनियों में से एक कंपनी ने आगे चलकर हमारे देश की बागडोर अपने हाथों में ले ली और इतना ही नहीं, इसने हमारे देश पर करीब 200 वर्षों तक शासन भी किया।

ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना

31 दिसम्बर, 1600 को इंग्लैंड के कुछ व्यापारियों ने लंदन में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की थी। इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने इस कंपनी को पंद्रह वर्षों के लिए पूरब (एशिया) के देशों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार दिया। इसका मतलब था कि इंग्लैंड की केवल इसी कंपनी को भारत से व्यापार करने का अधिकार था। इग्लैंड का कोई अन्य व्यक्ति या व्यापारी समूह भारत के साथ व्यापार नहीं कर सकता था। इस तरह यह कंपनी भारत से चीजें खरीदकर यूरोप में ज्यादा कीमत पर बेच सकती थी।

लेकिन जरा सोचिये कि क्या ईस्ट इंडिया कंपनी को चुनौती देनेवाली अन्य दूसरी यूरोपीय कंपनियाँ नहीं थीं ? पुर्तगाल तो पहले से ही भारत के साथ व्यापार कर लाभान्वित हो रहा था। इसके साथ ही हॉलैंड, फ्रांस एवं डेनमार्क जैसे देशों की व्यापारिक कंपनियों के हित भी इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी से टकराने लगे। सारी कंपनियां एक जैसी चीजें, जैसे बारीक सूती कपड़े, रेशम, मलमल, नील, शोरा आदि खरीदती थीं। यूरोप में सूती कपड़ों का उत्पादन बिल्कुल ही नहीं होता था। वहां सूती कपड़ों का उपयोग गर्मियों में किया जाता था तथा ऊनी वस्त्रों के अन्दर अस्तर के रूप में जाड़ों में भी किया जाता था। इससे ऊनी कपड़े पहनने में ज्यादा मुलायम और आरामदेह हो जाते थे। पूरे यूरोप में भारत के मसालों की बहुत ज्यादा मांग थी। ठंडा प्रदेश होने के कारण यूरोप के लोगों के भोजन में मांस का उपयोग काफी होता था, जिसे स्वादिष्ट बनाने के लिए तथा मांस को लंबे समय तक उपयोग में लाए जाने योग्य बनाए रखने के लिए इन मसालों का उपयोग किया जाता था। जाड़े के मौसम की भयानक सर्दी में केवल इन्हीं साधनों का प्रयोग कर यूरोप के लोग मांस खा सकते थे। इसी

इन्हें भी जानें

वाणिज्यवाद : वाणिज्यवाद का मतलब लाभ कमाने के उद्देश्य से की गई व्यापारिक गतिविधियाँ आती हैं। इसमें किसी देश की संपदा का अंदाजा उसके पास जमा मूल्यवान धातुओं, विशेषतः स्वर्ण की मात्रा पर निर्भर करता है।

तरह नील का इस्तेमाल कपड़ा रंगने के लिए होता था। शोरा बारूद बनाने के काम आता था। यूरोप में इन सभी चीजों का अभाव था। इसके विपरीत यूरोप में उत्पादित बहुत कम ही चीजें भारत के लोगों के काम आती थीं। इसलिए यूरोप की कंपनियाँ मुख्य रूप से सोना और चाँदी देकर भारत से सामान खरीदती थीं। अधिक से अधिक सामान खरीदने तथा उससे अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिए इन सभी कंपनियों में होड़ लगी रहती थी। इसका सबसे ज्यादा फायदा भारत के कारीगरों व छोटे व्यापारियों को होता था। उनका सामान तैयार होने के पहले ही बिक जाया करता था और वह भी काफी अच्छे दामों पर।

मगर इस होड़ का एक दूसरा पक्ष भी था। जो कंपनी ज्यादा वस्तुएं लेकर यूरोप के बाजार में जाती थी उसे ज्यादा मुनाफा होता था। साथ ही अगर एक ही तरह की वस्तुएं एक से ज्यादा कंपनी बेचती थी तो उस वस्तु की कीमत बाजार में कम हो जाती थी। इसलिए ये कंपनियां हमेशा इस प्रयास में रहती थीं कि दूसरी कंपनी को मुकाबले से बाहर कर दें। ज्यादा मुनाफा कमाने तथा बाजार पर एकाधिकार करने की होड़ में इन कंपनियों के बीच हिंसात्मक झगड़े भी होने लगे।

आजकल की व्यापारिक कंपनियाँ ज्यादा से ज्यादा मुनाफे कमाने के लिए क्या करती हैं?

इन कंपनियों के द्वारा जो माल भारत में खरीदा जाता था उसे जहाजों पर लादे जाने तक सुरक्षित रखने की आवश्यकता होती थी। यह खरीदा गया माल फैक्ट्री में रखा जाता था। उस वक्त इस शब्द का अर्थ वस्तुएँ बनाने की जगह से न होकर एक ऐसे गोदाम से था जिसकी किलेबंदी हो सके, जो दीवारों से घिरा हो और जहाँ आक्रमणकारी से बचाव हो सके। इन फैक्ट्रियों की सुरक्षा के लिए सैनिकों की भर्ती की जाती थी जिन्हें यूरोपीय तरीकों से ट्रेनिंग दी जाती थी। संख्या में कम होने के बावजूद ये सैनिक नियमित ट्रेनिंग की वजह से कई भारतीय राज्यों के सैनिकों के मुकाबले ज्यादा दक्ष होते थे।

अंग्रेज–फ्रांसिसी संघर्ष– अठारहवीं सदी के आरम्भ तक अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने अन्य यूरोपीय कंपनियों को उन महत्वपूर्ण स्थलों से हटा दिया जो उन्होंने एशिया और यूरोप के

बीच के व्यापार के लिए स्थापित किये थे। अब इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य मुकाबला सीधे रूप से फ्रांस की फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ था। इंग्लैंड व फ्रांस की सरकारें भी अपनी–अपनी कंपनियों को इस संघर्ष में पूरा समर्थन करते हुए उन्हें हर संभव सैनिक व आर्थिक मदद देती थीं। आप जानते हैं कि उस वक्त भारत में मुगल भाासन कमजोर हो चुका था और उसकी जगह अनेक छोटे–बड़े राज्य अस्तित्व में आ चुके थे। वे ताकतवर नहीं थे लेकिन हमेशा अपने पड़ोसी राज्यों के साथ युद्ध करते रहते थे। इन्हीं परिस्थितियों का फायदा इन कंपनियों ने उठाया। इन कंपनियों ने ऐसे राज्यों को प्राप्त करने की चेष्टा की, करों में छूट प्राप्त की तथा उस राज्य में व्यापार के एकाधिकार के बदले में वे इन राज्यों को सैनिक मदद देने का वादा करते थे।

इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में कई जगहों जैसे सूरत, मछलीपट्टनम, हुगली, पटना, कासिम बाजार आदि जगहों पर अपनी फैक्ट्रियों की स्थापना की। प्रायः इन्हीं जगहों के आस पास फ्रांसिसी ईस्ट इंडिया कंपनी की भी फैक्ट्रियां थीं। इसके अलावे फ्रांसीसियों ने पूर्वी तट पर चंद्रनगर, बालासोर एवं पश्चिमी तट पर माहे में फैक्ट्रियां स्थापित की थी। फ्रांसीसियों का प्रधान कार्यालय भारत के दक्षिण–पूर्वी समुद्र तट पर पांडिचेरी (वर्त्तमान पुदूचेरी) में था। उस प्रदेश में अंग्रेजों का प्रमुख केन्द्र फोर्ट सेंट जार्ज (मद्रास) में था। उस समय यूरोप में भी इंग्लैंड और फ्रांस के बीच प्रतिद्वंद्विता थीं। यूरोप में जब इन दोनों देशों में संघर्ष आरंभ हुआ तो भारत में इन दोनों कंपनियों के बीच संघर्ष की शुरुआत हुई। यह शुरुआत दक्षिण भारत में कर्नाटक से हुई।

कर्नाटक मुगल साम्राज्य का एक सूबा था जो लगभग स्वतंत्र हो चुका था। फ्रांसिसी कंपनी का मुख्य कार्यालय इनकी सीमा के काफी करीब था। सन 1740 के आस–पास



चित्र 2 – हुगली नदी के किनारे अंग्रेजों की फैक्ट्री

कर्नाटक के नवाब ने यह देख कर कि उसके सूबे में फ्रांसीसियों की शक्ति बढ़ती जा रही है, उनके खिलाफ एक सेना भेजी। इस युद्ध में कर्नाटक की सेना हार गई। इस लड़ाई के परिणाम ने सिद्ध कर दिया कि एक छोटी सेना भी, यदि सैनिकों में अनुशासन हो, उन्हें नियमित रूप से प्रशिक्षण व वेतन दिया जाए, उन्हें यूरोप में विकसित नई बंदूकें दी जाएं तो भारतीय सैनिकों की काफी बड़ी सेना को हरा सकती थी।

सन् 1750 के आसपास कर्नाटक में उत्तराधिकार का संघर्ष शुरू हुआ, जिसमें फ्रांसिसी एवं अंग्रेज कंपनियाँ आमने–सामने आ गईं। इसमें अंग्रेज कंपनी अपनी पसंद के व्यक्ति को कर्नाटक का नवाब बनाने में सफल रही और फ्रांसीसियों को एक बड़ा झटका लगा।

अंग्रेज और बंगाल :–कर्नाटक के बाद संघर्ष का क्षेत्र दक्षिण से उत्तर पूर्व की ओर बंगाल में स्थानांतरित हो गया। बंगाल में अंग्रेजों ने कलकत्ता में अपनी फैक्ट्री स्थापित कर रखी थी। बंगाल मुगल साम्राज्य का एक धनी और बड़ा प्रांत था। इसमें आधुनिक बिहार और उड़ीसा भी शामिल थे। मुगलों की केन्द्रीय सत्ता की कमजोरियों का लाभ उठाते हुए बंगाल के दीवान मुर्शिद कुली खाँ ने अपने को एक स्वतंत्र शासक घोषित कर लिया था। वैसे वे मुगल बादशाह को नियमित रूप से राजस्व भेजते रहे। मुर्शिद कुली खाँ के बाद अलीवर्दी खाँ 1740 ई. में बंगाल का नवाब बना। उसने बंगाल में कुशल प्रशासन कायम किया। अलीवर्दी खाँ ने यूरोप के व्यापारियों को हमेशा अपने नियंत्रण में रखने का प्रयास किया। उसके बाद उसका नाती सिराजुद्दौला नवाब बना। सिराजुद्दौला के नवाब बनने पर उसके परिवार के सदस्यों के बीच साजिश और झगड़े शुरू हो गए। इन साजिशों ने ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल में हस्तक्षेप करने का अवसर दिया।



चित्र 3 – सिराजुद्दौला

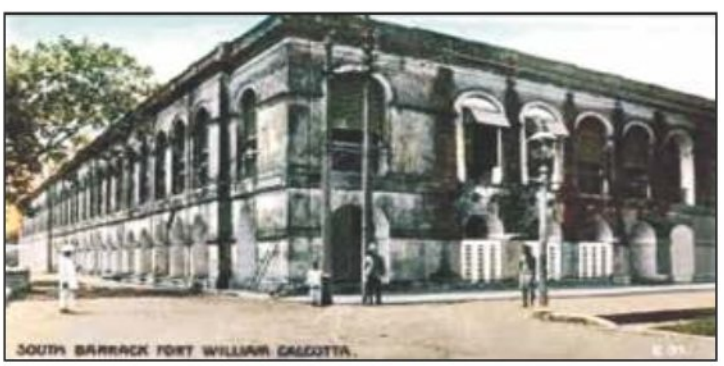
उस समय का बंगाल

एक अंग्रेज इतिहास लेखक एस.सी. हिल, उस समय के बंगाल के किसानों के बारे में लिखता है कि अठारहवीं सदी के मध्य में बंगाल के किसानों की हालत उस समय के फ्रांस या जर्मनी के किसानों की हालत से बढ़ कर थी। यदि उस समय के शहरों की हालत पर नजर डाली जाय तो बंगाल की राजधानी, मुर्शिदाबाद के बारे में स्वयं प्रसिद्ध अंग्रेज सेनापति क्लाइव लिखता है –

'मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लम्बा, चौड़ा, आबाद और धनवान है जितना कि लंदन का शहर। अंतर इतना है कि लंदन के धनाढ्य से धनाढ्य व्यक्ति के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है उससे बेइंतहा ज्यादा सम्पत्ति मुर्शिदाबाद में अनेक के पास है।'

आज मुर्शिदाबाद शहर की क्या स्थिति है। पता करें?

बंगाल पर व्यापार से शासन तक – बंगाल में पहली अंग्रेजी फैक्ट्री 1651 में हुगली नदी के किनारे शुरू हुई। व्यापार में वृद्धि होने के साथ–साथ इसके चारों ओर कम्पनी के अधिकारी एवं व्यापारी भी बसने लगे।



चित्र 4 – फोर्ट विलियम

धीरे–धीरे कंपनी ने इस आबादी के चारों तरफ एक किला बनाना शुरू किया। इस किले का नाम फोर्ट विलियम रखा गया। कंपनी ने अपने व्यापार को ज्यादा से ज्यादा विस्तार देने के लिए 1696 में 1200 रूपये का भुगतान करके तीन गाँवों की जमींदारी यानी लगान एकत्र करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। ये तीन गाँव

थे गोविंदपुर, सूतानाती और कालीकाता। तीनों गाँवों के मिलने के बाद आगे चलकर इन्हें कलकत्ता कहा जाने लगा। अब इसे कोलकाता कहा जाता है।

कम्पनी की फैक्टरी मद्रास एवं बंबई में भी थे। आज इन जगहों को किस नाम से जाना जाता है?

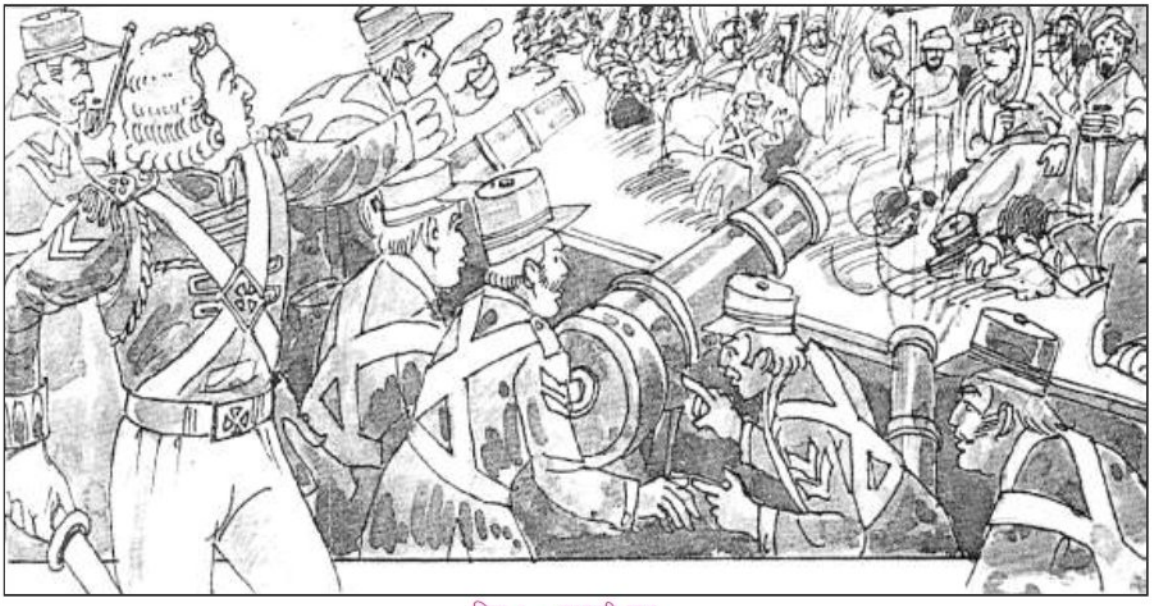
कंपनी ने मुगल सम्राट फर्रूखसियर से 1717ई. में एक शाही फरमान प्राप्त किया। इसके अनुसार कंपनी को तीन हजार रुपये वार्षिक कर के बदले बिना कोई अन्य कर दिए बंगाल में व्यापार करने की अनुमति मिल गई। इस आदेश के बाद कंपनी राज्य में जो माल खरीदती थी, उस पर उसे कोई कर नहीं देना पड़ता था।

जरा सोचें बिना शुल्क चुकाए व्यापार करने के क्या परिणाम हुए होंगे?



चित्र 5 – कासिम बाजार

इस पूरी व्यवस्था से बंगाल के राजस्व का काफी नुकसान हो रहा था। कंपनी को मिली इस छूट का फायदा कंपनी के कर्मचारी अपने निजी व्यापार के लिए भी कर रहे थे। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को यह व्यवस्था पसंद नहीं आयी। उसने कंपनी को बिना शुल्क व्यापार करने से मना कर दिया। उसने कंपनी पर धोखाधड़ी का आरोप लगाते हुए उनकी किलेबंदी के विस्तार पर रोक लगा दी। कंपनी भी अब यह समझ रही थी कि अगर बंगाल के व्यापार को सुरक्षित रखना है तो सिराजुद्दौला को नवाब पद से हटाना होगा। इसके लिए कंपनी ने बंगाल की राजनीति को टटोलना शुरू किया। उसने सिराजुद्दौला से असंतुष्ट व्यक्तियों से साठगांठ करना शुरू किया। सिराजुद्दौला की जगह कंपनी एक ऐसा नवाब चाहती थी जो उसके इशारों पर चल सके। इसके लिए कंपनी ने बंगाल के दो बड़े व्यापारी– अमीचंद और जगत सेठ के साथ–साथ नवाब के सेनापति मीर जाफर को अपनी ओर मिला लिया। कंपनी का प्रयास था कि सिराजुद्दौला के असंतुष्टों में से किसी को नवाब बना दिया जाए। जवाब में



चित्र 6 – पलासी युद्ध

सिराजुद्दौला ने अपने करीब 30,000 (तीस हजार) सिपाहियों के साथ कासिम बाजार में स्थित इंगलिश फैक्ट्री पर हमला बोल दिया। कंपनी की सेना का नेतृत्व राबर्ट क्लाइव कर रहा था। अंततः जून, 1757 में मुर्शिदाबाद के पास पलासी में युद्ध हुआ। इस युद्ध में नवाब की सेना हार गई। सिराजुद्दौला मारा गया और मीर जाफर को बंगाल का नवाब बना दिया गया। इस लड़ाई के साथ भारत में कंपनी की सत्ता की स्थापना की शुरूआत हुई।

इन्हें भी जानें

पलासी का असली नाम फलाशी था जिसे अंग्रेजों ने बिगाड़ कर पलासी कर दिया था। इस जगह को यहाँ पाए जाने वाले पलाशी के फूलों के कारण पलाशी कहा जाता था। पलाश के खूबसूरत लाल फूलों से गुलाल बनाया जाता है जिसका होली में इस्तेमाल होता है।

1 जनवरी 1759 को इंग्लैंड के प्रधानमंत्री विलियम पिट के नाम क्लाइव ने यह पत्र लिखा–

'अंग्रेजी फौज की कामयाबी के जरिए एक महान क्रांति इस देश में की जा चुकी है। उस क्रांति के बाद एक सन्धि की गई है जिससे कंपनी को बड़े जबरदस्त

फायदे हुए हैं। मुझे मालुम है कि इन सब बातों की तरफ एक हद तक अंग्रेज कौम का ध्यान आकर्षित हो चुका है, किन्तु मौका मिलने पर कंपनी इस तरह के प्रयत्नों में लगी रहेगी जो उसके आजकल के इतने बड़े इलाके और आगे की जबरदस्त सम्भावनाओं, दोनों के अनुरूप हो। मैंने कंपनी को अत्यन्त जोरदार शब्दों में इस बात की जरूरत दर्शा दी है कि उन्हें इतनी सेना हिन्दोस्तान भेज देनी चाहिए और बराबर हिन्दोस्तान में रखनी चाहिए, जिससे वह अपने उस समय के धन और इलाके को और बढ़ाने के सबसे पहले मौके से फायदा उठा सके। दो साल की मेहनत और तजुरबे से मैंने इस देश की हुकूमत के बारे में और यहाँ के लोगों के स्वभाव के बारे में जो परिपक्व ज्ञान प्राप्त किया है उससे मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि इस तरह का मौका जल्दी ही फिर आनेवाला है।



चित्र 7 – रॉबर्ट क्लाइव

इस जीत के बाद कंपनी का कर–मुक्त व्यापार पुनः आरंभ हो गया। कंपनी चाहती तो बंगाल का शासन अपने हाथों में ले सकती थी, लेकिन व्यापार के द्वारा ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना उनके लिए ज्यादा महत्वपूर्ण था। इस मुनाफे के अलावे मीर जाफर ने कंपनी के बड़े अधिकारियों को भेंट या घूस के रूप में भारी रकम दी। कंपनी के अधिकारियों की मांगों को पूरा करने में खजाना खाली होने लगा। फिर भी कंपनी संतुष्ट नहीं थी। जल्द ही मीर जाफर को अपनी गलती का अहसास होने लगा। उसने इसका विरोध किया। उसके विरोध के पश्चात् कंपनी ने मीर जाफर को हटा कर उसके दामाद मीर कासिम को 1760 में बंगाल का नवाब बना दिया। मीर कासिम ने नवाब बनने की खुशी में कंपनी को बर्दवान, मिदनापुर तथा चटगाँव जिले की जमींदारी सौंप दी। लेकिन दूसरी तरफ उसने कंपनी पर

अपनी पूर्ण निर्भरता की स्थिति को समझा। उसने कंपनी के शिकंजे से छुटकारा पाने के लिए कई कदम उठाये। उसने मीर जाफर के उन सभी अफसरों को हटाना शुरू किया जो कंपनी से मिले हुए थे। उसने बंगाल की आर्थिक स्थिति को भी सुधारने का प्रयास किया। कंपनी और उसके अधिकारी एवं कर्मचारी मुगल बादशाह फर्रुखसीयर द्वारा प्राप्त शाही फरमान द्वारा मिली सुविधाओं का दुरूपयोग कर रहे थे। वे बिना चुंगी दिये ही व्यापार करते थे। इससे राज्य को आर्थिक नुकसान हो रहा था तथा देशी व्यापारियों को भी धक्का लग रहा था, क्योंकि वे लोग निःशुल्क व्यापार नहीं कर सकते थे। विवश होकर मीर कासिम ने चुंगी की वसूली खत्म कर दी ताकि भारतीय व्यापारी भी कम्पनी के व्यापारियों की बराबरी में व्यापार कर सकें।

26 मार्च 1762 ई. को मीर कासिम ने अंग्रेज कर्मचारियों के व्यवहार की शिकायत की थी। उसने लिखा :

'कलकत्ते से ढाका, कासिम बाजार और पटना तक प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक अंग्रेज अधिकारी, उसके गुमाश्ते तथा एजेंट मेरे कर्मचारियों के स्थान पर स्वयं जमींदार, तालुकेदार और लगान वसूल करनेवाले का कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जिले, नगर और गांव में गुमाश्ते और अन्य कर्मचारी चावल, धान, तेल, बांस, पान आदि का व्यापार करते हैं और कंपनी की दस्तक लिए हुए प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको कंपनी से कम नहीं समझता है।'



चित्र 8 – मीर कासिम

मुर्शिदाबाद पर कंपनी का दबाव बना रहता था। इस दबाव और नियंत्रण से बचने के लिए मीर कासिम अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से हटाकर मुंगेर ले गया। मुंगेर की उसने बड़ी सुन्दर और मजबूत किलेबंदी की और करीब चालीस हजार सैनिकों की फौज तैयार की। अपने सैनिकों को युद्ध के नए तरीके सिखाने के लिए उसने यूरोपीय प्रशिक्षकों को नियुक्त

इन्हें भी जानें

दस्तकः–दस्तक वह प्रमाण पत्र था जो अंग्रेजी फैक्ट्री का अध्यक्ष कंपनी के सामान के संबंध में देता था जिससे उस सामान के व्यापार पर चुंगी नहीं लगती थी।



चित्र 9 – मुंगेर का किला

किया। इतना ही नहीं उसने मुंगेर में बंदूकों एवं तोपों के कारखाने की स्थापना की। आज भी आप मुंगेर में मीर कासिम द्वारा निर्मित किले को देख सकते हैं।

मुंगेर किस नदी के किनारे बसा है? तथा मुंगेर किन–किन चीजों के लिए प्रसिद्ध है, पता करें?

निःसंदेह मीर कासिम द्वारा उठाए गये इन कदमों से कंपनी के अफसर नाराज हो गए और उन्होंने नवाब को हटाने का फैसला किया। मीर कासिम ने महसूस किया कि वह अकेला कंपनी की फौज का सामना नहीं कर सकता है। इसलिए उसने मुगल शासक शाह आलम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला से मदद मांगी। इन



चित्र 10 – 1765 ई० में बंगाल की दीवानी प्राप्त करते

इन्हें भी जानें

बक्सर– कहते हैं वेद मंत्र की रचना करनेवाले बहुत से ऋषि यहाँ हुए। इस स्थान को वेदगर्भ कहते हैं। यहाँ गौरीशंकर मंदिर के पास एक तालाब है जिसका पहले नाम था अघसर अर्थात् पाप को दमन करनेवाला। कहते हैं कि वेदशिरा नाम के एक ऋषि ने दुर्वासा ऋषि को उकसाने के लिए व्याघ्र का रूप बनाया। इस पर क्रोधित होकर दुर्वासा ने उन्हें शाप दिया। किन्तु व्याघ्र ही बना रहा। अन्त में इसी तालाब में नहाने से वेदशिरा अपना असली रूप पा सके। तब से इस तालाब का नाम पड़ा व्याघ्रसर। पीछे इस शहर का नाम धीरे–धीरे व्याघ्रसर से बघसर और अंत में बक्सर हो गया।

तीनों की संयुक्त सेना की कंपनी की सेना के साथ पश्चिम बिहार के बक्सर नामक स्थान पर

1764 ई. में लड़ाई हुई जिसमें भारतीय सेनाओं की हार हुई। इस हार के पश्चात 1765 ई. में शुजाउद्दौला और शाह आलम ने इलाहाबाद में क्लाइव के साथ समझौतों पर हस्ताक्षर किए। समझौतों के अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिल गई। इससे कंपनी को इन प्रदेशों से राजस्व वसूली का अधिकार मिल गया।

कंपनी को दीवानी मिलने से क्या–क्या फायदे हुए होंगे?

इस तरह कंपनी के एक बहुत ही महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति हो गई। अठारहवीं सदी की शुरूआत से ही भारत के साथ कंपनी का व्यापार बढ़ता जा रहा था। लेकिन उसे भारत से चीजें खरीदने के लिए अपने देश से लाए गए सोने और चांदी का ही इस्तेमाल करना पड़ता था। इससे इंग्लैंड में सोने और चांदी की कमी होने लगी थी एवं पूरे इंग्लैंड में इसका विरोध होने लगा था। यहां तक कि वहां की सरकार ने भी कंपनी को किसी और विकल्प की तलाश करने का आदेश दिया था। बंगाल की दीवानी हासिल करना कंपनी के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में उभरा। इससे होने वाले मुनाफे से वे भारत से सामान खरीद कर इंग्लैड भेज सकते थे और उन्हें चाँदी लाने की आवश्यकता नहीं रह गयी। इस तरह अब बगैर अपना कोई पैसा लगाये वे भारत के लोगों से ही पैसा वसूल कर भारत का ही सामान सस्ते में खरीद कर यूरोप भेज सकते थे और मुनाफा कमा सकते थे।



चित्र 11 – कंपनी के लिए काम करने वाला बंगाल का एक सवार, एक अज्ञात भारतीय चित्रकार द्वारा बनाया गया चित्र, 1780

पलासी युद्ध की विजय के बाद अगर वे चाहते तो यहाँ के नवाब बन सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। भाासन चलाने के पचड़े से बचकर उन्होंने व्यापार करना और धन कमाने का सिलसिला जारी रखा। लेकिन बंगाल विजय के पश्चात् वे

भारत में एक महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति के रूप में उभरे और धीरे–धीरे पूरे भारत के आर्थिक संसाधनों पर अपना कब्जा जमाने के प्रयास में लग गए।

बंगाल के बाद कंपनी ने भारत के अन्य राज्यों पर कब्जा जमाने के लिए लड़ाई के साथ–साथ विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक और कूटनीतिक साधनों को अपनाया। ज्यादातर राज्य कंपनी की सैनिक भाक्ति से डर कर उसकी बातें मानने को तैयार हो गये। ऐसे राज्यों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए कंपनी ने उनके साथ 'सहायक संधि' की। इसके अन्तर्गत भारतीय शासकों को अपने क्षेत्र में कंपनी की फौज रखनी पड़ती थी। इसका खर्च भी उन्हें ही देना पड़ता था। अगर कोई शासक खर्च की रकम अदा करने में अपनी लाचारी दिखाता तो जुर्माने के तौर पर कंपनी उनके इलाके को अपने कब्जे में ले लेती। सहायक संधि को स्वीकार करनेवाला पहला शासक हैदराबाद का निजाम और दूसरा शासक अवध का नवाब था। इन दोनों शासकों को अपने राज्यों के कुछ हिस्से कंपनी को देने पड़े थे। इसके अलावा भारतीय शासकों को अपने राज्य में एक अंग्रेज अधिकारी भी रखना पड़ता था। इस अधिकारी को 'रेजिडेंट' कहा जाता था। रेजिडेंट के माध्यम से कंपनी इन राज्यों के अंदरूनी मामलों पर नजर रखती थी। उस राज्य का अगला राजा कौन होगा, किस–किस को पद देना उचित होगा, आदि चीजें भी कंपनी के अफसर ही तय किया करते थे।

कई राजाओं और नवाबों ने कंपनी की चालों को समझा। कंपनी शासन को चुनौती देने के लिए उन्होंने बड़े पैमाने पर तैयारियां की। कंपनी भी ऐसे शासकों से बलपूर्वक निपटने के लिए तैयार थी। आइए कुछ ऐसे भारतीय शासकों के बारे में जानें जिन्होंने डटकर कंपनी का मुकाबला किया।

दक्षिण भारत का मैसूर राज्य (वर्तमान में कर्नाटक) उस समय काफी समृद्ध एवं ताकतवर था। वहां हैदर अली (1761 से 1782) एवं उसके पुत्र टीपू सुल्तान (1782–1799) ने सफलता पूर्वक शासन किया। मालाबार तट पर होनेवाला व्यापार, जहाँ से कंपनी काली मिर्च और इलायची खरीदती थी मैसूर के नियंत्रण में था। 1785 में टीपू सुल्तान ने अपने राज्य में पड़नेवाली बंदरगाहों से चंदन की लकड़ी, काली मिर्च और इलायची के निर्यात पर रोक लगा

दी। टीपू ने फ्रांसीसियों से मित्रता की और अपनी सेना के आधुनिकीकरण में उनकी मदद ली। उसके इन कदमों से कंपनी और मैसूर में लड़ाई छिड़ गई। टीपू की कंपनी के साथ आखिरी लड़ाई 1799 में श्रीरंगपट्म में हुई जिसमें टीपू बहादुरी के साथ लड़ते हुए मारा गया।

टीपू की कहानी

राजाओं की छवि अक्सर जनश्रुतियों से भी बनती है। प्रचलित किस्सों में उनकी ताकत का खूब यशगान किया गया है। 1782 ई. में सुलतान बने टीपू के बारे में कहा जाता है कि एक बार वे अपने फ्रांसिसी दोस्त के साथ जंगल में शिकार खेलने गए थे। वहां एक शेर उनके सामने आ गया। उनकी बंदूक ने मौके पर साथ नहीं दिया और कटार भी जमीन पर गिर गई। फिर भी टीपू ने निहत्थे ही शेर का मुकाबला किया और आखिरकार कटार उठा ली अंत में उन्होंने शेर को मार गिराया। इसी के बाद से उन्हें 'शेर–ए–मैसूर' कहा जाने लगा



चित्र 12 – 'शेर–ए–मैसूर' टीपू सुलतान

टीपू की मौत के बाद अंग्रजों ने मैसूर का शासन पुराने वोडियार राजवंश के हाथों में सौंप दिया। मैसूर राज्य के कुछ इलाके कंपनी ने हथिया लिया और वहां का नया राजा पूर्णतः कंपनी के अधीन हो गया।



चित्र:–13

अंग्रेज और मराठे– मराठों के बारे में आप कक्षा सात में भी पढ़ चुके हैं कंपनी ने आगे मराठों की ओर ध्यान दिया। 1761 ई. में पानीपत की तीसरी लड़ाई में हार के बावजूद मराठे भारत के बहुत बड़े भाग को नियंत्रित करते थे। किन्तु वे आपस में बँटे हुए थे। इनकी बागडोर सिंधिया, होलकर, गायकवाड़ और भोंसले जैसे अलग–अलग राजवंशों के हाथों में थी।

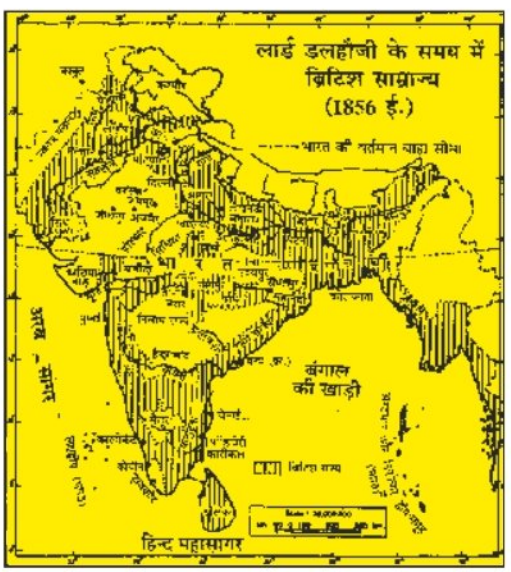
कंपनी के अधिकारियों और फौज ने मराठा प्रमुखों की आपसी लड़ाइयों का फायदा उठाया और एक के बाद एक कई लड़ाइयों में मराठों को कमजोर कर दिया। अंततः 1817–19 के युद्ध में मराठे पूरी तरह पराजित हुए और मराठों का क्षेत्र भी कंपनी के प्रभावाधीन हो गया।



चित्र 14 – महाराजा रणजीत सिंह

कंपनी और पंजाब– अब कंपनी का ध्यान पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह की ओर गया। 1799 ई. से 1839 ई. तक पंजाब, कश्मीर और आधुनिक हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों पर इनका शासन था। रणजीत सिंह के जीवनकाल में ही उसके राज्य के विस्तार को कंपनी ने रोक दिया। लेकिन इनके जीवनकाल में कंपनी पंजाब को नियंत्रित करने में असफल रही। रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पंजाब में अस्थिरता आ गई। इस स्थिति का फायदा उठाकर 1849 में कंपनी ने पंजाब को अपने नियंत्रण में लिया।

विलय नीति– सीधे युद्धों के अलावा भारतीय राज्यों को अपने नियंत्रण में लेने के लिए कंपनी ने अन्य बहाने भी ढूंढने शुरु किये। 'विलय नीति' भी ऐसा ही एक बहाना था। इस नीति के अन्तर्गत अगर किसी शासक की मृत्यु हो जाती थी और उसका अपना कोई पुत्र नहीं होता तो उसके राज्य को कंपनी अपने नियंत्रण में ले लेती थी। इस नीति के तहत 1848 ई. से 1856 ई. के बीच भारत के कई राज्य सतारा, संबलपुर, उदयपुर, नागपुर और झांसी कंपनी के नियंत्रण में आ गये थे।



चित्र – 15

अंग्रेजों ने विलय नीति के द्वारा जिन भारतीय राज्यों को अपने नियंत्रण में लिया उसे चित्र 15 में खोजें।

कंपनी हुकूमत की स्थापना– इस प्रकार 1856 ई. तक लगभग सम्पूर्ण भारत पर कंपनी का नियंत्रण हो चुका था। जरा सोचिये 1600 ई. में स्थापित एक व्यापारी कंपनी कैसे इतने बड़े साम्राज्य को अपने नियंत्रण में लेने में सफल रही। आइए उसकी सफलता के कुछ कारणों पर विचार करें।

जैसा कि आपने कक्षा–7 में पढ़ा था कि 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद कई नये स्वतंत्र क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ था। इनमें आपसी तालमेल का अभाव था। हर राज्य दूसरों के इलाके हड़प कर अपने राज्य का विस्तार चाहता था। एकता के अभाव के कारण भारतीय राज्य एक–एक कर आसानी से कंपनी के हाथों पराजित हो गए।

कंपनी की सेना के पास भारतीय सेनाओं से बेहतर तोपें और बंदूकें थीं। भारतीय सैनिकों की तुलना में उसे नियमित रूप से अभ्यास कराया जाता था। भारतीय सैनिकों की तुलना में वह अधिक अनुशासित थी और उन्हें नियमित रूप से वेतन मिलता था।

कंपनी की सफलता के उपर्युक्त कारणों में से आपके अनुसार सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण क्या हो सकता है। इनके अतिरिक्त आप किसी और कारण के बारे में बता सकते हैं?

अपना लाभ सर्वोपरि– आपने देखा कि ईस्ट इंडिया कंपनी जो हमलोगों के देश में व्यापार करने आयी थी, किस प्रकार उसने यहाँ की आन्तरिक कमजोरियों का फायदा उठाते हुए अपने आपको एक राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित कर लिया। यहाँ के आर्थिक संसाधनों से लाभ उठाते हुए इस देश के शासक बन बैठे। इस देश का शासक बनने के बाद इस देश में वस्तुओं के उत्पादन एवं उससे होनेवाले मुनाफे को कंपनी अपने जरूरत और लाभ के अनुसार तय करने लगी। आइए इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयास करें। सबसे पहले कंपनी भारत में बना कपड़ा यूरोप में बेचकर मालामाल हो रही थी। फिर जब इंग्लैंड में कपड़े के कारखाने लग गए तो वे वहाँ का बना कपड़ा और दूसरे सामान भी भारत में बेचने लगी। भारत से वे कपास खरीद कर अपने देश के कारखानों को बेचती। वे भारत में कई जरूरी फसलें उगवा कर उन्हें दूर–दूर भेजती– जैसे नील, पटसन, अफीम, गन्ना, चाय

कॉफी आदि। इसके अलावे कंपनी कारीगरों से जोर जबरदस्ती से बहुत कम कीमत पर माल खरीदने की कोशिश करती। कारीगर गाँव छोड़कर भाग रहे थे। कंपनी किसानों से भी ज्यादा लगान वसूल करने की कोशिश करती। यह सब किस प्रकार हो रहा था, यह आप आगे के पाठों में पढ़ेंगे। कंपनी की आड़ में राज्यों में लूट–खसोट, धोखा–धड़ी मची हुई थी।

अभ्यास

आइए फिर से याद करें :–

1. रिक्त स्थानों को भरें:

(क) भारत और यूरोप के बीच स्थल मार्ग से होनेवाले व्यापार में .....की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

(ख) कंपनी द्वारा खरीदा गया माल ..... में रखा जाता था।

(ग) एक के बाद एक कई लड़ाइयों ने मराठों को ..... कर दिया।

(घ) ..... अंग्रेजों के साथ सबसे पहले 'सहायक संधि' को स्वीकार किया।

(ङ) ..... ने विलय नीति का अनुसरण किया।

2. सही और गलत बताइए।

(क) यूरोप के व्यापारी भारत में अपना माल बेचने और बदले में यहाँ से सोना चाँदी लेने आए थे।

(ख) ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में व्यापार करने का एकाधिकार मिल गया।

(ग) भारतीय राज्य एकता के अभाव में एक–एक कर अंग्रेजी शासन के अधीन होते चले गए।

(घ) कर मुक्त व्यापार से बंगाल के राजस्व का काफी नुकसान हो रहा था।

(ङ) कंपनी की सेना की जीत हुई, क्योंकि उनके पास भारतीय सेनाओं से बेहतर तोपें और बंदूक थीं।

आइए विचार करें :–

(i) यूरोप की व्यापारिक कंपनियों ने क्यों भारत के राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू किया?

(ii) अंग्रेज बंगाल पर क्यों अधिकार करना चाहते थे?

(iii) क्यों और किन परिस्थितियों में भारतीय शासकों ने सहायक संधि की शर्तों को स्वीकार किया?

(iv) पलासी और बक्सर के युद्धों में आप किसे निर्णायक मानते हैं? और क्यों?

आइए करके देखें :–

(i) मीर कासिम, हैदरअली, टीपू सुल्तान और महाराजा रणजीत सिंह के चित्र अपनी उत्तर पुस्तिका में चिपका कर इनके बारे में जानकारियाँ इकट्ठी करें।

अध्याय - 3

ग्रामीण जीवन और समाज
(अंग्रेजी शासन और भारत के गांव)

पिछले अध्याय में आपने यह जाना कि किस तरह एक व्यापारिक कंपनी ने भारत में अपना राज कायम किया। आपने यह भी जाना कि इसका एक मात्र उद्देश्य व्यापारिक लाभ प्राप्त करना था। इस लाभ के लिए ही अंग्रेजों ने भुरुआत में तो भारतीय राज्यों को अपने अधिकार में लिया और आगे चलकर ऐसे नियम–कानून बनाये, ऐसी व्यवस्थायें लागू की जो उनके भासन और उनके लाभ को लगातार बढ़ाती रहे। इन सभी बातों को आप आगे के अध्यायों में पढ़ेंगे। वर्तमान पाठ में आप इस बात को जानेंगे कि अंग्रेजों के भासन का प्रभाव भारतीय गाँवों पर किस प्रकार पड़ा।

अंग्रेजी शासन के पहले के भारतीय गाँव – हमेशा से ही भारत की अधिकांश आबादी गावों में रहती आयी है और आज भी कुल आबादी का 68 प्रतिशत भाग गाँवों में ही रहती है। इसका अर्थ यह है कि भारत की अर्थव्यवस्था गाँवों पर ही आधारित थी। गाँवों के लोगों की मेहनत और श्रम से बड़े–बड़े राज्यों और साम्राज्यों का निर्माण हुआ। वहाँ रहने वाले किसानों के कठोर श्रम से प्राप्त आय से ही यह देश आत्मनिर्भर और सम्पन्न था। ज्यादातर गाँवों में सभी तरह के काम करने वाले लोग रहते थे जो उन गाँवों की जरूरतों को पूरा करते थे। उस समय जमींदारों का एक प्रभावशाली वर्ग भी गाँवों में रहता था जिनके पास राजा द्वारा दी गई काफी जमीन होती थी। वे ही गाँवों से लगान (कृषि उपज पर राजा द्वारा किसानों से लिया जाने वाला कर) की वसूली करते थे। इस के एवज में या फिर राज्य के अन्य कामों को देखने के एवज में इन्हें जमीनें मिलती थीं।

उस समय गाँवों के लोग अपनी आवश्यकता की ज्यादातर चीजों का उत्पादन एवं निर्माण स्वयं करते थे। यहाँ की अधिकांश आबादी का मुख्य काम कृषि था। खेती के लिए जमीन उन्हें राजा से मिलती थी इसी के बदले लगान लिया जाता था। समूची जमीन का मालिक राजा ही होता था। जमींदार एवं किसानों का भूमि पर अधिकार तभी तक रहता जब

तक राज्य को लगान मिलता रहता था। ऐसा नहीं होने पर तुरंत ही राजा द्वारा जमीन छीन ली जाती थी।

गाँवों में लोग प्रायः मिलजुलकर सहयोग से रहते थे। छोटे–मोटे झगड़ों का समाधान भी आपस में ही हो जाता था। राजा का या उसके अधिकारियों का गाँवों में ज्यादा दखल नहीं रहता था। बस वे निर्धारित लगान वसूला करते थे। राज्य अपने कर्मचारियों और जमींदारों के माध्यम से किसानों का पूरा ध्यान रखता था। वह जानता था कि अगर इन किसानों द्वारा खेती का काम बन्द कर दिया जाएगा तो उसकी आमदनी कम हो जायेगी। यहीं से उनके लिए खर्च हेतु पैसा, व्यापारियों के लिए वस्तु एवं सेना पुलिस तथा अन्य कर्मचारियों के लिए भोजन आदि का प्रबंध होता था। इस तरह गाँव ही किसी भी भाासन की आमदनी का मुख्य स्रोत था इसलिए अंग्रेजी सरकार ने भी सबसे पहले गाँवों पर ही ध्यान दिया और उस पर अपना नियंत्रण स्थापित करने की सोची।

अंग्रेजों को लगान वसूली का अधिकार मिला– पिछले अध्याय में आप ने यह जाना कि किस तरह अंग्रेजों को भारत के एक बड़े और समृद्ध क्षेत्र (बंगाल, बिहार, उड़ीसा) से लगान वसूली का अधिकार मिल गया। इससे भारत से व्यापार के लिए चीजें खरीदने के लिए अपने देश से धन लाने की उनकी समस्या का समाधान हो गया लेकिन अब भारत में कई और तरह के खर्च उनके सामने आ गए। इनमें सबसे प्रमुख अपने अधिकार में आए इलाकों के प्रशासन का खर्च था। दूसरे, उन्हें अपने साम्राज्य की वृद्धि के लिए लगातार युद्ध करना पड़ रहा था उसका खर्च था। इन सभी खर्चों को पूरा करने के लिए उनके पास आमदनी का एक ही स्रोत था। वह था बंगाल की लगान वसूली में होने वाला मुनाफा। लगान वसूली के लिए शुरू में तो उन्होंने पहले से चली आ रही व्यवस्था को ही बनाए रखा। इसके लिए शुरुआत में वे पहले से विद्यमान जमींदारों से ही काम लेते रहे। लेकिन ऐसा ज्यादा दिनों तक नहीं चला।

ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त करने की इच्छुक अंग्रेजी सरकार वर्तमान व्यवस्था से प्राप्त होने वाले आय से संतुष्ट नहीं थी। इसके लिए आगे चलकर उन्होंने लगान वसूली के अधिकार की नीलामी करनी भुरू की। जो व्यक्ति किसी खास इलाके से ज्यादा लगान वसूल

करने की बोली लगाता उसे लगान वसूलने का अधिकार दे दिया जाता। इसे आप ठेकेदारी व्यवस्था कह सकते हैं। परंतु यह व्यवस्था ज्यादा दिनों तक नहीं चल पायी। इस व्यवस्था में ठेकेदारों को फायदा हो रहा था। वे तय राशि से जितना ज्यादा वसूल करते वह उनका ही हो जाता था।



चित्र 1 – अंग्रेजो के समय का गाँव

किसानों के लिए भी यह तरीका बहुत हानिकारक था क्योंकि उन्हें यह पता ही नहीं होता कि किस साल उन्हें कितना लगान देना है। दूसरे, ठेकेदारों का ध्यान केवल पैसा वसूली पर होता था, कृषि का उत्पादन या किसानों की आय कैसे बढ़े, इसकी चिंता उन्हें नहीं होती थी। कंपनी सरकार के लिए भी यह एक समस्या थी। उन्हें व्यापार के लिए एक निश्चित धनराशि निश्चित समय पर चाहिये था मगर इस व्यवस्था से उन्हें यह पता नहीं चल पाता था कि अगले वर्ष उन्हें कितनी आमदनी होने वाली है। उन्होंने कुछ वर्षों तक इस व्यवस्था को चलाए रखा। लेकिन वे एक ऐसी व्यवस्था चाहते थे जिससे उन्हें ज्यादा से ज्यादा एवं नियमित धन लगान के रूप में प्राप्त होता रहे।

कल्पना करें लगान वसूली का अधिकार मिलने से गाँवों में क्या परिवर्तन आया होगा, आपकी नजर में अब भूमि का मालिक कौन हो गया।

लगान व्यवस्था की शुरुआत– कई तरह के प्रयासों के बाद आखिर में सन् 1789 के आस पास कंपनी सरकार ने जमींदारों के साथ एक करार किया जिसके अंतर्गत उनके द्वारा कंपनी को दिया जाने वाला लगान 10 वर्षों के लिए तय कर दिया गया। यह राशि जमींदारों

द्वारा किसानों से वसूले गए लगान का 9/10 भाग तय कर दिया गया। आगे चलकर सन् 1793 में इसी राशि को हमेशा के लिए निश्चित मान लिया गया। इस राशि में भविष्य में कोई बढोत्तरी नहीं होनी थी। इसे स्थायी बंदोबस्त का नाम दिया गया। एक आकलन के अनुसार यदि किसानों की उपज को 100 माना जाए तो इस व्यवस्था के तहत अंग्रेजी सरकार को उसमें से लगभग 45 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त होता था। जमींदार और उसके कारींदे अपने लिए करीब 15 प्रतिशत हिस्सा वसूलते थे और शेष 40 प्रतिशत किसानों के पास बचता था। अंग्रेजी सरकार ने जमींदारों से यह करार किया कि भविष्य में इस राशि में कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा। लेकिन जमींदारों को लगान की तय राशि नियमित तिथि को सूरज डूबने के पहले सरकारी कार्यालय में जमा करवाना अनिवार्य था। ऐसा नहीं करने पर उनकी जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी। सरकार को इस बात की कोई परवाह नहीं थी कि अकाल या बाढ़ के कारण फसल नष्ट हो गयी है या पैदावार कम हुई है। जमींदारों को हर हाल में तय राशि नियत तिथि को जमा कराना ही था।

यह व्यवस्था बंगाल (वर्तमान बंगाल, बिहार व उड़िसा) तथा आंध्र प्रदेश के कुछ इलाकों में लागू किया गया। सन् 1790 के आस–पास तक ये ही इलाके कंपनी के अधीन थे। इस व्यवस्था के लागू होने से भारतीय ग्रामीण समाज में एक नई बात सामने आयी। जमींदार जो अब तक अपने इलाके में केवल लगान वसूल करने के अधिकारी होते थे अब जमीन के मालिक बना दिए गए। यह कंपनी सरकार के अधिकारियों की बहुत सोची समझी नीति थी। इसके बाद अगर कोई जमींदार नियत तिथि तक पूरी राशि का इन्तजाम नहीं कर पाता था तो उसके पास यह विकल्प होता था कि वह अपनी जमींदारी का कुछ हिस्सा गिरवी रख कर कर्ज ले ले और अपना भुगतान कर दे। या फिर वह अपने इलाके की कुछ जमीन बेच कर भी पैसे का इन्तजाम कर सकता था।

ऐसा करने के पीछे एक दूसरी सोच भी थी। अंग्रेज ऐसा सोचते थे कि जमीन के मालिक बन जाने से जमींदार खेती में सुधार और पैदावार बढ़ाने का प्रयास करेंगे। उनके अपने देश तथा यूरोप के अन्य देशों में कुछ ऐसी ही व्यवस्था थी। एक बात और वे भारत में

अपने शासन को मजबूत बनाने के लिए भारतीय लोगों में से ही अपने लिए एक समर्थक समूह तैयार करना चाहते थे। एक ऐसा समूह जो अपना अस्तित्व अंग्रेजों के यहां बने रहने में देखता हो। इसके लिए जमींदारों से बेहतर समूह उनके लिए और कोई नहीं हो सकता था। इन लोगों का अपने इलाके के गाँवों पर काफी प्रभाव होता था और इनके माध्यम से अंग्रेजों के लिए भारतीय गाँवों पर नियंत्रण कर पाना भी काफी आसान था। आगे चल कर अंग्रेजी सरकार की यह नीति काफी सफल सिद्ध हुई। बीसवीं सदी में जब उनके खिलाफ आंदोलन भुरू हुए तो इस वर्ग के अधिकांश लोगों ने उनका साथ दिया।

मगर इस व्यवस्था की सबसे बड़ी खामी यह थी कि सरकार ने जमींदारों से उन्हें दी गई जमीन के बदले कितनी लगान ली जानी थी यह तो तय कर दिया लेकिन किसानों से जमींदार कितना वसूलेंगे यह तय नहीं किया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि कई जमींदार जरूरत से ज्यादा पैसा किसानों से वसूल करते थे जिससे किसानों पर कर का बोझ काफी बढ़ गया। दूसरे, समय पर लगान न चुका पाने के कारण कई पुराने जमींदार जो अपने किसानों से बलपूर्वक लगान वसूल नहीं करते थे उनकी जमींदारी चली गई और उनकी जगह ऐसे लोगों ने ले ली जिन्हें किसानों व गाँवों के हित से कोई मतलब नहीं था। कई जमींदार कर्ज के बोझ से दब गए और धीरे–धीरे उनकी जमींदारी महाजनों व व्यापारियों के हाथ चली गई।

इस व्यवस्था के लागू होने से कंपनी सरकार की समस्या थोड़े दिनों के लिए समाप्त हो गयी। लेकिन सन् 1815–20 तक उनके अधीन कई और इलाके आ गए और वहां के लिए भी कोई लगान व्यवस्था तय करनी थी। स्थायी व्यवस्था के लागू होने के समय से कंपनी के अधिकारियों में दो मत थे। एक मत तो इसके पक्ष में था जबकि दूसरे मत वाले लोगों को यह लगता था कि इससे कंपनी सरकार को नुकसान हो रहा है। वो चाहते थे कि सरकार को कुछ वर्षों बाद लगान राशि को बढ़ाने का अधिकार अपने पास रखना चाहिए था। उनका मानना था कि सरकार का खर्च लगातार बढ़ता जायेगा और इसे पूरा करने का कोई और

रास्ता नहीं है। दूसरी ओर अधिकारियों को यह भी समझ में आने लगा था कि इस व्यवस्था में सबसे ज्यादा फायदा जमींदारों को हो रहा था। उन्हें बगैर कुछ किये ही अच्छा धन मिल रहा था। तो उनके विचार से क्यों नहीं सीधा किसानों से ही संपर्क किया जाए। इस विचारधारा के पीछे एक अंग्रेज अर्थशास्त्री रिकार्डो की सोच का बड़ा हाथ था। अब जब कुछ नए इलाकों में लगान व्यवस्था तय करने का समय आया तो दूसरे मत वाले लोगों की जीत हुई।

रिकार्डो के अनुसार (उनकी पुस्तक का नाम है "प्रिन्सिपल्स ऑफ पॉलिटिकल इकॉनोमी" जो सन् 1821 में प्रकाशित हुई थी) जमींदार खुद उत्पादन के लिए कुछ नहीं करता है। मजदूर अपना श्रम लगाता है, पूंजीपति अपनी पूंजी लगाता है, उद्यमी उद्योग संगठन में सक्रिय होता है। जमींदार जमीन के लिए जो किराया पाते हैं, वह सीमित मात्रा में उपलब्ध जमीन पर उनके एकाधिकार की वजह से उन्हें मिलता है। उनके विचार में उत्पादन में भूस्वामियों का कोई सकारात्मक योगदान नहीं होता है इसलिए शासन को उनकी आय पर कर लगाना चाहिए। उचित तो यह होता कि जमीन पर उनके मालिकाना अधिकार को समाप्त कर भाासन सारी जमीन अपने हाथ में ले ले और उसे उद्यमी लोगों को उपलब्ध कराए।

गतिविधि – रिकार्डो के मत के अनुरुप बड़े एवं सम्पन्न किसानों की आय पर वर्तमान समय में कर लगाना क्या उचित होगा? सोचें ।

रैयतवारी व्यवस्था

एक नई व्यवस्था दक्षिण और पश्चिम भारत में रैयतवारी व्यवस्था के नाम से शुरू की गई। इसमें किसानों के साथ सीधा करार किया गया। इन इलाकों में परंपरागत रूप से जमींदार नहीं होते थे इसलिए कंपनी सरकार ने किसी नए व्यक्ति को जमींदार बना कर स्थापित करने की जगह सीधा किसानों से ही संबंध स्थापित किया। इस व्यवस्था में लगान उपज के आधार पर तय हुआ। पहले जमीन की गुणवत्ता देखी गई, फिर पिछले कुछ वर्षों की उपज का औसत निकाला गया, उसमें किसानों की खेती पर होने वाले खर्च को काट कर जो

बचता था उसका 50 प्रतिशत लगान के रूप में तय कर दिया गया। मगर इसे स्थायी नहीं बनाया गया। प्रत्येक 30 वर्ष बाद लगान की राशि में बदलाव किया जाना तय किया गया। इस व्यवस्था में किसानों को जमीन का मालिक माना गया था।

महालवारी व्यवस्था– पंजाब, दिल्ली एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों पर जब अंग्रेजी सरकार का कब्जा हुआ तो वहां उन्होंने सीधा किसानों की जगह गाँव या काफी बड़े जमीन मालिकों या परिवारों जिन्हें महाल कहा जाता था, को इकाई माना और उनके साथ लगान वसूली का करार किया। इस व्यवस्था को 'महालवारी व्यवस्था' के नाम से जाना जाता है। इसमें बड़े परिवार या गाँव प्रमुख गाँव भर से लगान इक्ट्ठा कर सरकार तक पहुंचाते थे। लगान की मात्रा तय करने का तरीका यहां भी रैयतवारी व्यवस्था वाला ही था – उपज से खेती के खर्च को घटा कर जो बचता था उसका लगभग 50 प्रतिशत लगान तय कर दिया गया । इसे मात्र 30 वर्षों के लिए ही लागू किया गया था।

महाल–पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश के इलाके में बड़े गांव या कुछ गावों के समूह को महाल कहा जाता था।

इन तीनों प्रकार की भूमि व्यवस्था को अगर अंग्रेजों के शासन वाले भारतीय क्षेत्र में प्रसार के तहत देखें तो यह निष्कर्ष निकलता है– कुल कृषि योग्य भूमि में 19 प्रतिशत स्थायी बंदोबस्त के अन्तर्गत था। 29 प्रतिशत महलवारी व्यवस्था के तहत एवं 52 प्रतिशत रैयतवारी व्यवस्था में आता था। इसे आप मानचित्र से भी देख सकते हैं।



नई लगान व्यवस्थाओं का ग्रामीण जीवन पर प्रभाव– सबसे पहली बात तो यह कि स्थायी बंदोबस्त से लगभग आधे पुराने जमींदारों की जमींदारी उनके हाथ से चली गई क्योंकि उन्होंने तय समय पर लगान जमा नहीं किया था। दरअसल उनके लिए किसानों से लगान के लिए ज्यादा जोर जबरदस्ती करना संभव नहीं था। किसानों के साथ उनके काफी पुराने संबंध थे। दोनों में भावनात्मक स्तर पर एक संबंध बना होता था। इससे फसल खराब होने या अकाल की स्थिति में लगान के लिए दबाव बनाना असम्भव होता था। आपने यह भी देखा है कि नई व्यवस्था में जमीन का मालिक किसान या जमींदारों को बना दिया गया। इससे लगान समय पर जमा करने के लिए इसे बेचने या बंधक रखने का चलन शुरू हो गया। इससे गाँवों में महाजन के रूप में एक प्रभावी समूह आ गया। इन लोगों के द्वारा जमीन के एवज में धन दिया जाता था। धीरे–धीरे यह समूह गाँवों में सबसे महत्वपूर्ण हो गया क्योंकि गाँवों के कई किसान और जमींदार इनसे कर्ज लेते थे। लगान की दर तीनों ही व्यवस्थाओं में काफी ऊँची थी। इसलिए किसान खेती में सुधार के लिए कोई प्रयास कर पाने में भी असमर्थ हो गए। रैयतवारी और महालवारी में तो किसान खेती में सुधार का प्रयास भी नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन्हें पता था कि अगर वे ऐसा करेंगे तो अगली बार उनके लगान की दर बढ़ा दी जाएगी। अंग्रेज सरकार को तो केवल लगान से मतलब होता था, उन्हें खेती में सुधार की कोई चिंता नहीं रही। इस तरह तीनों ही व्यवस्था ने गाँवों के किसानों और जमींदार दोनों को एक तरह से बर्बाद कर दिया। मजबूत हुए तो महाजन या नए जमीन के मालिक जिन्होंने पुराने जमींदारों की जगह ले ली थी।

1875 का दक्कन विद्रोह

महाराष्ट्र के पूणा और अहमदनगर जिला में 1875 में किसानों के गुस्से ने बड़े पैमाने पर उपद्रव भड़काया। इन क्षेत्रों में रैयतवारी प्रणाली लागू थी। यहाँ किसान लगान की ऊँची दर के कारण परेशान थे। समय पर लगान चुकाने के लिए वे महाजनों से ऊँचे ब्याज दर पर पैसा लेते थे और इस तरह वे उनके चंगुल में जीवन भर के लिए फँस जाते थे। इस विद्रोह में किसानों ने महाजनों को अपना निशाना बनाया। उनके

खिलाफ अहिंसक तरीके से अपना विरोध शुरू किया। महाजनों का सामाजिक बहिष्कार हुआ उनके घरों पर हमला करके उनकी लाल बही (दस्तावेज) को लूटा गया और उसे सामूहिक रूप से जलाया गया। दरअसल उस बही में ही किसानों को दिये गए धन और उसका ब्याज का पूरा हिसाब किताब होता था। इसलिए किसानों ने उसे जलाया। यह एक तरह से महाजनों के चंगुल से उनके मुक्त हो जाने को सूचित कर रहा था। धीरे–धीरे महाजनों ने उन क्षेत्रों को छोड़कर चले जाना ही बेहतर समझा। इस तरह यह विद्रोह महाजनों के शोषण के विरुद्ध किया जाने वाला अहिंसक संघर्ष के रूप में जाना गया।

बाजार के लिए नई फसलों का उत्पादन– नई लगान व्यवस्था के साथ–साथ अंग्रेजी सरकार के अधिकारियों ने अपनी जरूरत के हिसाब से अलग तरह की फसलों के उत्पादन के लिए भी किसानों को प्रोत्साहित किया। ये आम खाद्य फसलों से अलग थीं जिनसे कारखानों में दूसरी वस्तुएं तैयार की जाती थीं। उदाहरण के लिए बंगाल में किसानों को पटसन (जूट), असम में चाय, बिहार में नील, शोरा और अफीम, मध्य व पश्चिम भारत में कपास, इत्यादि फसलों का उत्पादन करने को कहा गया। इन फसलों का किसानों या गांव के लोगों के लिए कोई विशेष इस्तेमाल नहीं था। मगर बाजार में इनकी कीमत ज्यादा होती थी और किसान इसे बेच कर नकद पैसे प्राप्त कर सकते थे। इसलिए इन्हें नकदी फसल भी कहा जाता है। कंपनी को इन फसलों की आवश्यकता अपने देश के कारखानों में कच्चे माल के रूप में थी और कुछ अन्य फसलों को वे दुनिया के अलग देशों में बेच कर अच्छा मुनाफा कमाते थे।

सभी तरह के नकदी फसलों में अंग्रेजों का ज्यादा जोर नील के उत्पादन पर था। बहुत पहले से ही समूचे यूरोप में कपड़ों को रंगने के लिए भारतीय नील की मांग थी। इसके व्यापार में लगे अंग्रेज व्यापारियों को इससे काफी मुनाफा होता था। इसलिए वे किसानों को अग्रिम धन देकर सहायता भी करते थे। आगे चलकर जब वे शासक बन गए तो इसके उत्पादन को बढ़ाने के लिए किसानों को डराना, धमकाना या लोभ–लालच भी देना शुरु कर दिया। कई

अंग्रेज अधिकारी एवं व्यापारियों ने तो स्वयं ही जमींदारों से जमीन पट्टे पर लेकर उसमें मजदूरों से नील की खेती करवाना शुरू कर दिया।

नकदी फसल ऐसा कृषि उत्पाद होता है जिसे खेतों से सीधे व्यापारियों द्वारा खरीद लिया जाता था। जैसे गन्ना, नील, तम्बाकू, अफीम, इत्यादि।

नील की खेती की समस्याएँ– नील की खेती किसानों के लिए फायदेमंद नहीं थी। मगर उन्हें अपनी जमीन के एक बेहतर हिस्से पर इसकी खेती करनी पड़ती थी। इसके लिए उन्हें सरकारी अधिकारियों द्वारा बाध्य किया जाता था। किसानों की प्राथमिकता हमेशा से ही खाद्य फसलों का उत्पादन होता था। इससे उन्हें न केवल उस साल के लिए अनाज मिलता था बल्कि बुरे दिनों के लिए वे उसमें से कुछ बचा के भी रख लेते थे। नील की खेती धान के मौसम में ही की जाती थी और अंग्रेज बगान मालिक किसानों से जबरन हल–बैल लेकर पहले अपने नील की बोआई करवाते थे। इससे धान के फसल में देर हो जाती थी। इसके अलावा जिस खेत में नील की खेती होती थी उसमें फसल कटने के बाद उस साल कोई और फसल नहीं उगायी जा सकती था। इस सबका असर यह होता था कि किसानों के पास अनाज की कमी हो जाती थी। जब कभी भी सूखा या बाढ़ के कारण फसलों का उत्पादन कम होता था तो किसानों के पास पहले का रखा अनाज नहीं होता था। ऐसे में वे या तो महाजनों से कर्ज लेते थे या भूखे रहते थे।

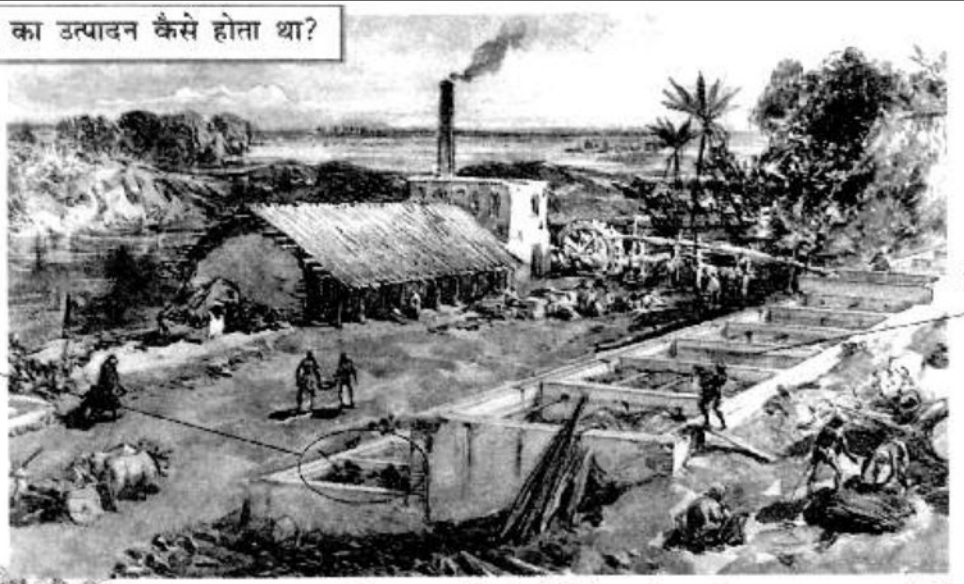
नील दर्पण– नील की खेती के कारण किसानों को जो कठिनाई हो रही थी उसे उस समय के एक बंगाली नाटक ''नील दर्पण'' में बड़े अच्छे तरीके से दिखाया गया है। इस पुस्तक के लेखक दीन बंधु मित्र थे। 1860 में यह पुस्तक बिना किसी लेखक के नाम के छपी थी ताकि अंग्रेजों के गुस्से को उन्हें झेलना नहीं पड़े। इसमें उसकी खराब नीति का बखान किया गया था। इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद माइकेल मधुसूदन दत्त ने किया। इस नाटक में नील किसानों की दुर्दशा वास्तविक रूप में सामने आई है–

एक नील किसान गुलुक चौधरी (नाटक का पात्र) अपने साथी किसान से कहता है

कि ''मैं अब नील की खेती नहीं करूँगा, चाहे इसके लिए मुझे जेल ही क्यों न जाना पड़े। भीख मांग कर खा लूँगा। अगर सरकार ने ज्यादा तंग किया तो गाँव को छोड़ दूँगा, लेकिन अब नील की खेती नहीं करूँगा''।

नील किसानों का विद्रोह– बंगाल में नील की खेती बड़े पैमाने पर करवायी जा रही थी। इससे वहां के किसान बहुत दुखी थे। बार–बार पड़ने वाले अकाल व भुखमरी से परेशान किसानों ने विद्रोह कर दिया। वे नील की खेती करने से मना करने लगे। साथ ही उन्होंने बगान मालिकों को लगान चुकाना भी बन्द कर दिया। औरतों ने पुरुषों के साथ मिलकर नील की फैक्ट्रियों पर जहाँ नील बनाया जाता था (इसे आप चित्र में देख सकते हैं), पर हमला बोल दिया। इस संघर्ष में भारतीय जमींदारों ने भी किसानों का साथ दिया। वे अपने क्षेत्र में अंग्रेज बगान मालिकों को बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। जैसे–जैसे विद्रोह फैलने लगा बंगाल के पढ़े–लिखे लोगों के द्वारा अखबारों और अन्य पत्र–पत्रिकाओं में लेख लिख कर इसका भरपूर समर्थन किया गया। इन लेखों ने अंग्रेजी सरकार को नील की खेती की समस्या से परिचित कराया। ''नील दर्पण'' का उदाहरण आपके सामने है। अखबारों में अंग्रेजी बगान मालिकों के जोर जबरदस्ती एवं किसानों पर किए गए अत्याचार के विषय में खूब लिखा गया। इस विद्रोह की एक खास बात यह रही कि सरकार ने इसे दबाने का प्रयास नहीं किया। धीरे–धीरे बंगाल के कुछ इलाकों से इसकी खेती पूर्णतः समाप्त हो गई।

नील का उत्पादन कैसे होता था?



चित्र 10 – नील के खेतों के पास स्थित नील का एक कारखाना, विलियम सिम्सन का चित्र, 1863.

नील गाँव आमतौर पर बागान मालिकों की फैक्ट्रियों के आस-पास ही होते थे। कटाई के बाद नील के पौधों को कारखाने में स्थित **वैटस** (हौद) में पहुँचा दिया जाता था। रंग बनाने के लिए 3 या 4 कुंडों की जरूरत पड़ती थी। प्रत्येक हौद का अलग काम था। नील के पौधों से पत्तियों को तोड़कर पहले एक कुंड में गर्म पानी में कई घंटों तक डुबोया जाता था (इस हौद को किणवन या स्टीपर कुंड कहा जाता था)। जब पौधे किण्वित हो जाते थे तो द्रव्य में बुलबुले उठने लगते थे। अब सड़ी हुई पत्तियों को निकाल दिया जाता था और द्रव्य को एक और हौद में छान दिया जाता था। दूसरा हौद पहले हौद के ठीक नीचे होता था।



चित्र 11 - नील के पौधों को हौद तक औरतें ही ढोकर लाती थीं।

दूसरे हौद (बीटर वाट) में इस घोल को लगातार हिलाया जाता था और पैडलों से खंगाला जाता था। जब यह द्रव्य झाग और उसके बाद नीला हो जाता था तो हौद में चूने का पानी डाला जाता था। धीरे-धीरे नील की पपड़ियाँ नीचे जम जाती थीं और ऊपर साफ द्रव्य निकल आता था। द्रव्य को छानकर अलग कर लिया जाता था और नीचे जमी नील की गाद - नील की लुगदी - को दूसरे कुंड (निथारन कुंड) में डाल दिया जाता था। इसके बाद इसे निचोड़कर बिक्री के लिए सुखा दिया जाता था।



चित्र 12 – हौद में घोल हिलाने वाला

यहाँ खड़ा नील मजदूर हौद में पड़े घोल को हिलाने के लिए इस्तेमाल होने वाला पैडल लिए खड़ा है। इन मजदूरों को 8 घंटे से भी ज्यादा समय तक कमर तक भरे नील के घोल में खड़े रहना पड़ता था।

वाट – एक किणवन अथवा संग्रहण पात्र



चित्र 13 – बिक्री के लिए नील तैयार है।

यहाँ आप उत्पादन की आखिरी अवस्था को देख सकते हैं। दबाकर साँचों में डाल दी गई नील की लुगदी को काटकर मजदूर उन पर मुहर लगा रहे हैं। पीछे वाले हिस्से में एक मजदूर इन टुकड़ों को सुखाने के लिए ले जा रहा है।

चित्र 2

बिहार में नील की खेती दो तरीकों से की जाती थी– 'जीरात' और 'असामीबार'। जीरात में सीधी अपनी देख–रेख में अंग्रेज बगान मालिक मजदूरों से खेती करवाते थे। असामीबार में बगान मालिक रैयतों को उनके स्वयं की जमीन पर नील की खेती करने के लिए बाध्य करते थे। कुछ रैयतों को तो अंग्रेजों ने नील खेती के लिए आरक्षित तक कर लिया था। अंग्रेज उन्हें बस खेती का खर्च देते थे। कृषि कार्य में लगने वाले श्रम के बदले उन्हें काफी कम मजदूरी दी जाती थी। ''तीन कठिया'' प्रणाली इसी के अन्तर्गत चम्पारण में प्रचलित किया गया। इसके अन्तर्गत किसानों को अपनी जमीन में तीन कट्ठे प्रति बीघा की दर से नील की खेती करनी पड़ती थी। इसी के विरोध में महात्मा गाँधी ने चम्पारण में सत्याग्रह की शुरुआत की। इसके विषय में आप आगे के पाठों में पढेंगे। इन दोनों प्रकार की खेती में किसान शोषित होते थे।

नई भूराजस्व व्यवस्थाएं अंग्रेजों द्वारा भारत में अपने साम्राज्य निर्माण की दिशा में उठाए गए सबसे महत्वपूर्ण कदमों में से एक थी। इसने भारत में अंग्रेजी शासन को स्थायित्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन व्यवस्थाओं ने भारत के परम्परागत भूमिपतियों तथा आम किसानों दोनों में कई तरह के असंतोष को जन्म दिया, जिसकी अभिव्यक्ति उन लोगों द्वारा समय–समय पर किए गए विद्रोह के रूप में देखने को मिलता है।

अभ्यास

आइये फिर से याद करें–

1. सही विकल्प को चुनें।

(i) बिहार में अंग्रेजों के समय किस तरह की भूमि व्यवस्था अपनाई गई?

(क) स्थायी बंदोबस्त (ख) रैयतवारी व्यवस्था

(ग) महालवारी व्यवस्था (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) अंग्रेजों के आने के पहले भूमि का मालिक कौन होता था?

(क) जमींदार (ख) व्यापारी (ग) किसान (घ) राजा

(iii) रैयतवारी व्यवस्था में जमीन का मालिक किसे माना गया?

(क) किसान (ख) जमींदार (ग) गाँव (घ) व्यापारी

(iv) अंग्रेजी शासन द्वारा भारत में अपनाई गई नई भूमि व्यवस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य क्या था?

(क) अपनी आय बढ़ाना (ख) भारतीय गाँवों पर अपने शासन को मजबूत करना

(ग) व्यापारिक लाभ प्राप्त करना (घ) किसानों का समर्थन प्राप्त करना

2. निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ

(क) महालवारी	(क) 1793
(ख) नील दर्पण	(ख) बिहार
(ग) नकदी फसल	(ग) दीनबंधु मित्र
(घ) स्थायी भूमि व्यवस्था	(घ) पंजाब

आइए विचार करें –

(i) अंग्रेजी शासन के पहले भारतीय भूमि व्यवस्था एवं लगान प्रणाली के विषय में आप क्या जानते हैं?

(ii) स्थायी बन्दोबस्त की विशेषताओं को बताएँ।

(iii) अंग्रेजी सरकार द्वारा बार–बार भूमि राजस्व व्यवस्था में किये जाने वाले परिवर्त्तनों को आप किस रूप में देखते हैं? अपने शब्दों में बताएँ।

(iv) अंग्रेजों की भूमि राजस्व व्यवस्था आज की व्यवस्था से कैसे अलग थी, संक्षेप में बताएं।

(v) नई राजस्व नीति का भारतीय समाज पर क्या असर हुआ।

(vi) नील की खेती की प्रमुख समस्याओं की चर्चा करें।

आइए करें देखें –

(i) अंग्रेजी राज के समय उत्पादित फसलों में से कौन–कौन आज भी उत्पादित होती है, वर्ग में सहपाठियों से चर्चा करें।

(ii) खेती करने के तौर–तरीकों में पहले की अपेक्षा आज किस तरह का बदलाव आया है? बुर्जूगों से पता करें।

अध्याय - 4

उपनिवेशवाद एवं जनजातीय समाज

पिछले अध्याय मे आपने अंग्रेजों की लगान व्यवस्थाओं तथा कृषि के क्षेत्र में आ रहे बदलावों के बारे में जाना। आपने यह भी जाना कि किसानों, जमींदारों व गाँव के अन्य लोगों पर उनका क्या प्रभाव पड़ा। भारत के कई इलाकों में उनकी इन नीतियों के खिलाफ किसानों के संघर्ष की शुरूआत के बारे में आपने जाना। अब इस अध्याय में आप भारत के वनों तथा पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समाज के लोगों के जीवन पर अंग्रेजी शासन की नीतियों से पड़ने वाले प्रभावों के बारे में जानेंगे।



जनजाति बहुल क्षेत्रों को इंगित करता हुआ भारत का मानचित्र

जनजातीय समाज का जीवन

जनजातीय समाज के लोग आम भाषा में 'आदिवासी' भी कहलाते हैं। ऐसा इसलिए कहा जाता है कि वे इस महाद्वीप में सबसे पुराने समय से रहने वाले लोग हैं। प्राचीनकाल से ही उनका जीवन पूरी तरह से वनों पर निर्भर था। उनके गाँव बस्तियाँ आमतौर पर जंगलों के बीच या आस पास होते थे। उनके दैनिक उपयोग की अधिकांश जरूरतों की पूर्ति जंगलों से ही होती थी। हमेशा से ही ये आदिवासी पूरी स्वच्छन्दता से वन संसाधनों का उपयोग करते आ रहे थे। वे जंगलों को साफ कर खेती योग्य जमीन तैयार करते थे। समतल क्षेत्र में वे हल से खेती करते थे। यहाँ वे धान, दलहन एवं मक्का उपजाते थे। लेकिन जो पहाड़ी क्षेत्रों में रहते थे, उनकी खेती का तरीका अलग था। उसे 'झूम खेती' कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वे जंगल के किसी भाग को काट–छांट कर साफ करते थे। दो–तीन वर्षों तक उस जगह पर खेती करने के बाद जब उस जगह की उर्वरा शक्ति समाप्त हो जाती थी तब वे किसी और स्थान पर यही प्रक्रिया दोहराते थे। कुछ वर्षों तक परती छोड़ देने के बाद पहले की जगह पर वापस जंगल उग जाता था। इससे उनके खेती का काम भी हो जाता था और जंगल को भी कोई नुकसान नहीं होता था। इस विधि को 'घुमंतु कृषि विधि' के नाम से भी जाना जाता है।



चित्र 1 – जंगलों को साफ करके खेती करते हुए आदिवासी



चित्र 2 – खेती पशुओं का उपयोग करता हुआ आदिवासी

जंगलों से उनकी अन्य दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो जाती थी। जैसे जलावन के लिए लकड़ियाँ, भोजन के लिए कंद–मूल, फल, शहद, आदि या फिर जड़ी–बूटियां उन्हें बड़ी आसानी से मिल जाती थीं। इन सबके अतिरिक्त वे पशुपालन भी किया करते थे, जिनका चारा भी उन्हें जंगलों से मिल जाता था। उनके घर भी जंगल की लकड़ियों के ही बने होते थे। अपनी जरूरतों के इस्तेमाल के अलावा वे जंगल से प्राप्त होने वाली कुछ

वस्तुओं, जैसे शहद, जड़ी–बूटियां, कुछ खास तरह के फल, इत्यादि को पास के बाजार में बेचकर अपनी छोटी–मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति भी किया करते थे। आवश्यकता की जो वस्तुएं इन्हें जंगल में उपलब्ध नहीं होती थीं, जैसे नमक, कपड़े, आदि, उनकी खरीददारी भी वे पास के गाँवों के व्यापारियों से जंगल से प्राप्त इन्हीं वस्तुओं के बदले में किया करते थे। हालांकि इसके लिए उन्हें काफी ऊँची कीमत चुकानी पड़ती थी।



चित्र 3 – जंगल से लकड़ी काटकर और पत्ता चुनकर घर जाते हुए आदिवासी

जनजातीय समाज के लोग भोजन के लिए कुछ छोटे जानवरों जैसे हिरण, तीतर तथा अन्य पक्षियों का शिकार भी करते थे। शिकार का साधन तीर–धनुष या अन्य छोटे हथियार होते थे। मगर ज्यादातर उनका भोजन जंगलों से प्राप्त कन्द–मूल, फल और अनाज ही होता था।



चित्र 4 – तीर धनुष से शिकार करते हुए आदिवासी

इनके उद्योग–धन्धे भी जंगलों पर ही आधारित थे। हाथी दांत, बांस तथा कुछ धातुओं पर की गई उनकी कलाकारी दूसरे समुदायों में भी काफी पसंद की जाती थी। कुछ इलाकों में रबर, गोंद, आदि चीजें उन्हें जंगलों से मिलती थीं, उसका भी वे व्यापार करते थे। आगे



चित्र 5 – मणिपुर में जेलियांग जनजाति के द्वारा तैयार किया गया तकिया का ग़िलाफ़



चित्र 6 – अरूणाचल प्रदेश की जनजाति महिलाओं द्वारा परम्परागत हथकरघा पर बुनाई

चलकर कुछ जनजातीय समुदायों ने लाख और रेशम उद्योगों को भी अपनाया। वे रेशम और लाह/लाख के कीड़े पालते और बाद में उसे बाहर के व्यापारियों से बेच देते थे। आमतौर पर इन गतिविधियों में उन्हें ज्यादा फायदा नहीं होता था क्योंकि व्यापारी उनकी चीजें बहुत कम कीमत पर खरीदते थे, जबकि उन वस्तुओं के वास्तविक मूल्य काफी अधिक होते थे। इन सबके अतिरिक्त आदिवासी महिलाएँ घरों में चटाई बनाने, बुनाई करने एवं वस्त्र बनाने का काम भी करती थीं।

जनजातीय समाज के लोग जंगल का उपयोग किन–किन चीजों के लिए करते थे? क्या उनके उधोग को विकसित करने में भी जंगल की भूमिका थी?

इस तरह सदियों से पूरी तरह से जंगलों पर निर्भर रहने के बावजूद इनकी गतिविधियों से जंगलों को कोई नुकसान नहीं पहुंचता था बल्कि वे हमेशा उसकी सुरक्षा करते थे। जंगल के बाहर की दुनिया से उनका संबंध बहुत ज्यादा नहीं था और वे अपनी शांत और सरल जिंदगी से संतुष्ट थे। लेकिन उनकी ये संतुष्टि अंग्रजों के आने के बाद बहुत दिनों तक बनी नहीं रही।

अंग्रेजों द्वारा स्थापित व्यवस्थाओं तथा नियमों का जनजातीय समाज पर प्रभाव

हमने पिछले पाठ में देखा है कि किस तरह अंग्रेजी सरकार के अधिकारी ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने के प्रयास में लगे थे। इसके तहत भूराजस्व व्यवस्था में उनके द्वारा किये गए बदलाव से आप पिछले पाठ में परिचित हुए हैं। आगे इस प्रयास के अंर्तगत वे जंगलों व उसके आस–पास रहने वाले जनजातीय समाज के गाँवों और बस्तियों तक भी पहुंच गए। इसके पीछे अंग्रेजी सरकार का उद्देश्य था, जनजातीय क्षेत्रों पर अपना प्रभाव स्थापित करते हुये भूमि से लगान वसूल करना। परंपरागत रूप से इस समाज के लोगों का यह मानना था कि जंगलों को साफ करके उनके पूर्वजों ने उसे खेती के लायक बनाया है, इसलिए जमीन के मालिक वे स्वयं हैं। इसके लिए उन्हें किसी को किसी तरह का लगान या कर देने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन नई लगान व्यवस्थाओं के तहत उन सबके द्वारा जोती जानी वाली जमीनों को भी सरकारी दस्तावेजों में दर्ज किया गया और जैसा कि बाकि

किसानों के साथ हुआ था, उनके ऊपर भी सालाना लगान की राशि तय कर दी गई। लगान की यह राशि उनके लिए इतनी ज्यादा होती थी कि अक्सर उन्हें लगान चुकाने के लिए कर्ज लेना पड़ता था। कर्ज चुका पाना उनके लिए और भी मुश्किल होता था। इस तरह धीरे–धीरे उनकी जमीनें या तो नीलाम होने लगीं या फिर महाजनों के कब्जे में चली जाने लगीं। इसका एक और सीधा असर झूम खेती करने वाले लोगों पर पड़ा। अब उन्हें अलग–अलग जमीनों पर खेती करने की आजादी नहीं रही।

इनकी बस्तियों तक सरकारी कर्मचारियों के पहुंचने का एक दूसरा असर भी हुआ। कर्ज लेने वालों की संख्या बढ़ने के कारण अब उनके क्षेत्रों में गैर आदिवासी सेठ, महाजन एवं सूदखोरों का भी प्रवेश हुआ। ये महाजन व साहुकार हमेशा इस प्रयास में रहते कि किस तरह इनकी जमीनों को हथियाया जाए और इन्हें अपना बंधुआ मजदूर बनाया जाए।

अंग्रेजों के समय एक और नई बात हुई। जंगल की लकड़ी का व्यापार अचानक ही बड़ी तेजी से बढ़ा। उस समय कोलकाता, मुंबई और चेन्नई (उस वक्त कलकत्ता, बंबई और मद्रास) जैसे बड़े–बड़े शहर बस रहे थे, मीलों लंबी रेल लाईनें बिछाई जा रही थीं और बड़े–बड़े जहाज बनाए जा रहे थे। इन सबके लिए लकड़ियों की जरूरत थी।



चित्र 7 – जंगल की कटाई करवाकर स्लीपर तैयार करते अंग्रेज अधिकारी

सन् 1850 के बाद भारत में अंग्रेजों ने रेलवे की शुरूआत की थी। तब से लेकर 1910 तक करीब पचास हजार किलोमीटर रेल लाईनें बिछायी जा चुकी थीं। रेल लाईनों के स्लीपरों तथा रेल के डिब्बों के लिए लकड़ियों की आवश्यकता थी। इसके लिए अंग्रेजों ने बड़े पैमाने पर जंगलों की कटाई करानी शुरू कर दी।

इसके अलावा इमारतों, खदानों व जहाजों के लिए भारी मात्रा में लकड़ी काट कर बेचा जाने लगा। यह काम लकड़ी के व्यापारी और जंगल के ठेकेदार किया करते थे। अंग्रेज सरकार को भी इस लकड़ी के व्यापार से बड़ा फायदा होता था। सरकार जंगलों को काटने का ठेका नीलाम करती थी। ठेकेदारों से मिले पैसों से सरकार को बहुत आमदनी होती।

इन्हें भी जानें
स्लीपर–लकड़ी का तख्ता जिसके ऊपर रेल की पटरियां बिछाई जाती हैं।

जब ठेकेदार बेतहाशा जंगल काटने लगे और जंगल तेजी से खत्म होने लगे तब अधिकारियों को चिंता होने लगी। अगर सारे जंगल कट जाएंगे तो रेल, जहाज और मकानों के लिए लकड़ियां कहां से आयेंगी। तब उन्होंने जंगलों में नए पौधे लगाने शुरु किये। मगर उन्होंने ऐसे पौधे लगाने शुरु किए जिनकी बाजार में मांग थी।

वन विभाग बना

तेजी से खत्म होते जंगल की समस्या हल करने के लिए अंग्रेज सरकार ने सन् 1864 में 'वन विभाग' की स्थापना की एवं सन् 1865 में 'वन अधिनियम' भी बनाया गया। वन विभाग का काम था जंगल की कटाई पर निगरानी रखना और नए जंगल लगाना। वन आधिनियम के तहत नए वृक्षारोपण की सुरक्षा के लिए तथा पुराने जंगलों को बचाने के लिए ढेरों नियम बनाए गए। इन सबका असर यह हुआ कि आम लोगों और आदिवासियों का जंगलों पर जो परंपरागत अधिकार था वो छिनने लगा। वे अब अपनी मर्जी से लकड़ी काटने, जानवर चराने, फल–फूल इकट्ठा करने या शिकार करने लिए जंगलों में नहीं जा सकते थे। यहां तक कि उनका जंगल में प्रवेश भी वर्जित कर दिया गया। अभी तक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आदिवासी काफी कुछ जंगलों पर निर्भर थे लेकिन अब उस पर अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया।

सन् 1878 में अंग्रेजों ने एक और कानून बनाया। इसके तहत जंगलों को दो भागों में बांटा गया। बड़े जंगलों को सरकारी जंगल या आरक्षित (रिजर्व) जंगल धोषित कर के सरकार ने वहाँ अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। अब आदिवासी वहाँ लकड़ियाँ चुनने या

वन उत्पादों को प्राप्त करने नहीं जा सकते थे। वन विभाग के कर्मचारियों या व्यापारियों को ही वहाँ जाने की अनुमति थी। इसी कानून के तहत जंगल के बाहरी इलाकों को तथा कुछ अन्य जंगलों को संरक्षित जंगल कहा गया जिसमें लोगों को जाने की छूट थी। मगर वहां से वे केवल अपने काम की चीजें ही ला सकते थे। वे वहां पेड़ नहीं काट सकते थे या दो दिन से ज्यादा अपने जानवर भी नहीं चरा सकते थे।

इन सब कानूनों व व्यवस्थाओं का असर यह हुआ कि आदिवासी लोगों का जीवन बहुत मुश्किल हो गया। सदियों से जिस तरह के जीवन जीने के वे आदि थे वह अब संभव नहीं रहा। इसलिए अब नए काम धंधों की तलाश में उन्हें जंगल और अपनी बस्तियों से बाहर आना पड़ा। उन दिनों वन विभाग का ज्यादातर काम ठेकेदारों के द्वारा ही किया जाता था। कुछ ठेकेदार वन विभाग के लिए लकड़ी काटने का काम करते थे तो कुछ जंगलों के आस–पास सड़क बनाने का काम। आदिवासी लोगों के पास अब अपना कोई काम धंधा तो था नही तो उन्होंने इन ठेकेदारों की नौकरी ही कर ली। यहां उन्हें जो मजदूरी मिलती उससे उनका गुजारा तो हो जाता मगर अपनी अन्य जरूरतों के लिए उन्हें ठेकेदारों और साहुकारों के आगे कर्ज के लिए हाथ फैलाना पड़ता।

साहुकारों से लिया गया कर्ज चुका पाना उनके लिए आसान नहीं होता। ये आदिवासी बहुत कम बल्कि नहीं के बराबर पढ़े–लिखे होते थे, जिसकी वजह से ये सूद की रकम या महाजन ने उन पर कितने रकम का बोझ डाला इसे नहीं समझ पाते थे। सूद की रकम नहीं चुका पाने की वजह से उन्हें जमीन के साथ–साथ अपने पशुओं और हल–फाल आदि से भी हाथ धोना पड़ता था। आखिर में कर्ज नहीं चुका पाने की स्थिति में उनके पास साहुकार का बंधुआ मजदूर बनने के अलावा कोई चारा नहीं होता।

> **जानकारी**
> बेगारी :– बिना वेतन या मजदूरी के काम करना।

> **जानकारी**
> बंधुआ मजदूर :– कर्ज चुकाने के लिए बिना वेतन के मालिक के जमीन पर तब तक काम करते रहना जबतक कि कर्ज की रकम सूद समेत न चुक जाए।

ठेकेदारों व महाजनों के अत्याचार से बचने के लिए कई इलाकों के आदिवासियों को काम की तलाश

में अपने निवास स्थल से दूर की जगहों पर भी जाना पड़ता था। वे असम के चाय बगानों तथा हजारीबाग एवं धनबाद के कोयला खदानों में भी काम करने के लिए जाया करते थे। ऐसी जगहों पर उन्हें ठेकेदारों के माध्यम से काम पर रखा जाता था। यहां भी ये ठेकेदार उन्हें बहुत ही कम मजदूरी देते थे और अधिक से अधिक मुनाफा अपने पास रख लेते थे।

लगान बन्दोबस्त एवं जंगल अधिनियम के द्वारा अंग्रेजों ने आदिवासियों के साथ कैसा व्यवहार किया? यदि आप उनमें से एक होते तो आपकी क्या प्रतिक्रिया होती?

ठेकेदारों व महाजनों के अतिरिक्त इसी समय उन्हें शिक्षा देने के उद्देश्य से ईसाई मिशनरियों का भी उनके इलाके में आगमन हुआ। ईसाई मिशनरियों का वास्तविक उद्देश्य जनजातीय क्षेत्रों पर अपना वर्चस्व स्थापित करना तथा उनका धर्म परिवर्तन करना था। उन्होंने आदिवासी के धर्म तथा उनकी संस्कृति की आलोचना करनी शुरू किया और बहुत से आदिवासियों का धर्म परिवर्तन भी करा डाला। ईसाई मिशनरियों ने उन्हें यह प्रलोभन दिया कि वह सेठ, साहुकारों एवं महाजनों से उनकी रक्षा करेगी। परन्तु वास्तविकता कुछ और ही थी। ये मिशनरियाँ सेठ, साहुकार, जमींदार एवं बिचौलिए के साथ मिलकर आदिवासियों का खूब आर्थिक एवं शारीरिक शोषण करती थी। यही कारण था कि अंग्रेजों एवं गैर आदिवासियों के खिलाफ जनजातीय समाज के लोगों ने जगह–जगह पर अस्त्र–शस्त्र उठा लिए।

आदिवासियों की एक खास बात यह थी कि वे सभी गैर आदिवासी या बाहरी लोगों को अपना दुश्मन या शोषक नहीं मानते थे और उनके विरोधी नहीं थे। वैसे गरीब गैर आदिवासी जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था में उनके सहायक की भूमिका निभाते थे, उनसे उनका गहरा सामाजिक संबंध था। ये अंग्रेजों के खिलाफ गोलबन्दी करने में इनके मददगार भी होते थे।

जनजातीय विद्रोह का स्वरूप

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के लगभग सभी इलाकों में आदिवासियों ने अंग्रेजों एवं उनके सहयोगी गैर आदिवासियों के घुसपैठ एवं शोषण के खिलाफ लड़ाई शुरू कर दी। भारत में सबसे बड़ी संख्या भील जनजाति की है। गुजरात, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, राजस्थान,

त्रिपुरा, कर्नाटक आदि राज्यों में इन्होंने महाजनों एवं साहुकारों के शोषण का विरोध करते हुए उनके नियमों को मानना बंद कर दिया। गोंडवाना के गोंड लोगों ने अपनी जमीन की सुरक्षा, अपने उत्पाद के लिए उचित मूल्य के भुगतान, विभिन्न वन संबंधी गतिविधियों से बिचौलिए एवं ठेकेदारों को दूर रखने, साहुकारों द्वारा शोषण को रोकने आदि के लिए विद्रोह आरम्भ किया। उड़ीसा में कंध जाति का विद्रोह भी जमींदारों एवं साहुकारों के शोषण के विरुद्ध था। उत्तर पूर्व में विद्रोह का स्वरूप कुछ अलग ही था। यहाँ के बहुसंख्यक आदिवासी अफीम की खेती करते थे। अंग्रेजों ने अफीम की खेती पर बढ़े हुए मुनाफे को देखकर उसे अपने नियंत्रण में लेने का प्रयास किया तथा सरकारी इजाजत के बिना अफीम की खेती पर रोक लगा दी

लेकिन सबसे अधिक विद्रोह की ज्वाला तत्कालीन बिहार के संथाल परगना एवं छोटानागपुर प्रमंडल में धधक रही थी। यहाँ के आदिवासी सेठ–साहुकार, महाजन एवं गैर आदिवासी बिचौलिए के शोषण के शिकार तो थे ही, साथ ही अंग्रेजों द्वारा उनलोगों को दिए जा रहे प्रोत्साहन के भी खिलाफ थे। ईसाई मिशनरियों की घुसपैठ भी उनके विरोध का एक बड़ा कारण था।

तत्कालीन समाचार पत्र कलकत्ता रिवयू में अंग्रेजों द्वारा संथालों के शोषण पर छपा लेख :–

'जमींदार, पुलिस, राजस्व विभाग और अदालतों ने संथालों पर बेइंतहा जुल्म ढाए। उनकी जमीन जायदाद छीन ली। हर कदम पर संथालों को अपमानित किया जाता था और मारा–पीटा जाता था। संथालों को कर्ज देकर 50 से 500 फीसदी की दर से ब्याज वसूला जाता था। धनी और ताकतवर लोग जब मन में आता था मेहनतकश संथालों की खड़ी फसलों पर हाथी दौड़ा दिए करते।

दिकू – गैर आदिवासी सेठ एवं महाजन, जो अधिक ब्याज पर ऋण देते थे और उनका शोषण करते थे। ये व्यापारी एवं बिचौलिए का काम करते थे।

यह अत्याचार आम बात हो गयी थी। दिकू और सरकारी कर्मचारी भी संथालों की निगाह में अत्याचारी थे। ये लोग संथालों से बेगारी कराते थे।

आरम्भ में इन आदिवासियों ने अपने–अपने नेता के नेतृत्व में लगान की रकम देना बंद कर दिया और महाजनों व साहुकारों के आदेशों और नियमों को मानने से इन्कार कर दिया। परन्तु जब गैर आदिवासियों के पक्ष में अंग्रेजी सरकार अपनी सेना के साथ खड़ी हो गई और जोर जबरदस्ती करने लगी, तब ये आदिवासी अंग्रेजों के खिलाफ अस्त्र–शस्त्र लेकर खड़े हो गए। कुछ आदिवासी समूहों ने अपना उद्देश्य अपने इलाके से अंग्रेजी राज को समाप्त करना बना लिया। तत्कालीन बिहार में संथाल विद्रोह, मुंडा विद्रोह एवं ताना भगत आन्दोलन ने आदिवासियों से जमीन छीनने का सिलसिला समाप्त कर जनजातीय समाज को संरक्षण प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त किया। उत्तर–पूर्व भारत में भी खसिया, गारो एवं नागा जनजातियों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। ये सभी विद्रोह संगठित विद्रोह थे।

क्या जनजातीय विद्रोह सिर्फ अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह था? इन विद्रोहों के लिए सेठ साहुकार एवं महाजन कहाँ तक जिम्मेवार थे?

यहां आप मुख्य रूप से छोटानागपुर के मुंडा विद्रोह एवं उत्तर–पूर्व में नागा जनजाति का जेलियांगरांग आन्दोलन के विषय में पढ़ेंगे।

बिरसा मुंडा एवं मुंडा विद्रोह

बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवम्बर सन् 1874 ई. को छोटानागपुर प्रमंडल के तमाड़ थानान्तर्गत उलिहातु गाँव के निकट एक छोटे से क्षेत्र 'चलकद' मे हुआ था। उसके पिता का नाम सुगना मुंडा एवं माता का नाम कदमी था। बिरसा की शिक्षा दीक्षा चाईबासा के एक जर्मन मिशन स्कूल में हुई थी। शुरू में कुछ मुंडाओं के साथ मिलकर उसने ईसाई धर्म भी स्वीकार किया, लेकिन बाद में ईसाई धर्म से असंतुष्ट होकर फिर मुंडा बन गया। उसके मन में अंग्रेजों एवं जमींदारों के प्रति आक्रोश की भावना ने ही मुंडा विद्रोह को जन्म दिया।

सन् 1895 ई. में बिरसा को उसके कुलदेवता 'सिंगबोगा' से एक नये धर्म के प्रतिपादन की प्रेरणा मिली, जिसके अनुसार उसने अपने आपको भगवान का अवतार घोषित किया और अंग्रेजीं शासन का अंत करने का बीड़ा उठा लिया। इसके लिए उसने मुंडाओं को आदर्श एवं पवित्र जीवन जीने का संदेश दिया। कुछ ही दिनों में उसके अनुयायियों की संख्या अधिक हो

गयी और वे बिरसा को पैगम्बर मानने लगे। बिरसा ने प्रचार किया कि अब मुंडा राज शुरू हो गया है और महारानी विक्टोरिया का राज समाप्त हो गया है। उसने मुंडाओं को आदेश दिया कि किसी को भी राजस्व नहीं दें और जमीन का उपभोग बिना राजस्व दिए ही करें। अंग्रेजी सरकार ने इस विद्रोह के कारण बिरसा को पकड़ कर राँची जेल भेज दिया और उस पर बगावत का आरोप लगाया गया। लेकिन जेल से छुटने के बाद बिरसा ने फिर से लोगों का समर्थन प्राप्त करना शुरू किया तथा अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध जन संघर्ष के लिए मोर्चा बनाना शुरू किया। लोगों को तीर–धनुष की शिक्षा दी जाने लगी और रात में सभाओं का आयोजन किया जाने लगा। 25 दिसम्बर सन् 1899 को बिरसा ने पहला आक्रमण ईसाई मिशनरियों पर किया, जिसका उद्देश्य ईसाई बने मुडांओं को आतंकित कर अंग्रेजों के खिलाफ खड़ा करना था। इसमें बहुत से लोग मारे गए, बहुतों को बन्दी बना लिया गया। लेकिन बहुत जल्द बिरसा गिरफ्तार कर लिया गया और 2 जून सन् 1900 ई. को हैजा की बीमारी से बिरसा की मृत्यु राँची जेल में ही हो गयी।



चित्र 8 – बिरसा मुंडा

बिरसा मुंडा ने स्वयं को भगवान का अवतार क्यों घोषित किया?

बिरसा मुंडा की मौत के बाद भी मुंडा आंदोलन थमा नहीं, बल्कि जनजातीय क्षेत्रों में इसने और गहरी जड़ें जमा लीं। अंततः छोटानागपुर के तत्कालीन आयुक्त की सिफारिश पर सन् 1902 में गुमला तथा 1905 में खूंटी अनुमण्डल का गठन कर दिया गया ताकि समस्याओं को नजदीक से समझा जा सके। आदिवासी किसानों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए 'छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम 1908' बनाया गया। इसके द्वारा जनजातीय क्षेत्र की भूमि का गैर आदिवासियों को हस्तांतरण निषेध कर दिया गया।

इस प्रकार मुंडा आन्दोलन ने ब्रिटिश सरकार को झुका दिया। डेढ़ सौ वर्षों से चला आ रहा

जमीन छीनने का सिलसिला समाप्त हुआ और जनजातीय समाज को संरक्षण प्राप्त हुआ। इस आन्दोलन ने भारत में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को भी प्रभावित किया। उस समय के समाचार पत्र, जैसे इंगलिशमैन, पायोनियर एवं स्टेट्समैन आदि में इस आन्दोलन को कुचलने की ब्रिटिश सरकार की नीति की काफी आलोचना की गयी। बिरसा को भगवान मानकर छोटानागपुर के जनजातीय समाज के लोगों ने उसके सपने को साकार करने का बीड़ा उठा लिया। अब उन्हें सिर्फ जमीन ही नहीं, अपितु अंग्रेजों से मुक्ति भी प्राप्त करना था।

मुंडारी लोकगीत जिसमें बिरसा मुंडा को आज भी याद किया जाता है :–

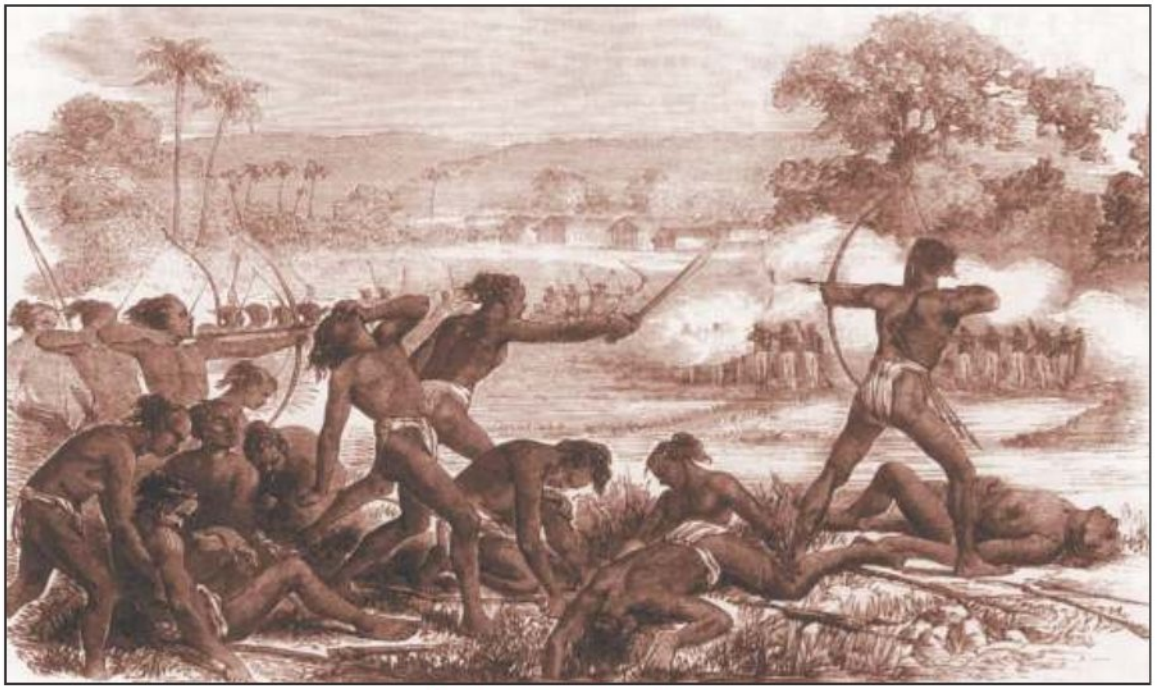
मायोम ताम दो बिरसा
बाहो रेको टिका–सुंदरी केड।
जंग ताम दो बिरसा
दिशुम होड़ो को बुलंग केड।
अबेना रीका को दो बिरसा
दिशुम होड़ो को ताज्ज केड।।

(हे बिरसा, तेरे खून का सिर में टीका लगाया। हे बिरसा तेरी हड्डी का परदेशी लोगों ने नमक बनाया। हे बिरसा, तेरे सत्कार्य को विदेशियों ने अपना लिया।)

इसी कारण बिरसा जनजातीय क्षेत्र में भगवान के रूप में पूज्य है –

तमाड़ परगना गेरेडे उली हातु
बिरसा भगवान ए जोनोम लेना

मुंडा विद्रोह के बाद भी छोटानागपुर में विद्रोह की आग दबी नहीं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ आन्दोलन चलता रहा, जो बाद में कांग्रेस के नेतृत्व में चलाए जा रहे राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा बन गया।



चित्र 9 – युद्ध करते हुए आदिवासी

उत्तर पूर्व भारत में जेलियांगरांग आन्दोलन

उत्तर पूर्वी भारत में अंग्रेजों के खिलाफ नागा जनजाति ने सबसे प्रबल विद्रोह किया। उन्नीसवीं शताब्दी में इस समुदाय के लोगों ने कई बार विद्रोह किया, लेकिन सन् 1891 ई. में जब मणिपुर के युवराज टिकेन्द्र जीत सिंह को फांसी पर चढ़ाकर अंग्रेजों ने उस पर अपना आधिकार कर लिया तब नागा जाति का विद्रोह जोर पकड़ा। इस समय मणिपुर में जेमेई, लियांगमेई एवं रांगमेई नामक नागा जनजाति की बहुलता थी। राजनैतिक एवं सामाजिक एकता की स्थापना, विदेशी घुसपैठ से सुरक्षा तथा धार्मिक सुधार हेतु जादोनांग नामक एक रांगमेई जनजाति नेता के नेतृत्व में सन् 1920 में जनजातीय लोगों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। उपरोक्त तीन जनजातियों के नाम पर इस आन्दोलन को 'जेलियांगरांग' आन्दोलन का नाम दिया गया। जादोनांग ने सर्वप्रथम इन तीनों जनजातियों में एकता स्थापित कर अंग्रेजों एवं गैर आदिवासियों को बाहर खदेड़ने का एक राजनैतिक कार्यक्रम बनाया। खास बात यह थी कि इनका आन्दोलन आगे चलकर गाँधीजी द्वारा चलाए गए सविनय अवज्ञा आन्दोलन के साथ जुड़ गया।

जादोनांग ने नागा जनजाति के लिए क्या किया?

जादोनांग ने अपनी तेरह वर्षीय चचेरी बहन गिंडाल्यू के साथ मिलकर एक भूमिगत आन्दोलन की योजना बनायी और नागा राज्य की स्थापना का प्रयास शुरू किया। इसमें जादोनांग को काफी सफलता मिल गयी। लेकिन अंग्रेजी सरकार को इसकी भनक मिल गयी। अतः एक हत्या के मामले मे फंसा कर 29 अगस्त 1929 को अंग्रेजों ने उसे फांसी की सजा दे दी। आन्दोलन इसके बावजूद भी थमा नहीं। गिंडाल्यू ने इसे जारी रखा। अंग्रेजों द्वारा सन् 1932 में इस आन्दोलन को भी दबा दिया गया और गिंडाल्यू को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गयी। सन् 1947 में आजादी मिलने के बाद उसे रिहा किया गया। गिंडाल्यू ने अंग्रेजी सरकार की दमनकारी कानूनों की अवज्ञा का भाव जनजातियों में जगाया और इस तरह वह गाँधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की मुख्य धारा से अपने आन्दोलन को जोड़ने में सफल रही।



चित्र 9 – रानी गिंडाल्यू

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जनजातीय समाज के लोगों के आर्थिक विकास के लिए बहुत सारे नियम बनाए गए। उन्हें राष्ट्र की धारा में जोड़ने के लिए अनेक उपाय किए गए, फिर भी उनमें असंतोष की लहर व्याप्त रही। इसका मुख्य कारण भौगोलिक एवं राजनैतिक था। यद्यपि संविधान में जनजातियों के लिए शैक्षणिक संस्थान एवं नौकरी में आरक्षण की व्यवस्था कर दी गयी थी, फिर भी उनके असंतोष थमे नहीं। नागा जनजाति किसी भी कीमत पर अपनी सांस्कृतिक पहचान को खोना नहीं चाहती थी, अतः बाध्य होकर 1 दिसम्बर, 1963 को अलग नागालैंड राज्य की स्थापना की गई। संविधान में उत्तर पूर्वी राज्यों के लिए विशेष व्यवस्था की गयी। जिसके अनुसार असम, नागालैंड, त्रिपुरा, मणिपुर आदि में आदिवासियों को उनके आन्तरिक मामले में स्वायत्तता दी गयी। संसद द्वारा पारित कानून यहाँ तब तक लागू नहीं होता है जबतक कि विधानमंडल की विशेष समिति उसे अनुमोदित न कर दे।

संथाल परगना एवं छोटानागपुर में भी जनजातीय विद्रोह नहीं थमा और वे अलग क्षेत्रीय

पहचान के लिए लगातार संघर्ष करते रहे। परिणाम स्वरूप 15 नवम्बर सन् 2000 को बिहार का विभाजन करके झारखंड राज्य बना दिया गया।

जनजातीय विद्रोहों में महिलाओं की भूमिका

उपनिवेशवाद के खिलाफ आदिवासियों के विद्रोह में आदिवासी महिलाओं की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण रही है। ये महिलाएँ सैनिक कार्रवाई करने से लेकर विद्रोह का नेतृत्व करने तक के कार्य में पुरुषों का साथ देती थीं। संथाल विद्रोह में राधा और हीरा नाम की महिलाओं ने गड़ाँसा, कुल्हाड़ी और लाठी जैसे अस्त्रों का प्रयोग किया था जिसके लिए अंग्रेजी सरकार ने उन्हें कैद कर लिया था। सिद्धू की बहन फूलो और झानो ने अंग्रेजी कैम्प में घुसकर 21 सैनिकों को तलवार से मार गिराया था। सन् 1899 में मुंडा विद्रोह के समय बिरसा मुंडा की महिला साथी 'साली' और चम्पी का उदाहरण मिलता है, जिन्होंने सैन्य संगठन कर बिरसा का साथ दिया था। बिरसा के दोस्त गया मुंडा की पत्नी 'मानी बुई' बेटी– 'थीगी', 'नागी' और लेम्बू तथा उसकी दो बहुओं ने अंग्रेजों के खिलाफ गड़ाँसा, तलवार और लोहे के छड़ का प्रयोग किया।

ताना भगत आन्दोलन में भी जतरा भगत के बाद लीथो उराँव नाम की जनजातीय महिला ने नेतृत्व संभाला। उत्तर पूर्वी क्षेत्र में गिंडाल्यू इसका अपूर्व उदाहरण है।

भारत के अन्य क्षेत्रों में, जैसे गोंड जनजाति के क्षेत्र मे गोंड महिला राजमोहिनी देवी ने 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध से 1950 के दशक के आरम्भ तक आंदोलन का नेतृत्व संभाला।

यद्यपि जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा का अभाव था, फिर भी गैर आदिवासियों एवं अंग्रेजों के शोषण के खिलाफ आदिवासी महिलाओं ने डटकर मुकाबला किया।

अभ्यास

आइए फिर से याद करें–

1. सही विकल्प चुनें।

(i) जनजातीय समाज के लोग आम भाषा में क्या कहलाते थें?

(क) हरिजन (ख) आदिवासी (ग) सिक्ख (घ) हिन्दू

(ii) दिकू किसे कहा जाता था?

(क) अंग्रेज (ख) महाजन (ग) गैर आदिवासी (घ) आदिवासी

(iii) बिरसा मुंडा किस क्षेत्र के निवासी थे?

(क) छोटानागपुर (ख) संथालपरगना (ग) मणिपुर (घ) नागालैंड

(iv) गिंडाल्यू ने अंग्रेजी सरकार की दमनकारी कानूनों को नहीं मानने का भाव जनजातियों में जगाकर गांधीजी के किस आंदोलन से जनजातिय आंदोलन को जोड़ने का सफल प्रयास किया?

(क) असहयोग आंदोलन (ख) सविनय अवज्ञा आंदोलन

(ग) भारत छोड़ो आंदोलन (घ) खेड़ा आंदोलन

(v) झारखंड राज्य किस राज्य के विभाजन के परिणामस्वरूप बना था?

(क) बिहार (ख) बंगाल (ग) उड़िसा (घ) मध्यप्रदेश

2. निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ।

(क) जादोनांग	(क) मणिपुर
(ख) बिरसा मुंडा	(ख) उड़ीसा
(ग) कंध जाति	(ग) जेलियांगरांग आंदोलन
(घ) टिकेन्द्र जीत सिंह	(घ) ताना भगत आंदोलन
(ङ) जतरा भगत	(ङ) सिंगबोगा

आइए विचार करें–

(i) अठारहवीं शताब्दी में जनजातीय समाज के लिए जंगल की क्या उपयोगिता थी?

(ii) आदिवासी खेती के लिए किन तरीकों को अपनाते थे?

(iii) गैर आदिवासियों एवं अंग्रेजों के प्रति आदिवासियों का विरोध क्यों हुआ?

(iv) 'वन अधिनियम' ने आदिवासियों के किन अधिकारों को छीन लिया?

(v) ईसाई मिशनरियों ने आदिवासी समाज में असंतोष पैदा कर दिया कैसे?

(vi) बिरसा मुंडा कौन थे? उन्होंने जनजातीय समाज के लिए क्या किया?

(vii) अंग्रेज संथालों का शोषण किस तरह किया करते थे?

(viii) जादोनांग कौन था? उसकी उपलब्धियों के विषय में बताइए।

(ix) जनजातीय विद्रोह में महिलाओं की भूमिका का वर्णन करें?

(x) जनजातीय समाज की महिलाओं का घरेलू उद्योग क्या था?

आइए करके देखें–

(i) अंग्रेजी शासन के पूर्व जनजातीय समाज के लोगों का जीवन कैसा था? अंग्रेजों की नीतियों से उसमें क्या परिवर्त्तन आया? वर्ग में शिक्षक के साथ परिचर्चा करें।

(ii) उत्तर पूर्व भारत का जनजातीय विद्रोह भारत के अन्य भागों के जनजातीय विद्रोहों से किस तरह अलग था?

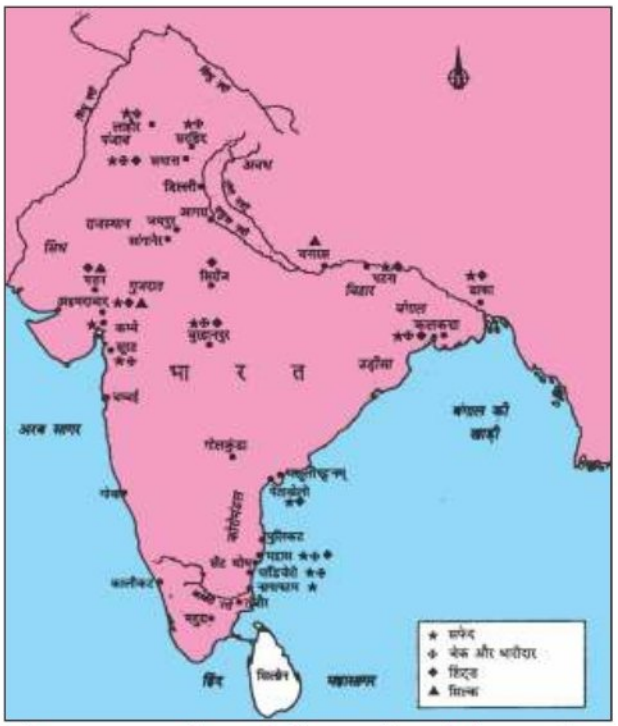
अध्याय - 5

शिल्प एवं उद्योग

भारत एक कृषि प्रधान देश है, परंतु यह शिल्प एवं उद्योग के क्षेत्र में भी विश्व में अग्रणी रहा है। भारत में शिल्प एवं उद्योग अंग्रेजी शासन से पहले काफी विकसित अवस्था में था। यहाँ का प्रमुख उद्योग–वस्त्र उद्योग था। मुगलों के शासन काल में यहाँ से एशिया और यूरोप के देशों में वस्त्र निर्यात किया जाता था। विशेषकर ढ़ाके की मलमल, बंगाल एवं लखनऊ की छींट, अहमदाबाद की धोतियाँ एवं दुपट्टे, नागपुर तथा मुर्शिदाबाद के रेशमी किनारी वाले कपड़े एवं कुछ अन्य सूती वस्त्र का निर्यात बड़ी मात्रा में होता था। इसके बदले सोने एवं चाँदी का आयात होता था। उपभोग की बहुत ही कम वस्तुएँ आयात की जाती थीं जैसे ऊनी कपड़ा, तांबा, लोहा और कागज। एशिया के देशों में चीन से चाय, चीनी मिट्टी के बर्तन, इंडोनेशिया से मसाले तथा इत्र एवं अरब से कहवा, खजूर और शहद आदि का आयात किया जाता था।

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय शिल्प एवं उद्योग की स्थिति खराब होने लगी। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद राजनैतिक अस्थिरता और विदेशी आक्रमणों तथा यूरोपीय व्यापारियों के आगमन ने भारतीय व्यापारियों को नुकसान पहुँचाया। कई क्षेत्रीय शासकों ने अपने राज्य की सीमा में प्रवेश करने वाले व्यापारियों पर अधिक कर लगा दिया, जिससे व्यापार में गिरावट आने लगी, इसका उत्पादन पर भी बुरा असर पड़ा। फिर भी भारतीय बुनकरों एवं दस्तकारों की दक्षता का कोई जोड़ नहीं था। उस समय कपड़ा उद्योग के प्रमुख केन्द्र थे– बंगाल में ढाका, गुजरात में अहमदाबाद, सूरत और भड़ौच, उत्तर प्रदेश में लखनऊ, बनारस, जौनपुर और आगरा, कर्नाटक में बंगलोर, तमिलनाडू में कोयम्बटूर एवं मदुरै तथा आंध्रप्रेदश में विशाखापत्तनम और मछलीपट्टम। कश्मीर ऊनी वस्त्र के लिए प्रसिद्ध था। इन उद्योग की उन्नति के कारण सभी औद्योगिक केन्द्र नगर बन गए, जिसके विषय में आप अध्याय 10 में आगे पढेंगे।

भारत की शिल्पकला एवं औद्योगिक समृद्धि को देखकर यूरोप की कई व्यापारिक कंपनियाँ व्यापार के लिए आने लगीं। अध्याय–2 में आपने पढ़ा है कि सबसे पहले पुर्त्तगालियों ने कालीकट में अपनी कोठियाँ स्थापित की। इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ ने भी ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत के साथ व्यापार करने की अनुमति प्रदान की। इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में बहुमूल्य वस्तुएं लाती थी और उसके बदले कपड़े, मसाले आदि भारत से ले जाकर विदेशों में बेचती थी। इस तरह अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक यूरोप, भारत में तैयार वस्तुओं का खरीददार था, परंतु भारत के आर्थिक समृद्धि का प्रधान कारण सूती कपड़ा का हथकरघा उद्योग था।



चित्र 1 – अठारहवीं शताब्दी में भारत में बुनाई के प्रमुख केन्द्र

सोलहवीं शताब्दी में पुर्त्तगालियों का व्यापार सर्वप्रथम कालीकट से शुरू हुआ, इसीलिए उन्होंने सूती कपड़ों को 'कैलिको' नाम दिया। इसी तरह बारीक सूती कपड़ों को यूरोप के लोगों ने सर्वप्रथम अरब व्यापारियों के पास इराक के 'मोसल' नामक शहर में देखा था, जिसकी वजह से बारीक बुनाई वाले सभी सूती कपड़ों को उन्होंने 'मसलिन' नाम दिया। इस संदर्भ मे भारतीय कारीगरों के कौशल का अनुमान इसी से लगया जा सकता है कि ''बीस गज लम्बे और एक गज चौड़े बढ़िया मलमल के टुकड़े को एक अंगूठी में से निकाला जा सकता था और इसे बनाने में छः महीना समय लगता था।''

यूरोप का शिल्प उद्योग भारतीय शिल्प–उद्योग के साथ प्रतियोगिता करने में सफल नहीं हो पा रहा था। अतः अपने उद्योग को बढ़ावा देने के लिए इंगलैंड ने सन् 1720 ई० में कैलिको अधिनियम बनाया। इसके अनुसार इंगलैंड में भारत के बने छापेदार सूती कपड़े और छींट के इस्तेमाल पर पाबंदी लगा दी गयी और उनके आयात को इंगलैंड में रोक दिया गया।

इसी समय वहाँ तकनीकी विकास की आवश्यकता महसूस की गयी। वैज्ञानिकों द्वारा किए गए आविष्कारों ने, उद्योग के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी क्रांति ला दी, जिसके विषय में आप अध्याय–1 में पढ़ चुके हैं। इस क्रांति के कारण अधिक उत्पादन सभी क्षेत्रों में संभव हो सका। अब ज्यादा कपड़ा बहुत कम कीमत पर इंगलैड में तैयार होने लगा। मैनचेस्टर एवं लंकाशायर वस्त्र उद्योग के बड़े केन्द्र बन गए।

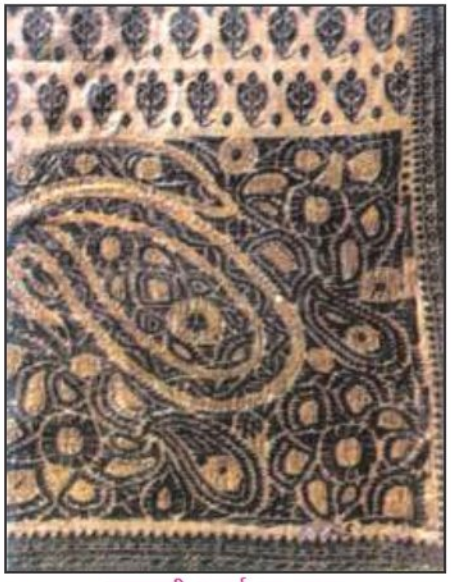
इसके बावजूद भी भारतीय कपड़ों की मांग यूरोप के बाजार में बहुत अधिक थी। उन्नीसवीं शताब्दी में सूरत एवं अहमदाबाद में पटोला बुनाई वाले कपड़े तैयार किए जाते थे, जिसका विदेशों में निर्यात होता था। इसी तरह बारीक मलमल पर जामदानी बुनाई की जाती थी, जिस पर करघे से सजावटी डिजाइनें बनायी जाती थीं। आमतौर पर इसमें सूती और सोने के धागे का इस्तेमाल किया जाता था। ढाका तथा लखनऊ इस तरह के बुनाई के केन्द्र थे। इन कपड़ों को यूरोप में बड़े–बड़े घर के लोगों तथा रजवाड़े परिवार के लोगों द्वारा बहुत अधिक पसंद किया जाता था। इसलिए मंहगे होने के बावजूद भी इनकी मांगें विदेशों में अधिक थीं।

जामदानी बुनाई वाले कपड़े महंगे क्यों होते थे? इसका उपयोग सिर्फ रजवाड़े परिवार के लोग हीं क्यों करते थे?

भारतीय उत्पाद की बढ़ती हुई मांगों को देखकर सन् 1813 ई० में इंगलैंड की सरकार द्वारा 'मुक्त व्यापार की नीति' अपनायी गयी। अभी तक सिर्फ अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी को ही भारत के साथ व्यापार करने का अधिकार था। 'मुक्त व्यापार की नीति' ने सभी अंग्रेजी उद्योगपतियों के लिए भारत में व्यापार करने की स्वंतत्रता प्रदान कर दी। इस नीति का सबसे



चित्र 2 – पटोला बुनाई का नमूना

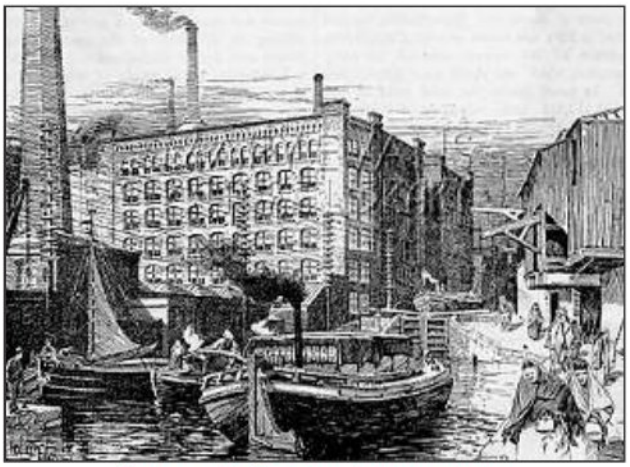


जामदानी बुनाई का नमूना

पहला प्रहार भारत के वस्त्र उद्योग पर हुआ। अब इंगलैंड के सूती वस्त्र उद्योग को विकसित करने के लिए भारतीय निर्माताओं के साथ आयात निर्यात करने में भेदभाव का सिलसिला शुरू किया गया। अंग्रेजी सरकार का यह उद्देश्य था कि ऐसे कानूनों को बनाया जाए, जिनके सहारे भारत से कच्चे माल का आसानी से निर्यात किया जा सके और तैयार माल को भारत में बेचा जा सके। मशीनों की वजह से अधिक उत्पादन होने लगा। अब वे इंगलैंड में ही नहीं, बल्कि भारत में भी बाजार खोजने लगे, ताकि उनके उत्पादित कपड़ों की खपत हो सके। अतः इंगलैंड के व्यापारी अब इंगलैड का कपड़ा लेकर भारत में बेचने के लिए आने लगे। इस समय तक इंगलैंड का उद्योग काफी उन्नति कर चुका था, जिससे भारत में भी सस्ते दामों के कारण मशीनों द्वारा बने हुए कपड़े बिकने लगे। मुक्त व्यापार की नीति एक तरफा नीति थी। भारत से जो सामान इंगलैंड जाता था, उस पर वहाँ आयात कर लगता था, लेकिन जो सामान भारत में आता था, उस पर कोई कर नहीं लगता था। इसलिए भारत में इंगलैंड के सामान सस्ते दोमों पर उपलब्ध होते थे। परिणामस्वरूप भारतीय बुनकरों एवं सूत

मुक्त व्यापार की नीतिः– इस नीति के द्वारा भारतीय व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार समाप्त हो गया। अब इंगलैंड का कोई भी व्यक्ति भारत के साथ स्वत्रंत रूप से व्यापार कर सकता था।

कातने वालों की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी।



चित्र 4 – इंगलैंड का सूती वस्त्र कारखाना

यधपि उन्नीसवीं शताब्दी में भारत द्वारा इंगलैंड को निर्यात की जानेवाली वस्तुओं में वृद्धि हुई, लेकिन यह वृद्धि सिर्फ कच्चे माल के रूप मे हुई। भारत को अब मजबूर किया जाने लगा कि वह उन चीजों का निर्यात करे जिनकी अंग्रेजी उद्योगों को आवश्यकता थी। जैसा कि अध्याय–3 में आपने पढ़ा है कि अंग्रेज कपास, नील, अफीम, जूट आदि जैसे कच्चे माल के उत्पादन को प्रोत्साहन देने लगे। वे किसानों से मनमाने दाम पर माल खरीदते थे और उन्हें अनाज की जगह नकदी फसल उपजाने को बाध्य करते थे। इंगलैंड में खाद्यान्न की भी कमी थी, अतः भारत से अनाज का भी निर्यात किया जाता था। यहाँ तक कि भारत में अकाल के समय भी अनाज का निर्यात किया जाता था। दूसरी तरफ कच्चा माल के लिए अधिक भूमि का उपयोग किए जाने से भी देश में खाद्यान्न की कमी होने लगी। अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य यह था कि किसी तरह उनके उद्योगों को समाप्त करके अपना उद्योग विकसित किया जाय।

अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों से भारतीय शिल्प एवं उद्योग का धीरे–धीरे पतन होने लगा। रेलवे के विकास ने ग्रामीण क्षेत्रों में भी इंगलैड की वस्तुओं को पहुँचाना शुरू किया। अब हस्तशिल्प की वस्तुओं की कीमतें बढ़ गयीं और मशीन निर्मित चीजें बाजार में सस्ती मिलने लगीं। अंग्रेजी शासन से पहले कृषि, हस्त–शिल्प एवं कुटीर उद्योग का बहुत बढ़िया संतुलन था, लेकिन कुटीर उद्योग एवं हस्तशिल्प के विनाश ने इस संतुलन को नष्ट कर दिया। शिल्प एवं उद्योग में लगे हुए कारीगर अब शहर छोड़कर गाँवों में लौटने लगे और खेती करने को बाध्य हो गए। इस तरह इंगलैंड में मशीनों के आविष्कार एवं अंग्रेजों की भारत के प्रति व्यापारिक नीतियों ने भारत में निःऔद्योगिकिकरण (De-industrialisation) की स्थिति पैदा कर दी।

कृषि पर दबाव बहुत बढ़ गया, जिससे भारत में बेरोजगारी और गरीबी की समस्या उत्पन्न हो गयी। इसे आप अध्याय–3 में विस्तृत रूप से पढ़ चुके हैं।

उद्योग में लगे हुए भारतीय कारीगर उद्योग को छोड़ कृषि के तरफ क्यों लौट गएँ?

निःऔद्योगिकिरण का अर्थ होता है– जब देश के लोग शिल्प एवं उद्योग को छोड़कर खेती को अपनी जीविका का आधार बना लें।

इंगलैंड में जहाँ हथकरघा उद्योग के विनाश का स्थान नये मशीनी उद्योगों ने ले लिया, वहाँ भारत के दस्तकारों एवं बुनकरों के विनाश का स्थान किसी अन्य उद्योगों ने नहीं लिया। इसका प्रमुख कारण था– भारत में पूँजी की कमी, तकनीकी शिक्षा का अभाव, वैसे भारतीयों की कमी जो औद्योगिक विकास की भावना रखते हों तथा अंग्रेजों की मुक्त व्यापार की नीति। इसके बावजूद भी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुछ भारतीय मशीनी उद्योग की स्थापना की तरफ आकर्षित हुए। सबसे पहले उन्होंने वस्त्र उद्योग की स्थापना की क्योंकि इसके कारखाने को खोलने के लिए कम पूँजी की आवश्यकता थी, उसके बाद जूट एवं कोयला खान उद्योगों की भी स्थापना की गयी।

सन् 1854 में बंबई में पहला सूती वस्त्र का कारखाना कावस जी नानाजी दाभार नामक एक पारसी व्यापारी ने स्थापित किया। सन् 1880 ई० तक पूरे भारत में 56 सूती कपड़ा मिलें स्थापित हो चुकी थीं। इन कारखानों के लिए मशीनें विदेशों से लायी जाती थीं। भारत में कपड़ा उद्योग की प्रगति ने विदेशों को चिंता में डाल दिया। फिर भी भारतीय उद्योगपतियों के सामने समस्या यह थी कि यदि किसी तरह अंग्रेजी सरकार भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देने का कार्य करती, तो उत्पादन क्षमता में वृद्धि की जा सकती थी। अतः उन्होंने मांग की कि इंगलैंड से आ रहे कपड़ों पर सरकार विशेष कर लगाए ताकि वे भारत में यहाँ के बने हुए कपड़ों से मंहगा बिके। लेकिन अंग्रेजों ने ऐसी नीति नहीं अपनायी जिससे भारत का औद्योगिक विकास धीमा रहा।



चित्र 5 – बंबई स्थित सूती कपड़ा मिल

सन् 1855 ई० में बंगाल के रिशरा में पहली जूट मिल स्थापित की गयी। इसी तरह सन् 1906 में कोयला खान उद्योग की शुरुआत भी की गयी।



चित्र 6 – टाटा आयरन एण्ड स्टील कारखाना

बीसवीं शताब्दी में स्थापित महत्वपूर्ण उद्योग लौह उद्योग था। सन् 1907 में जमशेद जी टाटा के द्वारा तत्कालीन बिहार (झारखंड) के साकची नामक स्थान पर टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी (टिस्को) की स्थापना की गयी। यही स्थान आज जमशेदपुर के नाम से जाना जाता है। यहाँ स्टील का उत्पादन होने लगा।

अंग्रेजी सरकार ने इंगलैंड के कपड़ा उद्योग को बढ़ावा देने के लिए क्या किया? भारतीय उद्योगपतियों को यह सुविधा क्यों नहीं मिली? भारत में स्टील के उत्पादन से भारतीयों को क्या लाभ मिला?

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के शुरुआत में भारत में कागज, चीनी, आटा आदि की मिलें भी खोली गयीं। यहाँ नमक, अभ्रक और शोरे जैसे खनिज उद्योगों की भी स्थापना हुयी। मशीनों पर आधारित उद्योगों के अलावे नील, चाय और कॉफी जैसे बगान उद्योग का भी विकास हुआ, जिसके विषय में आप अध्याय–3 में पढ़ चुके हैं। इन उद्योगों में विदेशी पूँजी का ही निवेश ज्यादा था। अंग्रेज मुनाफा कमाने के लिए भारतीय उद्योगों को अपनी पूँजी लगाकर प्रोत्साहन देना शुरू किए, ताकि उन उद्योगों पर उनका वर्चस्व बना रहे। अंग्रेजों ने बैंकों पर भी अपना प्रभाव जमा रखा था, जहाँ से उन्हें आसानी से कम ब्याज पर कर्ज मिल जाता था, जबकि भारतीयों को इसके लिए बहुत परेशानी उठानी पड़ती थी और उन्हें ऊँचे दर पर ब्याज देना पड़ता था।

इस तरह भारत में औद्योगिक विकास का यह क्रम धीमी गति से बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक यों ही चलता रहा है लेकिन उसका तेजी से विकास सन् 1914 के बाद ही हो सका। 1945 ई० तक इंगलैंड को दो विश्वयुद्धों एवं कई आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इस अवधि में इंगलैंड का पूरा ध्यान युद्ध सामग्री, यथा अस्त्र–शस्त्र निर्माण में

लगा रहा तथा मालवाहक जहाजों को युद्ध सामग्री ढोने के काम में लगा दिया गया। परिणामतः इंगलैंड से भारत में आने वाले सामानों में कमी होने लगी, जिससे भारत में उत्पादित वस्तुओं की बिक्री बढ़ गयी और उत्पादन पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा। इससे भारतीय उद्योगपतियों का लाभ बहुत बढ़ गया। अब सिर्फ भारत में ही नहीं, बल्कि इंगलैंड तथा यूरोप के अन्य देशों में भारत में निर्मित वस्त्रों की मांग बढ़ गयी, जिसकी वजह से उसकी कीमत में पाँच गुना तक की बढ़ोतरी हो गयी। इन दो विश्वयुद्धों के बीच भारतीय उद्योगों को काफी बढ़ावा मिला, विशेषकर कपड़ा उद्योग काफी विकसित हुआ।

इस तरह भारत में औद्योगिक विकास का एक नया दौर शुरू हुआ। परिणाम स्वरूप समाज में दो नये सामाजिक वर्गों का उदय हुआ– औद्योगिक पूँजीपति वर्ग और आधुनिक मजदूर वर्ग।

औद्योगिक पूँजीपति वर्ग वे थे, जो भारतीय उद्योग में अपना पूँजी निवेश करते थे। सन् 1920 के बाद विदेशी पूँजी निवेश में कमी होने लगी। इस काल में हो रहे औद्योगिक विकास ने भारतीयों को पूँजी निवेश के लिए प्रेरित किया और यहाँ के पूँजीपतियों ने विदेशी कंपनियों से सूती कपड़ा एवं इस्पात उद्योग के क्षेत्र में विदेशी कंपनियों को खरीदकर भारत का औद्योगिक विकास किया।

सन् 1920 के दशक से ही जी०डी० बिड़ला भारतीय उद्योगपतियों का एक संघ बनाना चाहते थे। इस उद्देश्य से सन् 1927 में 'फेडरेशन ऑफ इंडियन चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री (FICCI) की स्थापना की गयी। यह पूरे भारत में व्यापारिक हितों के लिए काम करने वाली व्यापारिक संस्था बन गयी।

शिल्प एवं उद्योग तथा मजदूरों का जीवनः– सन् 1850 ई० के बाद से भारत में मशीनों वाले उद्योग खोले जाने लगे थे। सबसे बड़ा उद्योग कपड़ा बनाने और सूत कातने का उद्योग था, जिसमें सबसे ज्यादा मजदूर काम करते थे। दूसरा था जूट उद्योग और तीसरा कोयला उद्योग।

मशीन उद्योग के शुरू होने से पूर्व भारत में किस तरह का उद्योग था?
मशीनी उद्योग की आवश्यकता भारतीयों को क्यों पड़ी?

भारत में सूती कपड़ा उद्योग का मुख्य केन्द्र बंबई था, जूट और चाय उद्योग का मुख्य केन्द्र बंगाल था। यहाँ श्रमिकों की संख्या भारत में सबसे अधिक थी। उनके रहने और कार्य करने की परिस्थितियाँ बहुत शोचनीय थीं। वे एक दिन में 15–16 घंटे से लेकर 18 घंट तक काम करते थे। अवकाश की कोई व्यवस्था नहीं थी। उनके रहने की जगह भी अच्छी नहीं होती थी। वे कारखानों के बगल में ही स्थित छोटी–छोटी झुग्गी झोपड़ियों में रहते थे, जहाँ सफाई एवं पानी की कोई भी सुविधा उपलब्ध नहीं थी।



चित्र 7 – कोयला खदान में काम करता श्रमिक



चित्र 8 – मजदूरों का आवास

मजदूरों को समय पर वेतन का भी भुगतान नहीं होता था। अगर मशीन खराब हो जाय या माल कम तैयार हो तो इसमें मजदूरों की कोई गलती नहीं होती थी, फिर भी मालिक उनके वेतन से कटौती कर लेता था। इतना ही नहीं यदि मजदूर की तबियत खराब हो जाती थी, तो उसकी चिकित्सा की व्यवस्था करना तो दूर, उस दिन काम पर नहीं आने के कारण उसके वेतन में कटौती कर ली जाती थी।

कोयला खदानों के मजदूरों की दशा तो और भी दयनीय थी। झरिया और गिरीडीह के कोयला खानों के श्रमिकों के काम के घंटे प्रातः 6 बजे से शाम 6 बजे तक थे। स्त्रियाँ एवं बच्चे भी भूमिगत खानों में काम करते थे। वहाँ प्रायः दुर्घटनाएँ हुआ करती थीं। यद्यपि सन् 1923 के बाद सरकार ने दुर्घटना बीमा योजना की शुरुआत कर दी थी, लेकिन मुआवजे की राशि लेने के लिए बहुत परेशानी उठानी पड़ती थी।

इतना हीं नहीं स्त्री–पुरुष एवं बच्चों को गर्मी में 14 घंटों एवं जाड़ा में 12 घंटों तक काम

करना पड़ता था। एक तरफ काम का बोझ होता था, दूसरी तरफ रोजगार की कोई सुरक्षा नहीं होती थी। ऐसी परिस्थिति में मजदूरों के पास संगठन बनाने एवं अपनी मांगों को सरकार के समक्ष रखने के अलावे कोई उपाय नहीं था। लेकिन इससे उसकी नौकरी चले जाने का भय था। सन् 1880 में बिजली के बल्ब के लग जाने से काम के घंटे में और वृद्धि होने लगी। अतः मजदूरों ने अब उद्योगपतियों के खिलाफ जगह–जगह पर विरोध प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। उनकी प्रमुख प्रारंभिक मांगें थीं– काम के घंटों में कमी, साप्ताहिक अवकाश और कारखानों में काम के दौरान घायल हुए श्रमिकों को मुआवजा। भारतीय उद्योगपतियों को उनकी मांगें उचित नहीं लगीं, क्योंकि काम के घंटे कम होने से उत्पादन में कमी हो जाती, मालिकों का खर्च बढ़ जाता और कारखानों में बनी वस्तुओं का दाम बढ़ जाता। ऐसी स्थिति में इंगलैंड की बनी वस्तुएँ सस्ती और भारत में बनी वस्तुएँ महंगी हो जातीं और भारतीय उद्योग का विकास धीमा पड़ जाता।



चित्र 9 – श्रमिकों का जीवन

उस समय इंगलैंड के उद्योगपतियों ने भारतीय मजदूरों का साथ दिया। अतः अंग्रेजी सरकार ने सन् 1881 एवं उसके बाद के समय में मजदूरों की स्थिति में सुधार के लिए कई नियम बनाए, जिनसे स्त्री–पुरुष एवं बाल मजदूरों के काम करने के घंटे तथा उनकी दैनिक मजदूरी तय की गयी। फिर भी अभी मजदूरों की स्थिति दयनीय ही बनी रही। आवश्यक सुविधा प्राप्त करने के लिए मजदूरों ने हड़ताल करना आरंभ कर दिया। सन् 1920 तक देशभर में कई हड़तालें हुयीं। इससे पूर देश के मजदूरों में एकता की भावना भी आयी, जिससे प्रेरित होकर सन् 1920 में ही मजदूरों ने ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) नामक संगठन बनाया, जो मजदूरों के हितों की रक्षा करने वाली संस्था बनी। आगे चलकर यही मजदूर भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को मजबूत बनाने में भी सहायक रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने उनके लिए 'न्यूनतम मजदूरी कानून' बनाकर मजदूरी दरों को निश्चित किया तथा उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील रही।

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार भारत के शिल्प एवं उद्योग के विकास के लिए भी सतत् प्रयत्नशील रही। एक 'औद्योगिक नीति' बनायी गयी जिसके द्वारा कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए भी कारगर कदम उठाए गए।

अभ्यास

आइए याद करें–

1. सही विकल्प को चुनें।

(i) अठारहवीं शताब्दी में भारत का प्रमुख उद्योग निम्नलिखित में से कौन था?

(क) वस्त्र उद्योग (ख) कोयला उद्योग (ग) लौह उद्योग (घ) जूट उद्योग

(ii) फेडरेशन ऑफ इंडियन चैम्बर्स ऑफ–कामर्स ऐण्ड इंडस्ट्री (FICCI) की स्थापना कब हुई?

(क) सन् 1920 में (ख) सन् 1927 में (ग) सन् 1938 में (घ) सन् 1948 में

(iii) जूट उद्योग का प्रमुख केन्द्र कहाँ था?

(क) गुजरात (ख) आंध्रप्रदेश (ग) बंगाल (घ) महाराष्ट्र

(iv) सन् 1818 में अंग्रेजी सरकार ने किस उद्देश्य से मजदूरों के लिए नियम बनाए?

(क) मजदूरों की स्थिति में सुधार के लिए (ख) अधिक उत्पादन के लिए

(ग) प्रशासनिक सुविधा के लिए (घ) अपने आर्थिक लाभ के लिए

(v) ऑल इंडिया ट्रेड युनियन कांग्रेस (AITUC) की स्थापना कब हुई?

(क) 1818 में (ख) 1920 में (ग) 1938 में (घ) 1947 में

निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ।

(क)	जूट उद्योग	(क)	लखनऊ
(ख)	ऊनी वस्त्र उद्योग	(ख)	बंगाल
(ग)	जामदानी बुनाई	(ग)	चम्पारण
(घ)	लौह उद्योग	(घ)	कश्मीर
(ङ)	नील बगान उद्योग	(ङ)	जमशेदपुर

आइए विचार करें–

(i) कैलिको अधिनियम के क्या उद्देश्य थे?

(ii) मुक्त व्यापार की नीति से आप क्या समझते हैं?

(iii) भारतीय उद्योगपतियों को भारत में उद्योग की स्थापना के मार्ग में क्या–क्या बाधाएँ थीं?

(iv) मजदूरों के हित में पहली बार कब नियम बनाया गया? उन नियमों का मजदूरों पर क्या प्रभाव पड़ा?

(v) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने मजदूरों की स्थिति में सुधार के लिए कौन से कदम उठाए?

आइए करके देखें–

(i) अठारहवीं शताब्दी के भारत के मानचित्र को देखकर यह बताएँ कि कौन सा राज्य सूती कपड़ा उद्योग का सबसे बड़ा केन्द्र था?

(ii) इस पाठ के आधार पर यह बताएँ कि मजदूरों को अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए?

अध्याय - 6

अंग्रेजी शासन के खिलाफ संघर्ष (1857 का विद्रोह)

पिछले अध्यायों में आप ने यह जाना कि भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना कैसे हुई एवं उसने व्यवस्था में क्या परिवर्त्तन किया। उन परिवर्त्तनों का लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसे भी आपने देखा। अंग्रेजी सरकार के काम से भारतीय समाज का शायद ही कोई हिस्सा ऐसा रहा हो जिसके जीवन में कोई बदलाव नहीं आया। जमींदार, नवाब, राजा, किसान, व्यापारी, शिल्पकार, बुनकर, धनवान इत्यादि, इन सभी लोगों का जीवन अस्थिर हो गया। कई राजाओं के राज्य छिन गये, जमींदारों और नवाबों की जमींदारियां नीलाम हो गयीं, किसानों की हालत और दयनीय हो गई, तथा शिल्पकारों एवं बुनकरों का तो काम ही बन्द हो गया। व्यापारी स्वतंत्र रूप से व्यापार नहीं कर पा रहे थे और धनवान लोग व्यापार और छोटे–मोटे उद्योग में जो पैसे लगा कर लाभ कमाते थे वह भी बन्द हो गया। इन सबके बारे में आपने पिछले पाठों में पढ़ा है।

अंग्रेजी सरकार से दुखी ये सभी लोग समय–समय पर, अलग अलग स्थानों पर, अलग–अलग तरीकों से अंग्रेजी शासन का विरोध भी कर रहे थे। मगर उनके विरोध में एकजुटता नहीं थी। छोटे क्षेत्रों में सीमित उनके संघर्ष बड़ी आसानी से सरकार द्वारा दबा दिए जाते थे।

फिर 1857–58 में ऐसी क्या बात हुई कि इन्हीं लोगों ने एकजुट होकर अंग्रेजी शासन के खिलाफ एक बड़ा संघर्ष शुरू कर दिया? आप यह तो जानते ही हैं कि कोई भी शासन अपने को बनाए रखने के लिए पुलिस और सेना रखती है। आज भी आप यह देखते हैं। कल्पना करें कि यही सेना और पुलिस शासन का विरोध करने लगे तो क्या होगा? सरकार कठिनाई में पड़ जाएगी। 1857 में अंग्रेजी सरकार के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। अंग्रेजी सरकार की सेना में शामिल भारतीय सैनिकों की एक बड़ी संख्या ने शासन का विरोध आरंभ

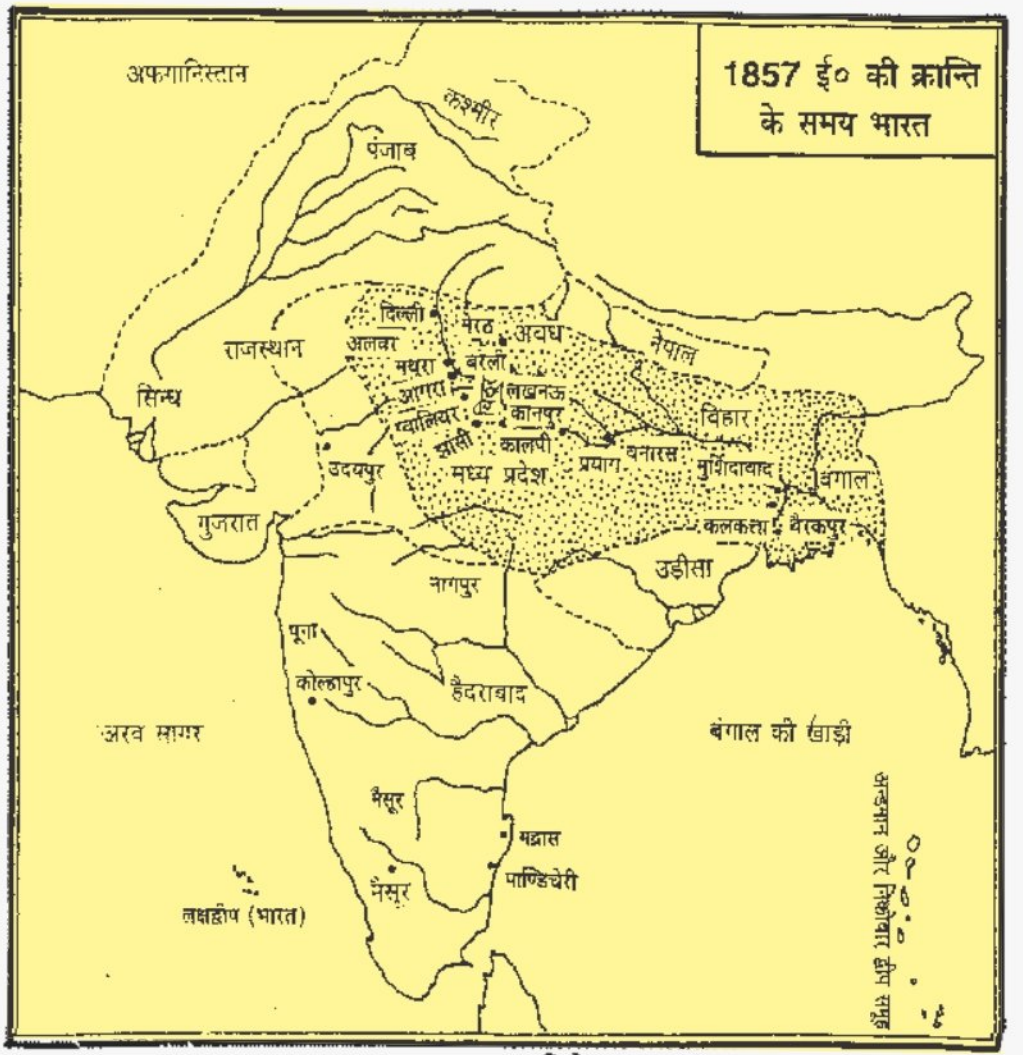
कर दिया। अब सवाल यह उठता है कि वर्षों तक उनके लिये काम करने वाले भारतीय सैनिकों ने ऐसा क्यों किया? तो निश्चित रूप से इन सैनिकों के साथ भी कुछ ऐसी बात जरूर रही होगी जिसने उन्हें विद्रोह करने के लिए उकसाया। आइये अब उन कारणों को जानने का प्रयास करें।

भारतीय सैनिकों की शिकायतें

अंग्रेजों ने भारत में अपना अधिकार भारतीय सैनिकों की मदद से ही स्थापित किया था। जैसे–जैसे पुराने भारतीय राज्य समाप्त होते गए उन राज्यों के लिए काम करने वाले सैनिक भी बेरोजगार हो गए। इस स्थिति में उन्होंने अंग्रेजी सरकार में नौकरी कर ली। उनके लिए यह महत्वपूर्ण नहीं था कि राजा कौन है। उन्हें तो सबों के लिए लड़ाई ही लड़नी होती थी, बदले में उन्हें वेतन मिलता था। उनके लिए अपना और अपने परिवार का जीवन चलाना ज्यादा जरूरी था। भारत में अंग्रेजी सरकार की सेना में भारतीयों की संख्या काफी अधिक थी। इसमें भी अवध प्रांत के सैनिक सबसे अधिक थे।

अंग्रेजी सेना में काम करने वाले भारतीय सिपाही खुश नहीं थे। उन्हें अंग्रेज सिपाहियों की अपेक्षा बहुत कम वेतन मिलता था जबकि काम वे बराबर ही करते थे। अंग्रेजी सेना में एक भारतीय पैदल सिपाही को 7 रु. और घुड़सवार सिपाही को 27 रु. मिलते थे। दूसरे, भारतीय सिपाही चाहे कितना भी अच्छा काम करे उन्हें हवलदार या सूबेदार से ऊँचा पद नहीं दिया जाता था। ये दोनों पद काफी छोटे होते थे। सेना के सारे बड़े पद अंग्रेजों के लिए सुरक्षित होते थे। सेना के लिए बनाए गए नियमों से भी वे खफा थे। नए नियमों के अनुसार भारतीय सैनिकों को दूसरे देशों के साथ होने वाले युद्धों के लिए समुद्र पार भी जाना होगा, ऐसा प्रावधान किया गया। यह कानून 1856 में बना था। हिन्दू धर्म में उस समय समुद्र पार करके दूसरे देशों में जाने को पाप माना जाता था। इसके अतिरिक्त अंग्रेज अफसर और सिपाही भारतीय सैनिकों के साथ बहुत अपमानजनक व्यवहार भी करते थे।

आज ही के तरह उस समय भी अधिकांश सिपाही किसान परिवार से आते थे। जब अंग्रेजों की नई भूमि व्यवस्थाओं से किसान बर्बाद होने लगे तो सैनिकों पर भी इसका प्रभाव



1857 का विद्रोह

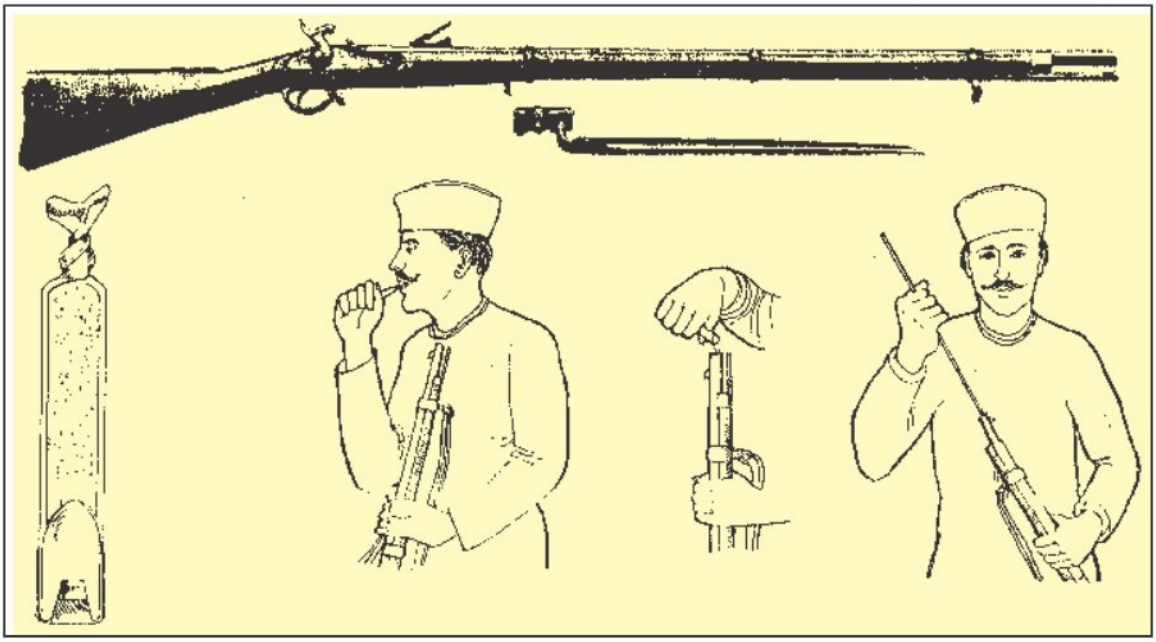
नेतृत्वकर्ता (विद्रोह के)	समय (विद्रोह का)	केन्द्र	ब्रिटिश नायक (विद्रोह दबाने के)	समय (विद्रोह दबाने का)
बहादुरशाह जफर एवं जफर बख्त एवं (सैन्य नेतृत्व)	11,12 मई, 1857	दिल्ली	निकलसन, हडसन	21 सितम्बर, 1857
नाना साहब एवं तात्या टोपे	5 जून, 1857	कानपुर	कैम्पबेल	6 दिसम्बर, 1857
बेगम हजरत महल	4 जून, 1857	लखनऊ	कैम्पबेल	मार्च 1858
रानी लक्ष्मीबाई एवं तात्या टोपे	जून 1857	झांसी, ग्वालियर	ह्यूरोज	3 अप्रैल, 1858
लियाकत अली	1857	इलाहाबाद, बनारस	कर्नल नील	1858
कुँवर सिंह	अगस्त 1857	जगदीशपुर (बिहार)	विलियम टेलर, गेजर विंसेट आयर	1858
खान बहादुर खां	1857	बरेली		1858
मौलवी अहमद उल्ला	1857	फैजाबाद		1858
अमरसिंह	1857	मन्दसौर	जनरल रोड	1858

पड़ा। अतः अंग्रेजी नीतियों से सामाजिक जीवन में जो बदलाव आ रहे थे, सैनिक उससे सीधे तौर पर प्रभावित हो रहे थे।

1856 में एक अंग्रेज अधिकारी गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी से सेना के समाज से जुड़ाव को स्पष्ट करते हुए कहता है कि 'हमारी सेना देश के किसानों के बीच से बनी है। किसानों के कुछ अधिकार हैं। यदि इन अधिकारों का हनन हुआ, तो हम ज्यादा दिनों तक सेना पर भरोसा नहीं कर सकेंगे। यदि आप भारतीय जनता की संस्थाओं पर आघात करेंगे तो सेना भारतीय जनता की हमदर्द हो जाएगी, क्योंकि वह इसी के बीच से बनी है। किसी व्यक्ति के अधिकारों का हनन का मतलब है किसी–न–किसी सैनिक के अधिकारों का हनन क्योंकि हर सैनिक किसी–न–किसी का या तो बाप होता है, या बेटा या भाई या दूर का कोई रिश्तेदार।'

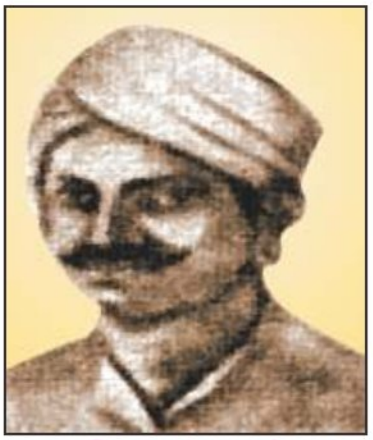
गतिविधि–आप इस अंग्रेज अधिकारी के कथन को भारतीय सैनिकों के संदर्भ में किस रूप में देखते हैं –

इसी समय इन सैनिकों के सामने एक बड़ी समस्या आयी। यह समस्या थी नए किस्म की 'इन्फील्ड राइफलें'। इस राइफल के जो कारतूस होते थे, उस पर कागज का एक मोटा खोल चढ़ा होता था। खोल बनाने में गाय–सूअर एवं अन्य जानवरों की चर्बी का इस्तेमाल किया जाता था। कारतूस में भरने के पहले खोल को दाँत से काट कर हटाना पड़ता था। (इसे आप चित्र में देख कर समझ सकते हैं) इस बात ने हिन्दू और मुसलमान दोनों सैनिकों को उत्तेजित कर दिया। आप जानते हैं कि गाय हिन्दुओं के लिए पवित्र है जबकि सूअर मुस्लमानों के लिए वर्जित है। सैनिकों को ऐसा लगा कि अगर वे दाँतों से कारतूस के खोल को काटते हैं तो उनका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। हालांकि इन राइफलों को अंग्रेजी सरकार अपनी सैन्य क्षमता बढ़ाने के लिए लायी थी परन्तु भारतीय सैनिकों को ऐसा विश्वास हो गया कि ये राइफलें और कारतूस उनके धर्म को भ्रष्ट करने के लिए लायी गयी थीं। सैनिक अन्य कारणों से तो पहले से ही नाराज थे ही इस बात ने उन्हें एकदम से भड़का दिया।



चित्र 1 –'इन्फीलड राइफल और उसमें कारतूस भरता हुआ सैनिक

विद्रोह का आरंभ – मार्च 1857 में बैरकपुर छावनी के एक युवा सिपाही मंगल पाण्डे ने नए कारतूस और राइफल को लेने से इन्कार कर दिया। दबाव डालने पर उसने अपने अफसर पर हमला कर दिया। उसे गिरफ्तार करके तुरंत फाँसी पर लटका दिया गया। इसके कुछ दिनों के बाद मेरठ छावनी के 90 सैनिकों ने भी ऐसा ही किया। उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया एवं 10 वर्षों की सजा सुनाई गई। इस घटना ने उस छावनी के सभी भारतीय सैनिकों को भड़का दिया। 10 मई 1857 को उन्होंने पूरी छावनी में विद्रोह कर दिया। उन्होंने अपने साथियों को छुड़ाया, अपने अफसरों की हत्या कर दी एवं शस्त्रागार लूट लिये। उन्होंने छावनी से निकल कर मेरठ शहर में भी अंग्रेजों और उनके समर्थकों के साथ लूट–पाट की। सैनिकों ने सरकारी खजाने को भी अपना निशाना बनाया। फिर वे दिल्ली की ओर निकल गए। दिल्ली पहुंच कर उन्होंने शहर में लूट–पाट मचाते हुए अंग्रेजी सरकार के प्रशासनिक केन्द्रों को ध्वस्त कर दिया। पूरे शहर में अराजकता की स्थिति बन गई तथा अंग्रेजों के नियंत्रण से दिल्ली शहर निकल गया। इन विद्रोही सिपाहियों ने मुगल बादशाह को अपना नेता घोषित किया तथा अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध उन्हीं के निर्देशन में संघर्ष चलाने का



चित्र 2– मंगल पाण्डे

फैसला लिया। सैनिकों के इस कार्य में खास बात यह रही कि मेरठ और दिल्ली दोनों शहरों में शहरी लोगों का एक बड़ा वर्ग उनका साथ दे रहा था।



चित्र 3 – बहादुर शाह जफर

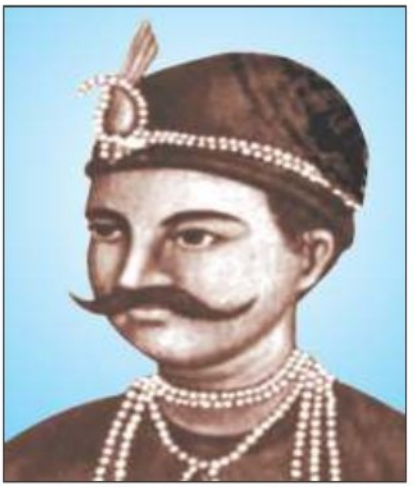
गतिविधि– विद्रोही सैनिकों ने मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर को अपना नेता क्यों चुना होगा?

बगावत फैलने लगी– जैसे–जैसे दूसरी सैनिक छावनियों एवं जमींदारों, किसानों तथा शहरियों को मेरठ और दिल्ली की घटनाओं का पता चला वे लोग भी अंग्रेज सरकार के विरोध में सक्रिय होने लगे। यह खबर कि दिल्ली पर से अंग्रेजों का अधिकार खत्म हो गया है एवं मुगल बादशाह ने भी भारतीय सैनिकों को अपना समर्थन दे दिया है, अंग्रेजी सरकार से असंतुष्ट सभी लोगों को एक बड़े अवसर की तरह दिखी। ज्यादातर असंतुष्ट राजाओं, नवाबों और जमींदारों ने यह महसूस किया कि अगर भारत में फिर से मुगल बादशाह का शासन आ जाएगा तो वे पहले की तरह बेफ़िक्र होकर अपना काम कर सकेंगे। इसलिए अगले कुछ महीनों में लगभग पूरे उत्तर भारत में अंग्रेजी सरकार का विरोध शुरू हो गया। (इसे आप मानचित्र–1 में देख सकते हैं।) प्रत्येक जगह सैनिकों ने विद्रोह आरंभ कर दिया और लोगों ने उनका समर्थन किया। इन विद्रोहों का नेतृत्व या तो जमींदार या नवाब कर रहे थे या फिर वैसे राजा जिनका राज्य अंग्रेजों ने छीन लिया था। दिल्ली के बाद कानपुर, लखनऊ, झाँसी, आरा इत्यादि जगहों पर विद्रोहियों ने अंग्रेजी शासन को लगभग समाप्त कर दिया। कानपुर में मराठों के आखिरी पेशवा बाजीराव द्वितीय (कक्षा सात में आपने इनके बारे में जाना था) के दत्तक पुत्र नाना साहब ने इसका नेतृत्व किया। अंग्रेजों ने इन्हें मिलने वाली पेंशन बंद कर दिया था। इनके प्रमुख सहयोगी तात्या टोपे और अहमदुल्लाह थे। लखनऊ में बेगम हजरत

महल जिनके राज्य अवध को अंग्रेजों ने हड़प लिया था (देखें पाठ दो) विद्रोह का नेतृत्व कर रहीं थीं। इनका समर्थन यहाँ के किसानों ने बड़े पैमाने पर किया। विद्रोह का एक और बड़ा केन्द्र झाँसी था। वहाँ की रानी लक्ष्मीबाई ने विद्रोही सैनिकों के साथ मिलकर अंग्रेजी सरकार को कड़ी चुनौती दी। इनके राज्य को भी अंग्रेजी शासन ने छीन लिया था।



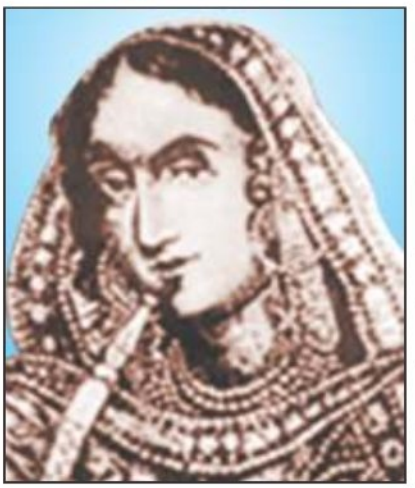
चित्र 4 – नाना साहब



चित्र 5 – तत्या टोपे



चित्र 6 – रानी लक्ष्मी बाई



चित्र 7 – बेगम हजरत महल

फैजाबाद में मौलवी अहमदुल्लाह शाह ने लोगों की एक बड़ी फौज इक्ट्ठी कर ली थी और बेगम हजरत महल के लिए लड़े। बरेली में सिपाही बख्त खान ने भी एक सेना तैयार की एवं मुगल बादशाह की मदद के लिए दिल्ली पहुँच गए। विद्रोह के फैलने और अंग्रेजों की जगह–जगह पराजय से लोग उत्साह में थे और लगातार सैनिकों का समर्थन कर रहे थे। उन्हें लगा कि भारत से अब विदेशी शासन का अन्त हो जाएगा। अब तक लोगों को यह समझ आ रहा था कि उनकी परेशानियों का मुख्य कारण कहीं–न–कहीं यह विदेशी सरकार ही थी।

1857 का विद्रोह और बिहार

आप बाबू कुँवर सिंह के नाम से जरूर परिचित होंगे। उनके जन्म दिन पर आपके विद्यालय में छुट्टी भी रहती है। अपने राज्य बिहार के आस पास के इलाके में 1857 में हुए विद्रोह के वे प्रमुख नेता थे। इसलिए आज तक हम उनको याद करते हैं। कुँवर सिंह आरा के पास स्थित जगदीशपुर के जमींदार थे लेकिन उनकी जमीनदारी अंग्रेजों ने छीन ली थी। विद्रोह की योजना बनाने में तो वे शामिल नहीं थे लेकिन जैसे ही दानापुर छावनी के सैनिकों ने विद्रोह किया और आरा की ओर बढ़े, कुँवर सिंह अपने साथियों के साथ उनसे मिल गए और उनका नेतृत्व संभाल लिया। असल में इस बगावत के पहले से ही बिहार में वहाबी आंदोलन के रूप में अंग्रेजी सत्ता को चुनौती मिल रही थी। वहाबी आंदोलन के प्रमुख नेता पटना के दो प्रतिष्ठित मौलवी विलायत अली और इनायत अली थे। इन दोनों भाइयों ने अंग्रेजी सरकार का प्रत्येक स्तर पर विरोध किया था। पटना शहर एवं अन्य जगहों पर इनके समर्थकों की संख्या काफी बड़ी थी। इसलिए जैसे ही अंग्रेजों को सैनिकों के बगावत की खबर मिली वे पटना शहर को बचाने के लिए सक्रिय हो गए। वहाबी नेताओं को गिरफ्तार कर शहर में कठोर कानून लागू कर दिया गया। इसलिए संभवतः दानापुर के विद्रोही सैनिक पटना के नजदीक होने के बावजूद यहाँ नहीं आकर आरा की तरफ चले गए। उस समय के तीन प्रमुख वहाबी नेताओं मोहम्मद हुसैन, अहमदुल्लाह एवं वाएज़उल हक को अंग्रेजों ने धोखे से गिरफ्तार कर लिया। लोगों ने इसका विरोध किया। इस विरोध के नेता पीर अली को अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर उनके सहयोगियों के साथ उन्हे फाँसी दे दी। इस तरह की कठोर कार्रवाई से पटना विद्रोह से लगभग शांत रहा।

गतिविधि– कुँवर सिंह के जीवन से आपको क्या सीख मिलती है ? बताएँ।

वहाबी आन्दोलन– मुसलमानों के सामाजिक और धार्मिक स्थिति में बदलाव के लिए अरब में अब्दुल वहाब के द्वारा यह आन्दोलन शुरू हुआ। उन्हीं के नाम पर इस आन्दोलन का नाम 'वहाबी आन्दोलन' पड़ा। भारत में यह बरेली के 'सैयद अहमद'

द्वारा शुरू किया गया और पटना इसका बड़ा केन्द्र था। यहाँ के एक परम्परागत धर्मनिष्ट और विद्वान मुस्लिम परिवार के संरक्षण में यह आन्दोलन काफी प्रभावी हुआ। इसके दो प्रमुख नेता विलायत अली और इनायत अली सहोदर भाई थे। यद्यपि यह धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलन था लेकिन आगे चल कर इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजी सरकार को भारत से समाप्त करना हो गया था। इसके लिए इन दोनों भाईयों ने सैनिक प्रयास भी किए थे। यह आंदोलन 1822 से 1868 तक सक्रिय रहा।



चित्र 8 – कुँवर सिंह



चित्र 9 – कुँवर सिंह का पैत्रिक दलान

कुँवर सिंह ने दानापुर सैनिक छावनी के सैनिकों के सहयोग से आरा शहर से अंग्रेजी नियंत्रण को समाप्त कर दिया एवं वहाँ कुछ दिनों के लिए अपनी सरकार भी चलाई। इनके विद्रोह का प्रभाव बिहार से सटे उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों पर भी रहा। उन्होंने वहाँ बनारस, जौनपुर, आजमगढ़, बलिया इत्यादि क्षेत्रों की यात्रा की एवं अंग्रेजी सरकार को समाप्त करने के लिए जमींदारों व किसानों को प्रेरित किया। अंग्रेजी सरकार ने उस वक्त उनकी गिरफ्तारी के लिए 25 हजार रुपये का इनाम घोषित किया था। अंग्रेजी सरकार से संघर्ष के क्रम में ही घायल होने के कई दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गई। उनके निधन के बाद उनके भाई अमर सिंह के द्वारा छापामार युद्ध शैली (छिपकर हमला करना) से अंग्रेजी सरकार को काफी

परेशान किया गया। अंततः वे भी गिरफ्तार कर लिये गए उनपर मुकदमा चलाया गया और इसी दौरान उनका निधन हो गया।

'आँखों देखा गदर' (झांसी में अंग्रेजों के अत्याचार का विवरण) 'माझा प्रवास' से

इधर चारो ओर के फाटकों से गोरे अंदर आने लगे और निर्जन करना शुरू किया। पाँच बरस से अस्सी बरस तक जो पुरुष दिखा उसे गोली या तलवार से मार दिया। शहर के एक भाग में आग लगा दी। उस समय शहर में ऐसा आत्रनाद फैला जिसका अंत न था। भय से आतुर लोग बुद्धिहीन से इधर–उधर भाग रहे थे। भागते–भागते ही बहुत से गोलियाँ खाकर मुर्दे हो गए। कोई इस गली में लपका तो कोई घर के तहखाने में भागा। कोई दाढ़ी–मूंछें साफ कर स्त्री वेश धारण करके बैठ गया। कोई खेतों में जा छिपा। इस तरह अपने प्राण बचाने के लिए जिसको जो सूझा उसने वही किया। गोरे लोग घरों में घुस कर लोगों को मारने एवं उनके धन को लूटने लगे। जो स्वेच्छा से अपना धन दे रहे थे उसे वे छोड़ देते थे।'

विद्रोही क्या चाहते थे – आप यह सोच रहे होंगे कि विद्रोह में शामिल राजाओं और जमींदारों को इस बगावत से क्या फायदा होने वाला था। हमने पहले देखा है कि वे सरकार से असंतुष्ट थे और इस विद्रोह के द्वारा अपना खोया हुआ शासन वापस चाहते थे। 25 अगस्त 1857 को विद्रोहियों द्वारा जारी किये गये एक घोषणा पत्र जिसे 'आजमगढ घोषणा पत्र' के नाम से जाना जाता है से हमें इस विद्रोहियों के उद्देश्यों को समझने में मदद मिलती है। इस घोषणा पत्र में जमींदारों को यह

यह अंश 'माझा प्रवास' नामक पुस्तक का है। इसके लेखक महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण विष्णु भट्ट गोडसे है। उस समय वे झाँसी के इलाके में लक्ष्मीबाई के साथ थे। उन्होंने उस समय का विवरण अपने घर पहुँचकर सुनाया। घर से वे मथुरा के एक यज्ञ में भाग लेने आए थे। उसी समय बगावत हो गई। उससे जुड़े कई विवरण उन्होंने इस किताब में दी है। यहाँ उसका एक छोटा अंश दिया गया है।

कहा गया कि उनकी जमीन छीनी नहीं जाएगी और अपने क्षेत्र में उनका राज पहले जैसा बना रहेगा। व्यापारियों को सभी वस्तुओं के व्यापार की आजादी होगी। सरकारी नौकरी वाले भारतीयों से कहा गया कि उन्हें शासन में ऊँचा पद दिया जाएगा और उनके साथ कोई भेद–भाव नहीं होगा। पंडितों एवं मौलवियों को धर्म की रक्षा करने के लिए साथ देने को कहा गया। बुनकरों एवं शिल्पकारों को भी सरकारी सहायता का भरोसा दिया गया।

इस घोषणा पत्र से यह पता चलता है कि जो वर्ग अंग्रेजी सरकार की नीतियों से सबसे अधिक प्रभावित था उन्हें बगावत की सफलता के बाद पहले की स्थिति में लाने का आश्वासन दिया गया था। विद्रोहियों ने बगावत के दौरान जिन थोड़े दिनों तक अलग–अलग जगहों पर शासन किया उसमें उन्होंने अंग्रेजों के पहले की मुगल कालीन व्यवस्था को ही अपनाया।

विद्रोह को दबा दिया गया – आप सोच रहे होंगे कि जब भारतीय विद्रोही अंग्रेजी राज को समाप्त करने पर तुले थे, अंग्रेजों को मारा–काटा जा रहा था, उनकी सम्पत्ति लूटी जा रही थी, तो अंग्रेज सरकार व सेना क्या कर रही थी। अपनी सरकार व अपने लोगों को बचाने के लिए उसने भी जरूर कुछ किया होगा। वे भारत से अपने शासन को ऐसे ही तो नहीं समाप्त होने देते। भारत पर अधिकार से अंग्रेजों को होने वाले लाभ के बारे में तो आप जान ही चुके हैं। उन्हें दोबारा अपनी सरकार को भारत में स्थापित करने में दो वर्ष लग गए। उन्होने इंगलैंड से और फौज मंगवाई। उन्होंने सबसे पहले दिल्ली को अपने अधिकार में लिया। मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर को उनके बेटों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। उनके बेटों को उनके सामने ही गोली मार दी गयी तथा बादशाह को रंगून भेज दिया गया जहां 1862 में उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद लखनऊ पर धावा बोल उसे अधिकार में लिया गया। बेगम हजरत महल गिरफ्तारी से बचने के लिए नेपाल चली गईं। उसके बाद कानपुर को भी अंग्रेजों ने जीत लिया। नाना साहब भी नेपाल चले गए। झाँसी की रानी युद्ध करती हुई शहीद हो गई। तात्या टोपे छुप कर आदिवासियों के सहयोग से अंग्रेजों के विरुद्ध छापामार युद्ध चलाते रहे लेकिन एक जमींदार के धोखे के कारण पकड़ लिए गए। उन्हें फांसी दे दी गईं। कुँवर सिंह और अमर सिंह के साथ क्या हुआ इसे आप पहले ही जान चुके

हैं। आरा और आस–पास के क्षेत्रों पर नियंत्रण कायम कर लिया गया और उनके खानदानी घर को ध्वस्त कर दिया गया। विद्रोहियों को जल्द सजा देने के लिए कानून बनाया गया जिसके अन्तर्गत उन्हें फाँसी के अलावा तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा देने जैसी सजा दी गई।

गतिविधि–सोचें, अंग्रेजों ने सबसे पहले दिल्ली पर ही अधिकार क्यों जमाया?

भारतीय विद्रोहियों के पास अंग्रेजों के एकजुट हमलों का कोई बचाव नहीं था। उनके पास उतना धन भी नहीं था। जमींदार जो नेतृत्व कर रहे थे वे तो पहले ही बर्बाद हो चुके थे वे कहाँ से मदद करते। अंग्रेज सैनिकों की अपेक्षा उनके पास हथियार भी कम और कमजोर थे। जो हथियार और गोला बारूद एवं कारतूस सैनिकों ने लूटे थे वे समाप्त हो चुके थे। उसे बनाने या प्राप्त करने का दोबारा साधन नहीं था। अतः भारतीय अब परंपरागत हथियारों (तलवार, भाला) से लड़ने लगे। आप सोच कर देखें, कहाँ बंदूक और कहाँ तलवार, बंदूक की जीत तो होनी ही थी। जैसे–जैसे लोगों ने अपने नेताओं की हार के बारे में जाना उन्होंने भी अपने को उनसे अलग कर लिया। भारतीय लोग अनायास ही इस विद्रोह का हिस्सा बन गए थे। उनके पास पहले से कोई योजना नहीं थी। जो भी हो रहा था बगावत के समय ही। दूसरी बात थी कि यह विद्रोह पूरे भारत में नहीं फैला। दक्षिणी और पश्चिमी भारत इससे अछूता रहा। इसके अतिरिक्त सभी भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों का विरोध भी नहीं किया। इन्हीं सब वजहों से भारत में अंग्रेज एक बार फिर से अपनी सत्ता को स्थापित कर पाने में कामयाब रहे।



चित्र 10 – गिरफ्तार बहादुर शाह एवं उनके बेटे

विद्रोह के बाद का वर्ष – विद्रोह के दमन के बाद भारत में अंग्रेजी शासन के ढांचे एवं स्वरूप में काफी परिवर्तन किया गया। 1858 में ब्रिटिश संसद ने कानून पास करते हुए भारत पर से ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को समाप्त कर सीधे ब्रिटेन की सरकार के शासन को स्थापित किया। भारत का प्रमुख प्रशासक ब्रिटिश सरकार के एक मंत्री को बनाया गया।

इसे भारत सचिव कहा गया। भारत के सभी शासकों को भरोसा दिया गया कि भविष्य में उनके राज्य को उनसे छीना नहीं जाएगा। सैनिक ढाँचे में बदलाव करते हुए यूरोपीय सैनिकों की संख्या बढ़ाई गई। उनका अनुपात अब 2:5 का हो गया यानि प्रत्येक पांच भारतीय सैनिकों पर दो गोरे सिपाहियों को लगाया गया। यह भी तय किया गया कि अवध, बिहार, मध्य भारत एवं दक्षिण भारत से सिपाहियों की भर्ती करने की जगह गोरखा, सिक्ख और पठान को ज्यादा संख्या में भर्ती किया जाय। इन तीन समूहों के सैनिकों ने विद्रोह को दबाने में कंपनी को काफी सहयोग दिया था। इसी वक्त उन्होंने यह भी तय किया कि भारतीयों के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में छेड़–छाड़ नहीं की जाएगी।

इस प्रकार बगावत के बाद भारतीय शासन के स्वरूप में जो बदलाव हुआ उसके परिणाम काफी दूरगामी सिद्ध हुए। भारत के राजनैतिक क्षेत्र में इसके बाद बदलाव की शुरुआत हुई इसके विषय में आप आगे के पाठों में पढ़ेंगे।

अभ्यास

आइए फिर से याद करें–

1. सही विकल्पों को चुनें।

(i) 1857 का विद्रोह कहाँ से आरंभ हुआ?

(क) मेरठ (ख) दिल्ली (ग) झांसी (घ) कानपुर

(ii) मंगल पाण्डे किस छावनी के युवा सिपाही थे।

(क) दानापुर (ख) लखनऊ (ग) मेरठ (घ) बैरकपुर

(iii) झांसी में विद्रोह का नेतृत्व किसने किया।

(क) कुँवर सिंह (ख) नाना साहब (ग) लक्ष्मीबाई (घ) बेगम हजरत महल

(iv) कुँवर सिंह कहाँ के जमींदार थे।

(क) आरा (ख) जगदीशपुर (ग) दरभंगा (घ) टिकारी

(v) वहाबी आन्दोलन का नेतृत्व बिहार में किसने किया था

(क) पीर अली (ख) विलायत अली (ग) अहमदुल्ला (घ) वजीबुल हक

2. निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ

(क) जगदीशपुर	(क) नाना साहब
(ख) कानपुर	(ख) कुँवर सिंह
(ग) दिल्ली	(ग) विष्णुभट् गोडसे
(घ) लखनऊ	(घ) बहादुर शाह जफर
(ङ) मांझा प्रवास	(ङ) बेगम हजरत महल

आइए विचार करें–

(i) जमींदार अंग्रेजी शासन का विरोध क्यों कर रहे थे?

(ii) सैनिकों में असंतोष के क्या कारण थे?

(iii) बहादुरशाह जफर के समर्थन से क्या प्रभाव पड़ा?

(iv) विद्रोह को दबाने में अंग्रेज क्यों सफल रहे?

(v) 1857 के विद्रोह में कुँवर सिंह का क्या योगदान रहा?

(vi) विद्रोहियों के उद्देश्यों को अपने शब्दों में व्यक्त करें?

(vii) विद्रोह के बाद अंग्रेजी शासन के स्वरूप में क्या बदलाव आया?

आइए करके देखें–

(i) विद्रोह के समय अगर आप होते तो अंग्रेजी शासन का विरोध किस तरह से करते–सहपाठियों से चर्चा करें।

(ii) 1857 के विद्रोह के महत्व पर शिक्षक के सहयोग से वर्ग में परिचर्चा करें।

अध्याय - 7

ब्रिटिश शासन एवं शिक्षा

पिछले कुछ अध्यायों में आप जान चुके हैं कि अंग्रेजी शासन के कारण भारतीय लोगों के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किस तरह के परिवर्तन आए। यहाँ आप जानेंगे कि अंग्रेजों द्वारा भारत में पहले से प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में क्या बदलाव किया गया। शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा जो भी बदलाव किए गए उसके पीछे कुछ कारण अवश्य रहें होंगे। शासन व्यवस्था द्वारा किए जाने वाले किसी काम के पीछे भी कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं, इस बात को आप वर्त्तमान सरकार के कार्यों से भी समझ सकते हैं। जैसे,आप जहाँ पढ़ते हैं वहाँ आपको 'मुफ्त किताब, स्कूल ड्रेस, और दोपहर का खाना, मिलता होगा। सरकार का यह काम आपको स्कूल से जोड़े रखने के लिए मुख्यतः किया गया है। ठीक इसी तरह अंग्रेजों द्वारा भारत में शिक्षा के क्षेत्र में जो भी नई बात लाई गई उसके कारण और उद्देश्यों को आप इस पाठ में जान पाएंगे।

अंग्रेज शिक्षा को किस तरह देखते थे– अंग्रेजों ने अपने शासन के पहले 60 वर्षों के दौरान शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी नया काम नहीं किया। भारत में जैसे लोग पढ़ते थे, जिस प्रकार के स्कूल और पाठ्यक्रम थे, उसे वैसे ही रहने दिया गया। यहाँ के लोगों को अपने देश के लोगों की तरह पढ़ाने का उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया। लेकिन 1781 में कलकत्ता में स्थापित 'मदरसा' और बनारस में स्थापित ''संस्कृत कॉलेज'' इसके अपवाद थे। इन दोनों संस्थाओं को हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित कानूनों और परम्पराओं को समझने के लिए स्थापित किया गया था। अंग्रेज उन परम्पराओं को इसलिए जानना चाहते थे ताकि भारत में शासन चलाना आसान हो जाए। इसका एक उद्देश्य यह भी था कि कंपनी द्वारा भारत में जो अदालतें बनाई गई थीं, जिसमें भारतीय लोगों से जुड़े मुकदमे सुने जाते थे, उनके लिए कुछ जानकार लोग उन्हें आसानी से मिल जाए। तब आप यह सोचेंगे कि फिर आखिर क्या हुआ

कि अंग्रेज भारतीय शिक्षा में परिवर्तन करने के लिए बाध्य हो गए।

असल में उस समय कई ऐसे अंग्रेज अधिकारी और कर्मचारी थे जो भारतीय साहित्य, धर्म दर्शन और संस्कृति को पूरी तरह जानना चाहते थे।

मदरसा–सीखने के स्थान को अरबी भाषा में मदरसा कहा जाता है। यह स्कूल, कॉलेज के समान संस्था हो सकती है जहाँ बच्चे पढ़ते हैं।

इसके पीछे उनकी इस क्षेत्र में रूचि महत्वपूर्ण थी, ना कि शासन का उद्देश्य। इन लोगों में विलियम जोन्स प्रमुख थे। इस तरह के लोग जब से भारत आए थे तभी से यहाँ प्रचलित भाषाओं को सीख रहे थे जिनमें फारसी और संस्कृत प्रमुख भाषा थी। वे जानते थे कि इन्ही दो भाषाओं में अधिकांश पुस्तकें लिखी गई हैं जिसमें भारत की संस्कृति सभ्यता और परम्परा की पूरी जानकारी है। फारसी और संस्कृत को सीख कर वे भारतीय पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद भी कर रहे थे। इसी क्रम में कालिदास रचित नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम्, हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थ 'गीता', मनुस्मृति, पंचतंत्र, हितोपदेश इत्यादि पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। जोन्स साहब ने अपने इस काम को व्यवस्थित करने के लिए कलकत्ता में 1784 में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल नामक संस्था को भी स्थापित किया। इस संस्था से समय–समय पर एक पत्रिका भी निकाली जाती थी जिसमें प्राचीन भारतीय परम्पराओं और अच्छाइयों की चर्चा होती थी।



चित्र 1 – विलियम जोन्स फारसी भाषा सीख रहे हैं



चित्र 2 – एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल

विलियम जोन्स भारत के प्रति आदर और सम्मान का भाव अपने मन में रखते थे। वे मानते थे कि प्राचीन काल में भारत अपने वैभव के शिखर पर था। अगर भारत की श्रेष्ठता को

जानना है तो उस समय लिखे जाने वाले महान् भारतीय ग्रंथों जैसे वेद, उपनिषद, स्मृति, धर्म–सूत्र (इनके विषय में आप कक्षा 6 में पढ़ चुके हैं) को पढ़ना जरुरी है। उनका मानना था कि अगर भारत में एक बेहतर अंग्रेजी शासन कायम करना है तो इन ग्रंथों को पढ़ना और समझना आवश्यक होगा। विलियम जोन्स के इस विचार ने उस समय बहुत सारे अंग्रेजों को जो भारत में कार्यरत थे भारतीय अतीत को जानने के लिए प्रेरित किया। भारत में जोन्स की तरह विचार रखने वाले अंग्रेजों की एक बड़ी संख्या हो गई जो भारतीय ज्ञान–विज्ञान को बढ़ावा देने की माँग अंग्रेजी सरकार से करने लगी। इसी तरह के विचार और प्रयासों ने अंग्रेजी सरकार पर शिक्षा के क्षेत्र में कुछ काम करने के लिए दबाव बनाया। इसी के तहत 1813 ई० में ब्रिटिश संसद में बनने वाले एक कानून को आप देख सकते हैं। इस कानून में यह कहा गया था कि अंग्रेजी सरकार प्रति वर्ष एक लाख रुपया भारत में शिक्षा क्षेत्र में खर्च करेगी। इस कानून के लिए एक महत्वपूर्ण कारक यह भी था कि "इस समय तक भारत में अंग्रेजी शासन का क्षेत्र काफी फैल चुका था। इस बड़े क्षेत्र पर शासन संचालन के लिए कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या की आवश्यकता थी। इतने लोग इंग्लैण्ड से नहीं आ सकते थे। सरकार को भारत में ही कर्मचारियों को तैयार करना था। अतः शासन के लायक काम के लिए उन्हें शिक्षित करना आवश्यक था। यह भारत में अभी तक प्रचलित शिक्षा से पूरा नहीं हो पाता। इस बात ने भी शिक्षा के क्षेत्र में कुछ नया करने को अंग्रेजी सरकार को बाध्य किया। भारत में प्रचलित शिक्षा क्यों अंग्रेजों के लिए शासन कार्य हेतु उपयोगी नहीं थी इसे आप इसी पाठ में आगे जानेंगे।

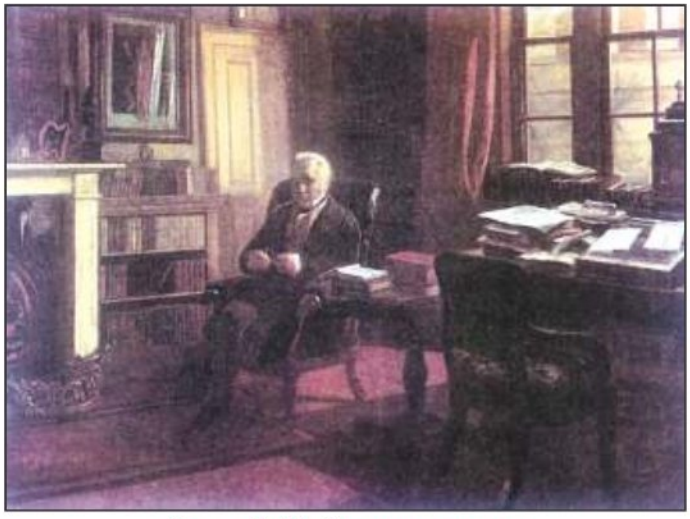
गतिविधि –1 जोन्स– प्राचीन भारतीय ग्रंथों को पढ़ना जरूरी क्यों समझते थे–सोचें

शिक्षा नीति संबंधी विवाद– शिक्षा के क्षेत्र में खर्च करने के लिए पैसा तो मिल गया लेकिन अब सवाल यह था कि उसे खर्च किस रूप में किया जाए। कुछ अंग्रेज विद्वानों का कहना था कि इस पैसे को भारतीय विद्या और ज्ञान के प्रसार में खर्च करना चाहिए। इन लोगों पर जोन्स महोदय का प्रभाव था। यह वर्ग कहता था कि भारतीयों को उनकी भाषा में

ही पढ़ाया जाय इससे कर्मचारियों की आपूर्ति भी हो जाएगी साथ ही भारत की परम्परा को भी जानने में सहायता मिलेगी। ये दोनों बात भारत में अंग्रेजी शासन को मजबूत और स्थायी बनाएँगी। इसके विपरीत अंग्रेजों का एक बड़ा वर्ग इस बात की आलोचना कर रहा था। इन लोगों का कहना था कि भारतीय शास्त्र अवैज्ञानिक और गलत सूचनाओं से भरे हुए हैं। इसलिए इतना पैसा इस पुरातन भारतीय शिक्षा पर खर्च करना मूर्खता है। इस मत के प्रमुख विचारक जेम्स मिल और मैकॉले थे। इन लोगों का मानना था कि भारतीयों को व्यवहारिक जीवन की शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें यह बताना आवश्यक है कि इंग्लैण्ड एवं अन्य यूरोपीय देश किस प्रकार वैज्ञानिक एवं तकनीकी सफलता हासिल कर सकें।

इस विवाद में एक खास बात यह उभर कर आयी कि उस समय के कुछ जागरूक भारतीयों जिनमें राजा राम मोहन राय प्रमुख थे, ने भी इंग्लैण्ड में प्रचलित शिक्षा का ही भारत में प्रसार करने की वकालत की। इन भारतीयों का भी मानना था कि भारत की प्रगति इसी शिक्षा के माध्यम से संभव है। राजा राम मोहन राय लगातार इस मत का प्रचार करते रहे। विवाद में मैकॉले ने अपना पक्ष अर्थात वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा का प्रसार, काफी मजबूती से रखा। इस शिक्षा के लिए भाषा के रूप में अंग्रेजी को प्रमुख बताया। वह कहते थे कि अंग्रेजी भाषा पढ़ने से भारतीयों को दुनिया की श्रेष्ठ जानकारी मिल पाएगी।

मैकॉले के मत को ही अंततः अंग्रेजी सरकार ने मान लिया। 1835 में इसी के आधार पर एक अधिनियम पारित किया गया। इसे ही आधुनिक शिक्षा अधिनियम के नाम से जाना गया। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि अंग्रेजी उच्च शिक्षा का माध्यम होगा तथा भारतीय भाषाओं और उनमें दी जाने



चित्र 3 – मैकॉले और उसका अध्ययन कक्ष

वाली शिक्षा को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा। स्कूल स्तर की शिक्षा के स्वरूप को पहले वाले रूप में ही छोड़ दिया गया, फिर भी स्कूली पाठ्यपुस्तकों की भी अंग्रेजी में छपाई होने लगी। इस तरह भारत में पहली बार लोगों के लिए एक नई शिक्षा व्यवस्था शुरू की गई।

गतिविधि– कल्पना करें, अंग्रेज भारतीय लोगों के मानस को अपने अनुसार क्यों ढालना चाहते थे।

व्यवसाय के लिए शिक्षा– इस शिक्षा नीति में 1854 में एक बड़ा बदलाव किया गया। अब यह तो तय हो ही चुका था कि इस क्षेत्र में सभी प्रयास आधुनिक शिक्षा के विकास के लिए होगा। 1854 में इसे ही और मजबूत एवं व्यवस्थित बनाया गया। इस वर्ष इंग्लैण्ड से अंग्रेज प्रशासकों द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी सरकार के नाम शिक्षा से संबंधित एक नीति संबंधी पत्र भेजा गया। इस नीति पत्र में (वुड्स डिस्पैच) भारत में लागू होने वाली संपूर्ण शिक्षा नीति की रूपरेखा थी। इसका एक बड़ा उद्देश्य था आधुनिक शिक्षा के माध्यम से भारतीय लोगों के मानस को बदलना ताकि उनकी जीवन शैली यूरोपिय हो जाए। आज भी शिक्षा को ही व्यक्ति के मानस को निर्मित करने वाला बड़ा आधार माना जाता है। शायद अंग्रेजों को ऐसा लगता होगा कि उनकी शैली को अगर भारतीय अपना ले तो यहाँ उनका शासन स्थायी बना रहेगा।

1854 की नीति का महत्त्व– इसी से भारत में आधुनिक शिक्षा के ढाँचे का निर्माण हुआ। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक के लिए एक नियम बनाया गया। शिक्षा संबंधी सभी मामलों पर सरकार का नियंत्रण हो गया। प्राथमिक शिक्षा की भाषा भारतीय रही जबकि उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बनाया गया। उच्च शिक्षा को नियमित करने के लिए विश्वविद्यालयों को स्थापित किया गया। 1857 में तीन विश्व–



चित्र 4 – कलकत्ता विश्वविद्यालय

विद्यालय बनाये गये, कलकत्ता, मुम्बई और मद्रास में। जिला स्तर पर हाई स्कूल सरकारी प्रयासों से शुरू हुए। निजी स्तर पर भी विद्यालयों की स्थापना और संचालन की अनुमति मिली। कुल मिलाकर आज जिस तरह की शिक्षा का स्वरुप देख रहे वह सभी इस नीति पत्र की ही देन हैं। जिस प्रकार के पाठ्यक्रम एवं पढ़ाई का तौर तरीका आज आप देख रहें है वह 1854 के बाद से ही अस्तित्व में आया है।

स्थानीय पाठशालाओं का क्या हुआ– क्या आपको कुछ अंदाजा है कि अंग्रेजों से पहले यहाँ बच्चों को किस तरह पढ़ाया जाता था? क्या आपने कभी सोचा है कि उस समय बच्चे स्कूल जाते भी थे या नहीं? और अगर स्कूल थे तो ब्रिटिश शासन के तहत उनका क्या हुआ?

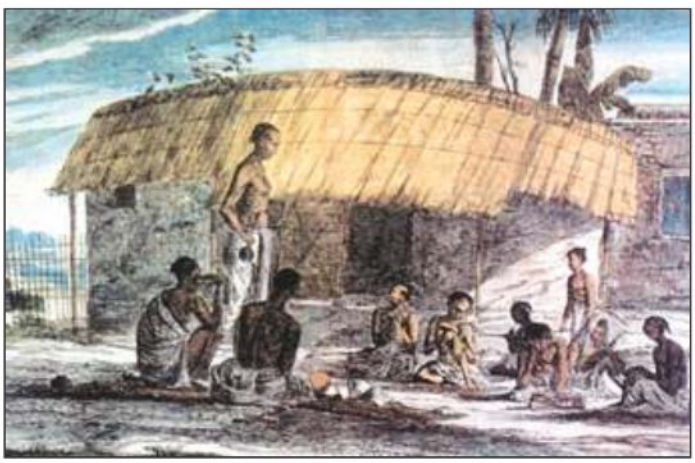
विलियम ऐडम की रिपोर्ट– 1830 के दशक में स्कॉटलैंड से आए ईसाई प्रचारक विलियिम ऐडम ने बंगाल और बिहार के जिलों का दौरा किया। कंपनी ने उन्हें देशी स्कूलों में शिक्षा की प्रगति पर रिपोर्ट तैयार करने का जिम्मा सौंपा था। ऐडम की रिपोर्ट दिलचस्प थी।

ऐडम ने पाया कि बंगाल और बिहार में एक लाख से ज़्यादा पाठशालाएँ थीं। ये बहुत छोटे–छोटे केन्द्र थे जिनमें आम तौर पर 20 से ज्यादा विद्यार्थी नहीं होते थे। फिर भी, इन पाठशालाओं में पढ़ने वाले बच्चों की कुल संख्या काफी बड़ी यानी बीस लाख से भी ज्यादा थी, ये पाठशालाएँ सम्पन्न लोगों या स्थानीय समुदाय द्वारा चलाई जा रही थीं। कई पाठशालाएँ स्वयं गुरु द्वारा ही प्रारंभ की गई थीं।

शिक्षा का तरीका काफी लचीला था। आज आप जिन चीजों की स्कूलों से उम्मीद करते हैं उनमें से कुछ चीजें उस समय की पाठशालाओं में भी मौजूद थीं। बच्चों की फीस निश्चित नहीं थी। छपी हुई किताबें नहीं होती थीं, पाठशाला की इमारत अलग से नहीं बनाई जाती थी, बेंच और कुर्सियाँ नहीं होती थीं, ब्लैक बोर्ड नहीं होते थे, अलग से कक्षाएँ लेने, बच्चों की हाजिरी लेने का कोई इंतजाम नहीं होता था, सालाना इम्तहान और नियमित समय सारणी जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। कुछ पाठशालाएँ बरगद की छाँव में ही चलती थीं तो कई गाँव की दूकान या मंदिर के कोने में या गुरु के घर पर ही बच्चों को पढ़ाया जाता था।

बच्चों की फीस उनके माँ–बाप की आमदनी से तय होती थी अमीरों को ज़्यादा और गरीबों को कम फीस देनी पड़ती थी। शिक्षा मौखिक होती थी और क्या पढ़ाना है यह बात विद्यार्थियों की जरूरतों को देखते हुए गुरु ही तय करते थे। विद्यार्थियों को अलग कक्षाओं में नहीं बिठाया जाता था। सभी एक जगह, एक साथ बैठते थे। अलग–अलग स्तर के विद्यार्थियों के साथ गुरु अलग से बात कर लेते थे।

ऐडम ने पाया कि यह लचीली प्रणाली स्थानीय आवश्यकाताओं के लिए काफी अनुकूल थी। उदाहरण के लिए फसलों की कटाई के समय कक्षाएँ बंद हो जाती थीं क्योंकि उस समय गाँव के बच्चे प्रायः खेतों में काम करने चले जाते थे। कटाई और अनाज तैयार हो जाने के बाद पाठशाला दोबारा शुरु हो जाती थी। इसका परिणाम यह था कि साधारण काश्तकारों के बच्चे भी पढ़ाई कर सकते थे।



चित्र 5 – ग्रामीण पाठशाला

नई दिनचर्या, नए नियम– उन्नीसवीं सदी के मध्य तक कंपनी का ध्यान मुख्य रूप से उच्च शिक्षा पर था। इसीलिए कंपनी ने स्थानीय पाठशालाओं के कामकाज में कभी ज्यादा दखल नहीं दिया। 1854 के बाद कंपनी ने देशी शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने का फैसला लिया। कंपनी का मानना था कि इसके लिए मौजूदा व्यवस्था के भीतर ही बदलाव किये जा सकते हैं। कंपनी एक नई दिनचर्या, नए नियमों और नियमित निरीक्षणों के जरिए पाठशालाओं को और व्यवस्थित करना चाहती थी।

इसके लिए क्या किया जा सकता था? कंपनी ने क्या कदम उठाए? सबसे पहले तो कंपनी ने बहुत सारे पंडितों को सरकारी नौकरी पर रख लिया। इनमें से प्रत्येक पंडित को 4–5 स्कूलों को देखरेख का जिम्मा सौंपा जाता था। पंडितों का काम पाठशालाओं का दौरा

करना और वहाँ अध्यापन की स्थितियों में सुधार लाना था। प्रत्येक गुरु को निर्देश दिया गया कि वे समय–समय पर अपने स्कूल के बारे में रिपोर्ट भेजें और कक्षाओं को नियमित समय–सारणी के अनुसार पढ़ाएँ। अब अध्ययन पाठ्यपुस्तकों पर आधारित होगा और विद्यार्थियों की प्रगति को मापने के लिए वार्षिक परीक्षाओं की रूपरेखा तैयार की जाने लगी। विद्यार्थियों से कहा गया कि वे नियमित रूप से शुल्क दे, नियमित रूप से कक्षा में आएं, तय सीट पर बैठें और अनुशासन का पालन करें।

नए नियमों पर चलने वाली पाठशालाओं को सरकारी अनुदान मिलने लगे। जो पाठशालाएँ नई व्यवस्था के भीतर काम करने को तैयार नहीं थीं उन्हें कोई सरकारी सहायता नहीं दी जाती थी। जिन गुरुओं ने सरकारी निर्देशों का पालन करने की बजाय अपनी स्वतंत्रता बनाए रखी वे सरकारी सहायता प्राप्त और नियमों से चलने वाली पाठशालाओं के सामने कमजोर पड़ने लगे।

इन नए नियमों और दिनचर्या का एक और भी नतीजा हुआ। पहले वाली व्यवस्था में गरीब किसानों के बच्चे भी पाठशालाओं में जा सकते थे क्योंकि पाठशालाओं की समय–सारणी काफी लचीली होती थी। नई व्यवस्था के अनुशासन की माँग थी कि बच्चे नियमित रूप से स्कूल आएँ। अब कटाई के मौसम में भी बच्चों का स्कूल में आना जरूरी था जबकि उस समय गरीब घरों के बच्चे खेतों में काम करने जाया करते थे। अगर कोई बच्चा स्कूल नहीं आ पाता था तो उसे अनुशासनहीन माना जाता था यानी बच्चा पढ़ना–लिखना ही नहीं चाहता था।

राष्ट्रीय शिक्षा की कार्यसूची– केवल अंग्रेज अफसर ही भारत में शिक्षा के बारे में नहीं सोच रहे थे। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से ही भारत के विभिन्न भागों के बहुत सारे विचारक शिक्षा के व्यापक प्रसार की जरूरत पर जोर देने लगे थे। यूरोप में आ रहे बदलावों से प्रभावित कुछ भारतीयों का मानना था कि पश्चिमी शिक्षा भारत का आधुनिकीकरण कर सकती थी। उन्होंने अंग्रेजों से आवाहन किया कि वे नए स्कूल कॉलेज और विश्वविद्यालय खोलें तथा शिक्षा पर ज़्यादा पैसा खर्च करें।

''अंग्रेजी शिक्षा ने हमें गुलाम बना दिया है''– महात्मा गांधी का कहना था कि औपनिवेशिक शिक्षा ने भारतीयों के मस्तिष्क में हीनता का बोध पैदा कर दिया है। इसके प्रभाव में आकर यहाँ के लोग पश्चिमी सभ्यता को श्रेष्ठतर मानने लगे और अपनी संस्कृति के प्रति उनका गौरव भाव नष्ट हो गया। महात्मा गांधी ने कहा कि इस शिक्षा में विष भरा है, यह पापपूर्ण है, इसने भारतीयों को दास बना दिया है, इसने लोगों पर दुष्प्रभाव डाला है। उनके मुताबिक, पश्चिम से अभिभूत, पश्चिम से आने वाली हर चीज की प्रशंसा करने वाले, इन संस्थानों में पढ़ने वाले भारतीय ब्रिटिश शासन को पसंद करने लगे थे। महात्मा गांधी एक ऐसी शिक्षा के पक्षधर थे जो भारतीयों के भीतर प्रतिष्ठा और स्वाभिमान का भाव पुनर्जीवित करे। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उन्होंने विद्यार्थियों से आवाह्न किया कि वे शिक्षा संस्थानों को छोड़ दें और अंग्रेजों को बताएँ कि अब वे गुलाम बने रहने के लिए तैयार नहीं हैं।

महात्मा गांधी की दृढ़ मान्यता थी कि शिक्षा केवल भारतीय भाषाओं में ही दी जानी चाहिए। उनके मुताबिक, अंग्रेजी में दी जा रही शिक्षा भारतीयों को अपाहिज बना देती है, उसने उन्हें अपने सामाजिक परिवेश से काट दिया है और उन्हें ''अपनी ही भूमि पर अजनबी'' बना दिया है। उनकी राय में, विदेशी भाषा बोलने वाले, स्थानीय संस्कृति से घृणा करने वाले अंग्रेजी शिक्षित भारतीय अपनी जनता से जुड़ने के तौर–तरीके भूल चुके थे।

महात्मा गांधी का कहना था कि पश्चिमी शिक्षा मौखिक ज्ञान की बजाय केवल पढ़ने और लिखने पर केंद्रित है । उसमें पाठ्यपुस्तकों पर तो जोर दिया जाता है लेकिन जीवन के अनुभवों और व्यावहारिक ज्ञान की उपेक्षा की जाती है। गांधी का तर्क था कि शिक्षा से व्यक्ति का मस्तिष्क और आत्मविकास होना चाहिए। उनकी राय में केवल साक्षरता–यानी पढ़ने और लिखने की क्षमता पा लेना– ही शिक्षा नहीं होती। इसके लिए तो लोगों को हाथ से काम करना पड़ता है, हुनर सीखने पड़ते हैं और यह जानना पड़ता है कि विभिन्न चीजें किस तरह काम करती हैं। इससे उनका मस्तिष्क और समझने की क्षमता, दोनों विकसित होंगे।

जैसे–जैसे राष्ट्रीय भावना का प्रसार हुआ कई दूसरे विचारक भी एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के बारे में सोचने लगे जो अंग्रेजों द्वारा स्थापित की गई व्यवस्था से भिन्न हो।

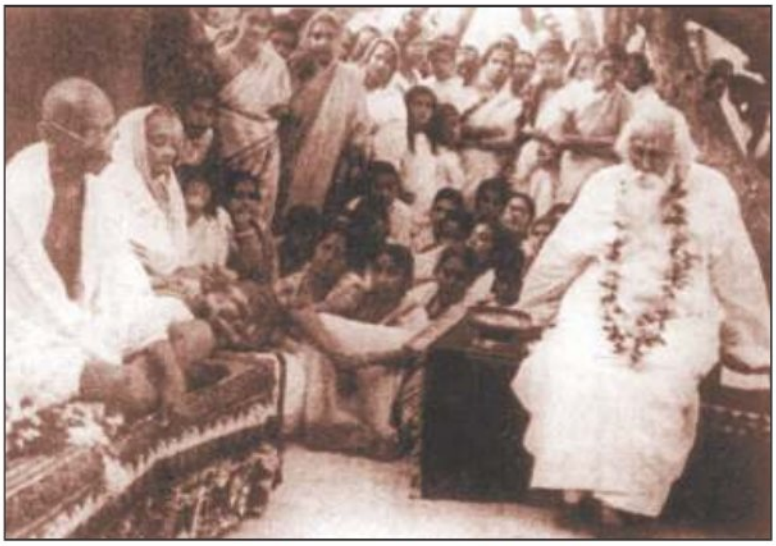
''साक्षरता ही शिक्षा नहीं है''

महात्मा गांधी ने लिखा था : शिक्षा से मेरा मतलब इस बात से है कि बालक और मनुष्य के देह, मस्तिष्क और भावना की श्रेष्ठता को सामने लाया जाए। साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न ही उसकी शुरुआत, यह तो केवल एक साधन है, जिसके जरिए पुरुषों और महिलाओं को शिक्षा दी जा सकती है। साक्षरता अपने आप में शिक्षा नहीं होती। लिहाजा, मैं बच्चों को शिक्षित करते हुए सबसे पहले उन्हें कोई उपयोगी हस्तकौशल सिखाऊँगा और उन्हें शुरू से ही कुछ रचने, पैदा करने के लिए तैयार करूँगा...। मेरा मानना है कि दिमाग और आत्मा का सर्वोच्च विकास इस तरह की शिक्षा में ही संभव है। प्रत्येक हस्तकौशल आज की तरह केवल यांत्रिक ढंग से ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक ढंग से पढ़ाया जाना चाहिए, यानी बच्चे को प्रत्येक प्रक्रिया के क्यों और किसलिए का पता होना चाहिए।

टैगोर का ''शांतिनिकेतन''– आप में से बहुत लोगों ने शांतिनिकेतन के बारे में सुना होगा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने यह संस्था 1901 में शुरू की थी। टैगोर जब बच्चे थे तो स्कूल जाने से बहुत चिढ़ते थे। वहाँ उनका दम घुटता था। उन्हें स्कूल का माहौल दमनकारी लगता था। टैगोर को ऐसे लगता था, मानो स्कूल कोई जेल हो, क्योंकि वहाँ बच्चे मनचाहा कभी नहीं कर पाते थे। जब दूसरे बच्चे शिक्षक को सुन रहे होते थे टैगोर का दिमाग कहीं और भटक रहा होता था। कलकत्ता के अपने स्कूल जीवन के अनुभवों ने शिक्षा के बारे में टैगोर के विचारों को काफी प्रभावित किया। जब वे बड़े हुए तो उन्होंने एक ऐसा स्कूल खोलने के बारे में सोचा जहाँ बच्चे खुश रह सकें, जहाँ वे मुक्त और रचनाशील हों, जहाँ वे अपने विचारों और आकांक्षाओं को समझ सकें। टैगोर को लगता था कि बचपन का समय अपने आप सीखने का समय होना चाहिए। वह अंग्रेजों द्वारा स्थापित की गई शिक्षा व्यवस्था के कड़े और बंधनकारी अनुशासन से उसे मुक्त करना चाहते थे। शिक्षक कल्पनाशील हों, बच्चों को समझते हों और उनके अंदर उत्सुकता, जानने की चाह विकसित करने में मदद दें। टैगोर के मुताबिक,

वर्त्तमान स्कूल बच्चे की रचनाशीलता, कल्पनाशील होने के उसके स्वाभाविक गुण को मार देते हैं।



चित्र 6 – महात्मा गांधी और कस्तूबा गांधी शांति निकेतन में रवीन्द्रनाथ टैगोर और लड़कियों की एक टोली के साथ बैठे हैं, 1940

टैगोर का मानना था कि सृजनात्मक शिक्षा को केवल प्राकृतिक परिवेश में ही प्रोत्साहित किया जा सकता है। इसलिए उन्होंने कलकत्ता से 100 किलोमीटर दूर एक ग्रामीण परिवेश में अपना स्कूल खोलने का फैसला लिया। उन्हें यह जगह निर्मल शांति से भरी (शांतिनिकेतन) दिखाई दी जहाँ प्रकृति के साथ जीते हुए बच्चे अपनी स्वाभाविक सृजनात्मक मेधा को और विकसित कर सकते थे।

बहुत सारे मामलों में टैगोर और महात्मा गांधी शिक्षा के बारे में कमोबेश एक जैसी राय रखते थे। लेकिन दोनों के बीच फर्क भी था। गांधीजी पश्चिमी सभ्यता और मशीनों व प्रौद्योगिकी की उपासना के कट्टर आलोचक थे। टैगोर आधुनिक पश्चिमी सभ्यता और भारतीय परंपरा के श्रेष्ठ तत्वों का सम्मिश्रण चाहते थे। उन्होंने शांतिनिकेतन में कला, संगीत और नृत्य के साथ–साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा पर भी जोर दिया।

इस प्रकार बहुत सारे लोग इस बारे में सोचने लगे थे कि एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की रूपरेखा क्या होनी चाहिए। कुछ लोग अंग्रेजों द्वारा स्थापित की गई व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे। उनका मानना था कि इस व्यवस्था को इस तरह फैलाया जाए कि उसमें ज्यादा से ज्यादा लोगों को पढ़ने के मौके मिले। इसके विपरीत बहुत सारे लोग ऐसे भी थे जो एक वैकल्पिक व्यवस्था चाहते थे ताकि लोगों को सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय संस्कृति की शिक्षा दी जा सके। कौन तय करे कि सच्चे अर्थों में राष्ट्रीयता क्या होता है? इस ''राष्ट्रीय शिक्षा'' की बहस स्वतंत्रता के बाद भी जारी रही।

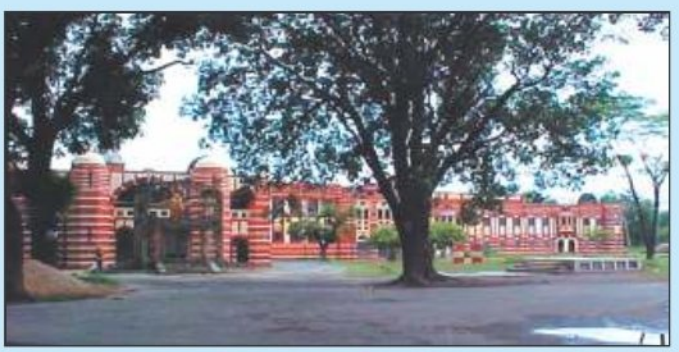
आधुनिक शिक्षा और बिहार– अभी तक इस पाठ में आपने जिन–जिन बातों को जाना, उसका सीधा प्रभाव बिहार पर भी हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा किए गए सारे प्रयास सबसे पहले बंगाल में हुए। बिहार 1911 तक बंगाल का ही एक हिस्सा था इसलिए वहाँ जो कुछ भी हो रहा था उससे बिहार अलग नहीं रहा। 1835 में शुरू हुई नई शिक्षा नीति के बाद से बिहार में भी आधुनिक शिक्षा का ढाँचा विकसित होने लगा। सरकारी और व्यक्तिगत प्रयासों से कई स्कूल शुरू हुए जहाँ आधुनिक शिक्षा लागू किया गया। सरकारी प्रयासों से सबसे पहले 1835 में ही पटना में पटना कॉलेजियट हाई स्कूल स्थापित किया गया। यह बिहार का प्रथम आधुनिक स्कूल था। इसी कड़ी में 1836 में आरा में हाई स्कूल खुला। 1837 में भागलपुर और 1839 में छपरा तथा 1845 में गया एवं मुजफ्फरपुर में हाई स्कूल सरकार के द्वारा स्थापित किये गये। अभी इन सबों को जिला स्कूल के नाम से जाना जाता है।

व्यक्तिगत प्रयासों के तहत बड़े जमींदारों एवं व्यापारियों द्वारा भी सरकारी अनुमति से आधुनिक स्कूल स्थापित किए गए, जैसे गया स्थित टिकारी में वहाँ के जमींदार द्वारा स्थापित टिकारी राज स्कूल या दरभंगा में वहाँ के राजा द्वारा स्थापित दरभंगा राज स्कूल तथा पटना में ही कुल्हड़िया के जमींदार द्वारा शुरू किया गया बिहार नेशनल हाई स्कूल, जो बाद में बिहार नेशनल कॉलेज बना, प्रमुख है। बंगाली समुदाय द्वारा भी बिहार में स्कूली शिक्षा को बढ़ावा देने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की गई। जिसमें 1867 में पटना स्थित बाँकीपुर बालिका विद्यालय (लड़कियों का प्रथम स्कूल) हो या 1868 में भागलपुर में स्थापित मोक्षदा बालिका विद्यालय या फिर 1884 में मुजफ्फरपुर में स्थापित मुखर्जी सेमिनरी प्रमुख है। मुस्लिम समुदाय के द्वारा भी सर सैय्यद के आंदोलन से प्रेरित पटना के मौलवी मोहम्मद हसन ने मोहम्मेडन ऐंग्लो अरेबिक स्कूल की 1884 में स्थापना की। इन सभी स्कूलों का आधुनिक शिक्षा के प्रसार में बड़ा योगदान रहा। कुछ स्कूल अंग्रेजों के व्यक्तिगत प्रयास से भी शुरू हुए जैसे 1880 में दरभंगा में नार्थब्रुक हाई स्कूल (आज का जिला स्कूल) और 1901 में समस्तीपुर का वाटसन हाई स्कूल इसी श्रेणी में आएगा।

जहाँ तक उच्च शिक्षा से जुड़ी संस्थाओं जैसे कॉलेज और विश्वविद्यालय की बात है तो यहाँ भी कुछ कॉलेज सरकारी प्रयास से खोले गए जैसे 1863 में पटना में स्थापित पटना कॉलेज पटना (बिहार का सबसे पुराना कॉलेज) तो 1878 में स्थापित तेजनारायण जुबली कॉलेज भागलपुर, 1889 में बिहार नेशनल कॉलेज पटना और 1898 में स्थापित डायमंड जुबली कॉलेज मुंगेर। जमींदारों और व्यापारियों के संरक्षण में स्थापित भूमिहार ब्राह्मण कॉलेज एक सामाजिक संगठन भूमिहार ब्राह्मण सभा द्वारा स्थापित किया गया।

ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा भी भारत के साथ–साथ बिहार के कई हिस्सों में स्कूल का स्थापित कर आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा दिया गया। ईसाईयों ने सबसे पहले बेतिया के क्षेत्र में अपना कार्य आरंभ किया उसके बाद पटना और दानापुर तथा अन्य क्षेत्रों में पहुँचे। उनके द्वारा स्थापित पटना स्थित संत जोसेफ कॉन्वेन्ट स्कूल 1853 एवं संत माइकल स्कूल 1854 आज भी बिहार के गिने चुने अच्छे स्कूलों में आते हैं। इन स्कूलों का आधुनिक शिक्षा के प्रसार में काफी बड़ा योगदान है।

लंगट सिंह कॉलेज – बिहार के पाँचवें एवं उत्तर बिहार के प्रथम कॉलेज के रूप में 1899 में स्थापित इस कॉलेज का बिहार में आधुनिक शिक्षा के प्रसार में काफी बड़ा योगदान है। कॉलेज की स्थापना इसी वर्ष में मुजफ्फरपुर शहर में आयोजित 'भूमिहार ब्राह्मण सम्मेलन' में पारित प्रस्तावों के बाद हुआ। कॉलेज की स्थापना से लेकर इसके विकास तक में लंगट सिंह की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही। उन्होंने अपने जीवन भर की कमाई इस कॉलेज को दान कर दी। कॉलेज को आर्थिक मदद देने में काशी तथा दरभंगा के राजा और स्थानीय जमींदार एवं व्यापारियों



चित्र 7 – लंगट सिंह कॉलेज

का योगदान भी महत्वपूर्ण था। स्थापना वर्ष में यह इंटर तक ही मान्य था। 1900 ई. में इसे बी.ए. तक मान्यता मिली। आरंभ में पाँच विषय गणित, संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी और फारसी की पढ़ाई शुरू हुई। शुरू के साल में पाँच शिक्षक और 72 छात्र ही थे। इस कॉलेज में कुछ दिनों तक डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी इतिहास विषय के अध्यापक के रूप में अपना योगदान दिया था। 1915 में इसे अंग्रेजी सरकार ने अपने अधिकार में लिया। 1950 ई. में लंगट सिंह के द्वारा कॉलेज को दिए गए योगदानों के कारण इसका नाम इन्हीं के नाम पर कर दिया गया।

इन तमाम शैक्षणिक प्रयासों के बावजूद 1835 से 1859 तक भारतीय लोगों द्वारा आधुनिक शिक्षा के प्रति उतना आकर्षण देखने को नहीं मिलता, खासकर बिहार में। फिर भी अंग्रेजों ने भारत में एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की नींव अवश्य डाली जिसने भारत को आधुनिक राष्ट्र के रूप में परिवर्तित करने में प्रभावी भूमिका अदा की। वर्तमान भारत के शैक्षणिक ढांचा की पृष्ठभूमि अंग्रेजों द्वारा स्थापित यह आधुनिक शिक्षा ही रही। इस शिक्षा से तत्कालीन भारतीय समाज में क्या बदलाव आया इसके विषय में आप आगे पढ़ेगें।

अभ्यास

आइये फिर से याद करें :

1. सही विकल्प को चुनें।

(i) विलियम जोंस भारतीय इतिहास, दर्शन और कानून का अध्ययन को क्यों जरूरी मानते थे।

(क) भारत में बेहतर अंग्रेजी शासन स्थापित करने के लिए।

(ख) प्राचीन भारतीय पुस्तकों के अनुवाद (अंग्रेजी में) के लिए।

(ग) अपने भारत प्रेम के कारण।

(घ) भारतीय ज्ञान–विज्ञान को बढ़ावा देने के लिए।

(ii) आधुनिक शिक्षा की भाषा किसको बनाया गया

(क) हिन्दी (ख) बांगला (ग) अंग्रेजी (घ) मराठी

(iii) एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना किसने किया।

(क) मैकाले (ख) विलियम जोंस (ग) कोलब्रुक (घ) वारेन हेस्टिंग्स

(iv) औपनिवेशिक शिक्षा ने भारतीयों के मस्तिष्क में हीनता का बोध पैदा कर दिया? गाँधी जी ऐसा क्यों मानते थे।

(क) भारतीयों द्वारा पश्चिमी सभ्यता को श्रेष्ठ मानने के कारण।

(ख) अंग्रेजी भाषा में शिक्षा के कारण।

(ग) पाठ्य पुस्तकों पर शिक्षा को केन्द्रित करने के कारण।

(घ) भारतीयों का अंग्रेजी शासन के समर्थन करने के कारण।

2. निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ

(क) विलियम जोंस ..... अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन।

(ख) रवीन्द्रनाथ टैगोर ..... प्राचीन संस्कृतियों का सम्मान।

(ग) टॉमस मेकॉले ..... गुरु।

(घ) महात्मा गाँधी ..... प्राकृतिक परिवेश में शिक्षा।

(ङ) पाठशालाएँ ..... अंग्रेजी शिक्षा के विरूद्ध।

आइए विचार करें :

(i) भारत के विषय में विलियम जोंस के विचार कैसे थे? संक्षेप में बताएँ

(ii) टॉमस मैकॉले भारत में किस प्रकार की शिक्षा शुरू करना चाहते थे, इस सम्बन्ध में उनके क्या विचार थे।

(iii) भारत में अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य क्या था? उसका स्वरूप कैसा था

(iv) शिक्षा के विषय में महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्र टैगोर के विचारों को बताएँ

(v) अंग्रेज विद्वानों के बीच शिक्षा नीति के विषय में किस प्रकार के विवाद थे। इस सम्बन्ध में आप क्या सोचते हैं बताएँ

आइए करके देखे :

(I) अपने घर या पड़ोस के बुजुर्गों से पता करें कि स्कूल में उन्होंने कौन–कौन सी चीजें पढ़ी थीं ? अभी आप उसमें क्या बदलाव देखते हैं।

(ii) अंग्रेजी शासन के दौरान बिहार में आधुनिक शिक्षा के विकास के लिए जो प्रयास किया गया उसके विषय में वर्ग में शिक्षक के सहयोग से परिचर्चा करें।

अध्याय - 8

जातीय व्यवस्था की चुनौतियाँ

आप जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज के बिना मनुष्य का जीवन संभव नहीं है। किन्तु समाज का विकास धीरे–धीरे होता है और इस क्रम में समाज के शक्तिशाली वर्ग ने अपनी सत्ता को बनाए रखने की हमेशा कोशिश की है। पूरी दुनिया में मानव समाज कई वर्गों में प्राचीन काल से ही बँटा रहा है, जिसमें एक शक्तिशाली और एक कमजोर वर्ग सदैव रहा है।

जाति सुधार हेतु तर्क

भारत में सामाजिक भेदभाव जाति व्यवस्था पर आधारित रहा है। इसे लेकर एक ओर एक विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग, जिसने समाज पर अपने प्रभुत्व की स्थापना की और श्रेष्ठ,एवं उच्च जाति के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की, तो दूसरी ओर एक शोषित और पीड़ित वर्ग अस्तित्व में आया । हमारे देश में भी इस प्रकार के सामाजिक भेदभाव के अनेक रूप सामने आये, जिसने कई प्रकार की सामाजिक कुरीतियों को जन्म दिया।

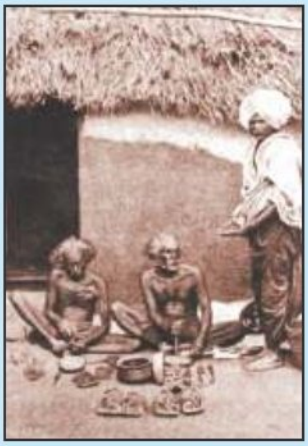
जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं प्राचीन काल में समाज में वर्ण व्यवस्था थी, जिसमें पेशे या काम के आधार पर चार वर्ण थे; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आगे चलकर इन विभाजनों ने जातियों का रूप धारण कर लिया। इनमें पुनः कई उपजातियाँ बन गईं। इनके बीच सम्बंधों में धीरे–धीरे संकीर्णता आई, ऊँच नीच का भेद–भाव बढ़ा, अन्तरजातीय शादी विवाह एवं सम्बंधों पर रोक लग गई। जाति का निर्धारण काम की जगह जन्म के आधार पर होने लगा। जाति प्रथा का सबसे कठोर रूप छुआ–छूत की भावना के रूप में प्रकट हुआ जिसमें निम्न जातियों को अपवित्र माना गया और उनका बहिष्कार किया गया।

आधुनिक काल में कई कारणों से, खास कर शिक्षा के विकास और पुराने विचारों को नए ढंग से परखने के कारण, जाति प्रथा, एंव इस पर आधारित भेद–भाव, शोषण और तिरस्कार

को दूर करने या उसमें सुधार लाने के उपाय आरंभ हुए।

उपेक्षित जन–समूहों पर प्रभुत्व के कुछ तीखे उदाहरण

बंगाल के चांडाल, बिहार के डोम, दक्षिण बिहार के भुइया, महाराष्ट्र के महार और उत्तर भारत के अनेक क्षेत्रों में चमार जातियों के साथ कठोर भेदभाव की नीति अपनाई गई। चमड़े का काम करने वाले लोगों को परम्परागत रूप से नीची नजर से देखा जाता था।



चित्र 1 – चमड़े के जुते बनाते लोग

उन्नीसवीं सदी में देश के अनेक भागों में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाले और नगरों में रहने वाले कुछ लोगों द्वारा इस व्यवस्था की कमजोरियों को सामने लाने और एक नई चेतना जगाने के उपाय किये गये। इसके तहत इस सदी में ऐसे कई सामाजिक आंदोलन हुए जिसका उद्देश्य समाज सुधार था। जाति प्रथा की आलोचना आरंभ हुई जो समाज में विभाजन और असमानता का कारण बनी हुई थी।

इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए भारतीय पढ़े–लिखे वर्गों ने प्रयास किया ताकि समाज के सभी वर्गों का उत्थान हो और उनके बीच बराबरी की भावना विकसित हो। इस कोशिश में कई समाज सुधारक शामिल थे। यह एक ओर विदेशी सरकार से आजाद होने की लड़ाई लड़ रहे थे तो दूसरी ओर समाज में अन्याय और अनुचित परम्पराओं का भी अंत चाहते थे।

चूँकि धर्म और समाज सुधार आंदोलन का उद्देश्य एक भेदभाव रहित समाज बनाने का था इसलिए जातीय भेदभाव को दूर करने को विशेष महत्व दिया गया। इन समाज सुधारकों में कई ऐसे लोग थे जो जातीय असमानता के भी विरोधी थे। इन सुधारकों और सुधार–संगठनों के सदस्यों में बहुत सारे ऊँची जातियों के लोग भी थे जो जातीय भेदभाव

और असमानता की समाप्ति चाहते थे। विभिन्न जातियों के बीच आपसी सामाजिक संबंधों को बेहतर बनाना चाहते थे। साथ ही वे पवित्रता और अपवित्रता के कड़े नियमों के आधार पर भेद–भाव और छुआ–छूत के विरोधी थे। जाति व्यवस्था में ब्राह्मण जाति सबसे ऊपर थी जिसे कई अधिकार एवं सुविधाएँ प्राप्त थीं। इस तरह यह समाज पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल थे।

ब्राह्मण – समाज का वह वर्ग जिसने अपनी शिक्षा, ज्ञान एवं धार्मिक क्रियाकलापों के आधार पर समाज पर एकाधिकार स्थापित कर दूसरी जातियों पर अपना प्रभाव कायम किया।

क्षत्रियों और वैश्यों के बीच जाति प्रथा इतनी कठोर और संकीर्ण नहीं थी, लेकिन ब्राह्मणों के जो विशेषाधिकार थे उससे यह वंचित रहे। क्षत्रिय वर्ग शासक वर्ग होने के नाते समाज में एक प्रभावशाली वर्ग के रूप में उभरा, जबकि वैश्य वर्ग ने आर्थिक संपन्नता के कारण स्वयं को आगे बढ़ाया।

अंत्यज–समाज का वह वर्ग जिसे सभ्य समाज की परिधि से बाहर रखा जाता था।

औपनिवेशिक काल में ब्राह्मणों ने नई अंग्रेजी शिक्षा को अपनाया इसलिए प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों पर उन्होंने अपने को स्थापित किया। नीचे दर्जे के सरकारी कर्मचारी, वकील, चिंतक, साहित्यकार आदि भी इसी समूह से थे। इस प्रकार के माहौल ने गैर ब्राह्मण जातियों की स्थिति को प्रभावित किया, उनकी सामाजिक दशा में गिरावट आई और उनमें असुरक्षा और हीनता की भावना बढ़ी।

समाज में एक छोर पर ब्राह्मण थे तो दूसरे छोर पर अछूत। अधिकांश पीड़ित और दलित समूह का संबंध समाज की निचली श्रेणियों से था और वह जटिल एवं कठोर स्थिति में जीने के लिए बाध्य थे। इसलिए वे सामाजिक व्यवस्था में मौजूद अन्याय के खिलाफ थे।

दूसरी ओर उन्नीसवीं सदी के दूसरे हिस्से तक 'निम्न' जातियों के अंदर से भी जातीय भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई गई एवं उनके द्वारा सामाजिक समानता और न्याय की मांग के लिए आंदोलन शुरू कर दिये गए। इस नई चेतना को गैर ब्राह्मण जाति समूहों ने

प्रस्तुत किया जो विशेष रूप से अपनी दयनीय दशा में सुधार लाना चाहते थे। भारत के अनेक भागों में यह जातियाँ बहुत सारी असुविधाओं से मुक्ति के लिए आवाज उठाने लगी थीं। इस प्रक्रिया में निचली जाति के आंदोलनों में उनकी जातीय पहचान एकता का आधार बन गई। इन आंदोलनों के नेताओं में प्रारंभिक नाम महात्मा ज्योतिराव फूले का आता है।

महात्मा ज्योतिराव फूले (1824–1890)

ज्योतिराव फूले जाति व्यवस्था को मनुष्यों की समानता के खिलाफ मानते थे। उन्होंने जाति व्यवस्था को पूरी तरह से नकारा। अछूत वर्ग के खिलाफ अमानवीय व्यवहार और उन्हें सामान्य मानव अधिकार से वंचित रखने की स्थिति ने फूले को जाति प्रथा का प्रबल विरोधी बना दिया।

अपने विचारों के प्रसार के लिए फूले ने पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन तथा भाषण और लेखन का माध्यम अपनाया। उन्होंने मराठी भाषा का प्रयोग किया ताकि आम लोगों की भाषा के द्वारा उनके विचार को जन साधारण तक आसानी से पहुँचाया जा सके। उन्होंने आर्य वैदिक परंपरा का विरोध करने के लिए ''दीनबंधु'' नामक मराठी पत्रिका निकाली। 1873 में 'गुलामी' नाम से निकाली गई अपनी पुस्तक में 'फूले ने शूद्रों की दासता के कारणों की व्याख्या की और इसकी तुलना अमरीकी नीग्रो (काले गुलामों) से की। इस तरह उन्होंने भारत की निम्न जातियों और अमरीका के काले गुलामों की दुर्दशा को एक दूसरे से जोड़ दिया। फूले ने जाति प्रथा की आलोचना को सभी प्रकार की असमानता से जोड़ा। असमानता के खिलाफ लोगों को जगाना ही उनके संघर्ष का मूल उद्देश्य था।


चित्र 2 – ज्योतिराव फूले

जातिगत असमानताओं और शूद्र जातियों की सामाजिक अधीनता तथा आर्थिक पिछड़ेपन के बीच संबंध के बारे में भी ज्योतिराव फूले ने चेतना जगाई। उच्च जातियों ने किस तरह किसानों का शोषण किया उसका विश्लेषण उन्होंने विस्तार

से किया। किसान लगान के बोझ और महाजनों के अत्याचार से परेशान थे। इसके विरोध में महात्मा फूले उन्हें समाज में सम्मान दिलाना चाहते थे।

''गुलामी''–फूले ने यह पुस्तक उन सभी अमरीकियों को समर्पित की जिन्होंने गुलामों को मुक्ति दिलाने के लिए संघर्ष किया था। इस पुस्तक के छपने के लगभग दस वर्ष पहले अमरीकी गृह युद्ध हुआ था जिसके फलस्वरूप अमरीका में दास प्रथा खत्म हो गई थी।

फूले ने अत्याचार और उत्पीड़न से संघर्ष करने के लिए कई प्रयास किये। उन्होंने ब्राह्मणों के उस दावे को नकारा कि आर्य होने के कारण वह औरों से श्रेष्ठ हैं। फूले का तर्क था कि आर्य विदेशी हैं और वे यहाँ के मूल निवासियों को हरा कर उन्हें निम्न मानने लगे थे। फूले के अनुसार यह धरती यहाँ के देशी लोगों की, कथित निम्न जाति के लोगों, की है। अतः उन्होंने सुझाव दिया कि शूद्रों (श्रमिक जातियाँ) और अतिशूद्रों (अछूतों) को जातीय भेदभाव खत्म करने के लिए संगठित होना चाहिए। इस तरह फूले द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज नामक संगठन ने जातीय समानता के समर्थन में मुहिम चलाई। फूले ने गैर ब्राह्मणों का मनोबल बढ़ाया। उन्होंने धार्मिक विचारधारा और जाति प्रथा को पूरी तरह से नकार दिया। उन्होंने महाराष्ट्र की सभी निम्न जातियों के लिए एक सामूहिक पहचान बनायी।

फूले ने उच्च जाति के नेताओं के उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद की भी कड़ी आलोचना अपनी एक रचना 'काश्तकार की चाबुक'' में की। राजनीति में किसान को एक वर्ग की तरह प्रवेश कराने वाले वह पहले व्यक्ति थे।

वीरशेलिंगम – 1848–1919

दक्षिण भारत में भी सामाजिक भेदभाव को लेकर वंचित वर्ग द्वारा कई आंदोलन चलाये गये, जिससे सामाजिक असमानता की स्थिति समाप्त हो सके। ऐसे आंदोलन में वीरशेलिंगम की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही। इनका पूरा नाम कुंडुकरि वीरशेलिंगम था। कलकत्ता तथा बंबई जैसे बड़े शहरों में चलाये गये सुधार आंदोलन में जिन समकालीन उच्च कुल के व्यक्तियों की भूमिका रही, उससे भिन्न परिस्थिति में वीरशेलिंगम का जन्म एक निर्धन परिवार

में हुआ था। अपने जीवन के अधिकांश समय में उन्होंने स्कूल शिक्षक के पद पर काम किया। उन्होंने तेलुगू भाषा में अनेक लेख लिखे जिसके लिए उन्हें आधुनिक तेलुगू गद्य साहित्य का जनक कहा जाता है। दक्षिण भारत में भी महिलाओं की स्थिति चिंताजनक थी। अतः इनके द्वारा महिला उत्थान के प्रति जागरूकता पैदा की गई। विधवा पुनर्विवाह, नारी शिक्षा, महिला मुक्ति जैसी सामाजिक बुराइयों के जैसे विषयों के प्रति उनके उत्साह ने उन्हें आंध्र के समाज सुधारकों की अगली पीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्रोत बना दिया।

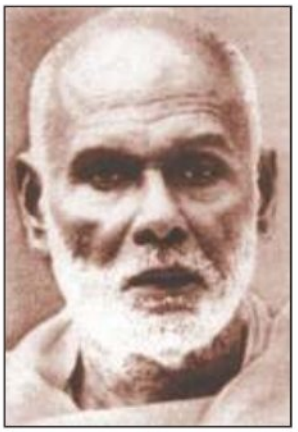
उस समय के मद्रास प्रेसिडेंसी क्षेत्र में समाज सुधार के प्रयासों की लहर को अनेक प्रकार के जाति संगठनों एवं जातीय आंदोलनों ने एक विशिष्ट स्वरूप दे दिया। सदी के समाप्त होने तक अनेक जातीय संगठन सुधार आंदोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे। उनके द्वारा चलाये गये आंदोलन का प्रभाव तमिलनाडु की गुंडर जाति के संगठन, कोंगु बेल्लला संगम, मैसूर के वोकालिंगा तथा लिंगायत संगठनों, केरल के इरावा जाति के एस.एन.डी.पी. योगम आदि पर पड़ा (जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे)। जातीय आंदोलनों के नेताओं ने जाति विशेष के सदस्यों की सामान्य विरासत पर बल दिया और सामाजिक तौर तरीकों में बदलाव लाने का प्रयास किया।

वीरशेलिंगम द्वारा चलाया गया आंदोलन एक प्रेरणा स्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है जिसने दक्षिण भारत में ऐसे दूसरे महत्वपूर्ण संगठनों एवं आंदोलनों को आगे बढ़ाने में सहायता की। इस परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी कि जातीय संगठनों ने धीरे–धीरे राजनीतिक शक्तियों का रूप ले लिया। इसका परिणाम बीसवीं सदी में चलाये गये आंदोलनों में देखा जाता है।

नारायण गुरु : 1855 – 1928

जैसा कि पहले चर्चा की गई, उन्नीसवीं सदी के मध्य तक निम्न जातियों के भीतर से भी जातीय भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई गई। इस वर्ग ने भी आंदोलन के द्वारा सामाजिक समानता और न्याय की मांग की। केरल मे ऐझावा निम्न जाति में जन्में नानू आसन (जो बाद में श्री नारायण गुरु के नाम से जाने गये), एक धार्मिक गुरु के रूप में उभरे। इन्होंने अपने

लोगों के बीच एकता का आदर्श रखा। उन्होंने प्रेरणा दी कि उनके पंथ में जाति का भेदभाव नहीं होना चाहिए और सभी को एक गुरु में विश्वास रखना चाहिए। इनके द्वारा श्री नारायण धर्म परिपालन योगम की स्थापना 1902 में की गई। इस संगठन के समक्ष दो उद्देश्य थे, एक छुआ–छूत का विरोध करना और दूसरा, पूजा, विवाह, और मृतक के अंतिम संस्कार की विधि को सरल बनाना।



चित्र 3 – श्री नारायण गुरु

चूँकि इन पंथों की स्थापना उन लोगों ने की जो स्वयं 'निम्न' जातियों से थे और उनके बीच ही काम करते थे अतः उन्होंने 'निम्न' जातियों के बीच प्रचलित आदतों और तौर–तरीकों को बदलने का प्रयास किया और उच्च वर्ण के तौर–तरीकों को अपनाने पर बल दिया, ताकि निम्न जातियों में स्वाभिमान पैदा किया जा सके। इस संगठन के द्वारा दक्षिण भारत में मंदिर में प्रवेश अधिकार के लिए आंदोलन प्रारंभ हुआ। बाद में 1920 के दशक में यह संगठन माधवन के नेतृत्व में गाँधीवादी राष्ट्रवाद से प्रभावित हुआ। केरल में बसे दलित भी इस संगठन से प्रभावित हुए एवं अपने उद्धार के उपाय के लिए स्वयं आगे बढ़े। इस प्रकार दक्षिण भारत के समाज सुधार आंदोलन ने समाज के दबे वर्ग को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने का सफल प्रयास किया।

इन्हें भी जानें

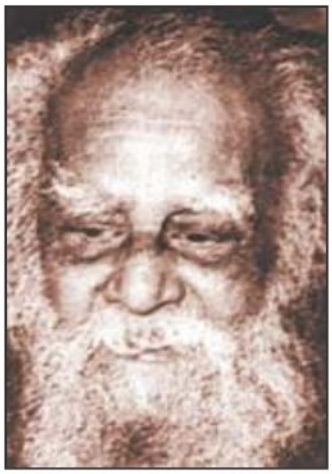
मद्रास बोर्ड ऑफ रेवेन्यू 1818 द्वारा दिये गये सर्वेक्षण की रिपोर्ट से जानकारी प्राप्त होती है कि निचली जातियों के समूहों से आए खेतिहर मजदूर लगभग गुलामी की स्थिति में ठेल दिये गये थे।

ई.वी. रामास्वामी नायकर (पेरियार) (1879–1973) और आत्मसम्मान आंदोलन

बीसवीं सदी के आरंभ में गैर ब्राह्मण आंदोलन आगे बढ़ा। यह प्रयास उन गैर ब्राह्मण जातियों का था जिन्हें शिक्षा, धन और प्रभाव हासिल हो चुका था। सामाजिक न्याय की मांग करते हुए इनके द्वारा सत्ता पर ब्राह्मणों के दावे को चुनौती दी गई एवं गैर ब्राह्मण समूहों के लिए सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान के उपाय किये गये।

ई.वी. रामास्वामी नायकर (पेरियार) ने जाति व्यवस्था की आलोचना की। उन्होंने मानव

जाति की मौलिक समानता और गरिमा पर बल दिया। पेरियार जो स्वयं एक सन्यासी थे, हिन्दु वेद पुराणों के कट्टर आलोचक थे। वह विशेषकर भगवद्गीता, रामायण और मनु द्वारा रचित संहिता के विरोधी थे उनका मानना था कि ब्राह्मणों ने निचली जातियों पर अपनी सत्ता तथा महिलाओं पर पुरुषों का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए इन पुस्तकों का सहारा लिया है।



चित्र 4 – पेरियार

1924 की एक छोटी घटना और उनके व्यक्गित अनुभव ने उन्हें कांग्रेस दल से अलग कर दिया, यद्यपि असहयोग आंदोलन में उन्होंने सक्रिय हिस्सा लिया था। जब कांग्रेस द्वारा आयोजित एक भोज में निम्न जाति के लोगों को अलग बैठाया गया तब पेरियार ने फैसला किया कि अछूतों को अपने स्वाभिमान के लिए स्वयं लड़ना होगा। इसी बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने 1925 में स्वाभिमान आंदोलन शुरू किया ताकि गैर ब्राह्मण जाति को जागरूक बनाया जा सके। पेरियार ने गैर ब्राह्मण समूहों के उत्थान के लिए अतिसुधारवादी विचारधारा अपनाई जिसे लेकर कई विवाद भी हुए। फिर भी उनके आंदोलन का सामाजिक आधार गाँव के जमींदारों तथा नगर के व्यवसायिक समूहों तक सीमित था, इसलिए अछूतों को संघटित करने में असफल रहे।

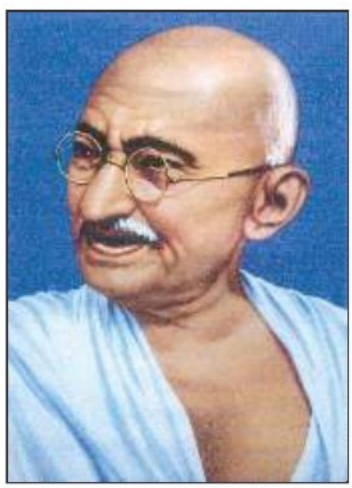
मई 1933 में कुडी अरसु नामक अपने आलेख में पेरियार ने लिखा कि 'आत्मसम्मान, आदोलन का सही मार्ग है। पूँजीपतियों और धर्म की क्रूरताओं को खत्म करना ही अपनी समस्याओं को सुलझाने का एक मात्र रास्ता है।

पेरियार के विचार इतने लोकप्रिय हुए कि तमिलनाडु के लगभग समस्त क्षेत्र में इनके नेतृत्व को स्वीकार किया गया। 1937 में जस्टिस पार्टी का नेतृत्व इन्हें सौंपा गया जो बाद में द्रविड़ कषगम् के नाम से जानी गयी। परंतु पेरियार का मनियामाई से विवाह ने एक विवाद को जन्म दिया और इनके विरोधी अन्नादुरई के द्वारा द्रविड़ मुनेत्र कषगम् ने 1949 में स्वयं को अलग कर लिया अब यह संगठन केवल एक सामाजिक सुधार चिंतन का केन्द्र नहीं रहा बल्कि इसने राजनीति में भी प्रवेश किया और इसकी लोकप्रियता आज भी तमिलनाडू के क्षेत्र

में बनी हुई है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी ने भारत में आगमन के साथ जिस प्रकार से निम्न जातियों के बीच में जागरूकता उत्पन्न की, उसे एक युगान्तकारी घटना के रूप में देखा जाता है। उनके द्वारा गैर बराबरी के विरोध में आंदोलन को विशेष बढ़ावा दिया गया। 1919 में पहला अखिल भारतीय 'डिप्रेस्ड क्लास' सम्मेलन हुआ जिसमें कांग्रेस के द्वारा गाँधीजी के सुझाव पर छुआ–छूत के विरुद्ध घोषणा पत्र जारी किया गया। अछूतों और दलितों को उन्होंने ''हरिजन'' का नाम दिया। इनका उत्थान गाँधी जी का प्रमुख उद्देश्य था। उनके उद्धार के लिए गाँधी के द्वारा अनेक रचनात्मक कार्यक्रम चलाये गये। इन प्रयासों से छुआछुत की प्रथा कमजोर पड़ी। 1932 में गाँधीजी ने हरिजन सेवक संघ स्थापित किया जो उन्हें चिकित्सा और तकनीक संबंधी जानकारी एवं सुविधा पहुँचा सके। 1933 में 'हरिजन' नामक साप्ताहिक पत्रिका निकाली, जिसमें कई संवेदनशील विषय जैसे, हरिजनों का मंदिर में प्रवेश, जलाशयों को हरिजन के लिए उपलब्ध करवाना, शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश आदि का समर्थन किया गया। गाँधीजी के यह रचनात्मक कदम मानवीय भावनाओं से प्रेरित थे और इनसे राष्ट्रीय आंदोलन को नई शक्ति मिली। गाँधीजी ने जाति प्रथा में सुधार के प्रयासों के साथ छुआ–छूत के विरोध, महिलाओं की स्थिति में सुधार और हिंदू–मुस्लिम एकता को बढ़ाने के महत्वपूर्ण उपाय किये।



चित्र 5 – महात्मा गाँधी

जब द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के बाद दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था हुई तब गाँधी जी अछूतों को हिन्दुओं से अलग मानने की सरकारी नीति से अत्यंत दुखी हुए और इसे समाप्त करने की मांग रखी। उन्होंने इसके विरुद्ध आमरण अनशन किया जिसके फलस्वरूप 26 सितम्बर 1932 को भीमराव अम्बेदकर के साथ 'पुणा समझौता' हुआ और गाँधीजी हरिजनों के उद्धार में लगे रहे। गाँधीजी जाति प्रथा के

प्रबल आलोचक रहे। गाँधीजी भारत को केवल औपनिवेशिक शासन से मुक्त कराना नहीं चाहते थे बल्कि भारतवर्ष में जिस प्रकार की सामाजिक गिरावट आई थी, उसे दूर करने में उन्होंने असाधारण इच्छाशक्ति भी दिखाई। उनका मानना था कि भारत सही अर्थों में तब स्वतंत्र होगा जब वह अपनी आंतरिक कमजोरियों पर काबू प्राप्त कर पायेगा।

बाबा भीमराव अम्बेदकर

बाबा भीमराव अम्बेदकर ने जातीय भेदभाव और पूर्वाग्रह को बहुत निकट से महसूस किया था। इनके जीवन का उद्देश्य दलित उत्थान की भावना से प्रेरित था। वह दलित समाज को समानता का पूर्ण अधिकार प्रदान करना चाहते थे ना कि केवल कुछ छूट या किसी प्रकार की सुविधा। भारतीय जातिगत समाज में दलितवर्ग को सम्मानपूर्ण स्थान दिलाना, अम्बेदकर के लिए अधिक महत्वपूर्ण था। सामंती दासता के वह प्रबल विरोधी थे। अतः उन्होंने दलितों को शिक्षित होने का आह्वान दिया एवं दलितों के वैधानिक और राजनैतिक अधिकारों की मांग रखी। उनके द्वारा मैला ढोने की अमानवीय परंपरा की कड़ी निंदा की गई।

अम्बेदकर के द्वारा 1920 के दशक में एक प्रमुख आंदोलन प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन को संगठित रूप देने के लिए 1924 में बहिष्कृत हितकारी सभा का गठन हुआ। 1927 में महादलित सत्याग्रह आरंभ किया गया ताकि अछूतों के प्रति अपनाई गई भेदभाव की नीति को समाप्त किया जा सके।

1930–31 के गोलमेज सम्मेलन के पूर्व अम्बेदकर दलित वर्ग के प्रमुख नेता के रूप में उभर चुके थे। इन्होंने दलितों के लिए एक अलगाववादी धारणा रखी जिसके आधार पर दलितों के लिए अल्पसंख्यकों की तरह पृथक निर्वाचन की मांग रखी गई। लेकिन गाँधी जी ने इसका विरोध किया और उनके सत्याग्रह के कारण 'पुणा समझौता' लागू हुआ। 1942 में अम्बेदकर के द्वारा अनुसूचित जाति संघ की स्थापना की गयी।

अम्बेदकर ने हिन्दु धर्म में भेद–भाव का विरोध किया और बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुए। 1950 में अम्बेदकर ने बौद्ध धर्म अपनाया और कालांतर में इनके अनेक समर्थकों के द्वारा

धर्म–परिवर्तन किया गया। अम्बेदकर गाँधीवादी दलित विचारधारा से असंतुष्ट रहे और उसे कमजोर मानते रहे चूँकि वह दलितों के उत्थान के माध्यम को एक अलग रूप में देखते थे।


चित्र 6 – बाबा साहब भीमराव अम्बेदकर

आज भारत में जिस दर्शन को लोकप्रियता मिली है वह समता, भाईचारा और आजादी पर आधारित है। मनुष्य के सम्मान पर केन्द्रित सोच वाले इस दर्शन की एक प्राथमिकता है मनुष्य का कल्याण। सामाजिक भेदभाव से उपजे सामाजिक पिछड़ेपन और शोषण को दूर करने के उपाय इन विभिन्न दार्शनिकों एवं सुधारकों के द्वारा हुए। इन सभी ने जातिगत व्यवस्था को दूर करने के उपाय अलग तरीकों से अपनाए, पर यह आंदोलन सीमित रहे चूँकि इनका सामाजिक आधार सीमित रहा।

आज हमारे समाज में जिस संरचनात्मक परिवर्तन की आवश्यकता है, उसकी पृष्ठभूमि इन आंदोलनों ने तैयार की ताकि जाति विरोधी संघर्ष को आगे बढ़ाया जा सके। जिससे एक सुदृढ़ शोषण रहित मानवतावादी समाज की स्थापना संभव हो।

इन्हें भी जाने

1924 में अंबेदकर ने बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना करके दलित मुक्ति आंदोलन का बिगुल बजाया था। अम्बेदकर के द्वारा जाति उन्मूलन के उपाय किये गये। उन्होंने मनु स्मृति को नकारा चूँकि वह विभेदकारी दर्शन पर आधारित थी और जिसके द्वारा समाज को एक श्रेणीगत व्यवस्था में बाँट दिया गया था।

अभ्यास

आइये फिर से याद करें–

1. सही विकल्प को चुनें।

(i) फूले के द्वारा किस संगठन की स्थापना हुई?

(क) ब्राह्मण समाज (ख) आर्य समाज

(ग) सत्य शोधक समाज (घ) प्रार्थना समाज

(ii) गैर बाराबरी विरोधी आंदोलन को केरल में किसके द्वारा प्रारंभ किया गया?

(क) वीरशेलिंगम (ख) नारायण गुरू

(ग) पेरियार (घ) ज्योतिराव फूले

(iii) पेरियार के द्वारा कौन सा आंदोलन प्रारंभ किया गया?

(क) आत्म सम्मान आंदोलन (ख) जाति सुधार आंदोलन

(ग) छुआछूत विरोधी आंदोलन (घ) धार्मिक समानता आंदोलन

(iv) हरिजन सेवा संघ महात्मा गांधी के द्वारा किस वर्ष गठित किया गया?

(क) 1932 (ख) 1933 (ग) 1934 (घ) 1935

(v) बाबा भीमरॉव अम्बेदकर के द्वारा किस वर्ष बहिष्कृत हितकारणी सभा की स्थापना हुई?

(क) 1921 (ख) 1924 (ग) 1934 (घ) 1945

आइए विचार करें–

1. ज्योतिराव फूले के मुख्य विचार क्या थे?
2. वीरशेलिंगम के योगदान की चर्चा करें।
3. श्री नारायण गुरु का समाज सुधार के क्षेत्र में क्या योगदान रहा?
4. महात्मा गांधी के द्वारा छुआछूत निवारण के क्या उपाय किये गए?
5. बाबा साहब भीमराव अम्बेदकर ने जातीय भेद–भाव को दूर करने के लिए किस तरह के प्रयास किये?

आइए करके देखें–

1. आप अपने आस–पास समाज में किस तरह के असमानता को देखते हैं, इस पर वर्ग में शिक्षक की उपस्थिति में सहपाठियों से चर्चा करें?
2. समाज में जातीय भेद–भाव को मिटाने या कम करने के लिए आप क्या प्रयास कर सकते हैं, इस पर अपने विचार वर्ग में सहपाठियों एवं शिक्षक को बताएँ।

अध्याय - 9

महिलाओं की स्थिति एवं सुधार

आज अधिकतर लड़कियाँ स्कूल जाती हैं और कई स्कूलों में वे लड़कों के साथ भी पढ़ती हैं। बड़ी होने पर कॉलेज या विश्वविद्यालय जाती हैं एवं नौकरी भी करती हैं। उनके विवाह की उम्र कानून द्वारा तय है। यह विवाह किसी भी जाति या समुदाय में हो सकता है, विधवाएँ दुबारा विवाह कर सकती हैं, पुरुषों की तरह वोट डाल सकती हैं और चुनाव लड़ सकती हैं। इस प्रकार उनकी स्थिति में काफी सुधार आया है।

लेकिन दो सौ साल पहले के समाज को अगर आप देखें तो उस समय लड़कियों का स्कूल और कॉलेज में पढ़ना असाधारण बात थी। कम उम्र में ही उनकी शादी कर दी जाती थी। पर्दा प्रथा के कारण वे सामाजिक और राजनीतिक जीवन में भाग नहीं ले सकती थी। विधवाओं को दोबारा विवाह करने की इजाजत नहीं थी। उनका जीवन अकेलापन और कठिनाइयों में बितता था। हिन्दु समाज में विधवाओं को सती होना पड़ता था अर्थात अपने मरे हुए पति के साथ चिता पर उन्हें जला दिया जाता था। समाज में पुरुषों को सारी सुविधाएँ प्राप्त थीं और महिलाएँ इन सब से वंचित थीं। धर्म और संस्कृति के नाम पर उनके साथ भेद–भाव किया जाता था।

भारतीय समाज में लम्बे समय से स्त्री–पुरुष के बीच एक असमानता की स्थिति बनी रही है। इस पर अंग्रेजों द्वारा प्रश्न चिह्न लगाया गया। चूँकि अंग्रेज अपने औपनिवेशिक साम्राज्य का औचित्य सिद्ध करना चाहते थे, अतः उन्होंने भारतीय सभ्यता की कमजोरियों को उजागर कर, उनकी रूढ़िवादी परंपराओं की आलोचना की। और यह सिद्ध करना चाहा कि भारतीय असभ्य है और उनकी स्थिति केवल अंग्रेज शासक वर्ग ही सुधार सकता है।

कई अन्य देशों की तुलना में भारत में महिलाओं की स्थिति दयनीय थी। महिलाओं में भी शिक्षा और चेतना की कमी रही और इस भेदभाव को वे सही मानकर स्वीकार करती रही।

अपनी दयनीय एवं हीन स्थिति को उन्होंने अपना भाग्य माना एवं हर प्रकार के बंधन एवं रूढ़ियों को स्वीकार किया।

महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के उपाय तब शुरू हुए जब अंग्रेजों द्वारा इन प्रथाओं की आलोचना की गई, जिसमें जेम्स मिल जैसे विद्वान मुखर रहे। चूँकि यह विचार नकारा नहीं जा सकता था इसलिए कुछ शिक्षित भारतीयों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और सुधार के प्रयास प्रारंभ हुए। समाज सुधार के इन उपायों के केन्द्र में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाते हुये उन्हें समाज में सम्मानजनक स्थिति तक पहुँचाना था। कुछ अमानवीय परंपराओं को समाप्त करने का एक दृढ़ संकल्प लिया गया जिसके अग्रणी राजा राम मोहन राय माने जाते हैं।

यधपि महिलाओं की स्थिति में सुधार के उपाय प्रारंभ हुए पर उसकी सीमा निर्धारित रही एवं उनको मिलने वाले अधिकारों की सीमा भी पुरुष सुधारकों के द्वारा ही तय की गई। इन बाध्यताओं और इस प्रकार के सीमित उद्देश्य होने के बावजूद महिलाएँ लाभान्वित हुईं। कुछ कुप्रथाओं का घोर विरोध हुआ और उन संकीर्ण विचारों को दूर करने के लिए शिक्षा पर बल दिया गया। पढ़े–लिखे भारतीयों को भी यह बोध हुआ कि सामाजिक सुधार, राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक विकास एवं राष्ट्रीय चेतना को बढ़ाने में महिला उत्थान एक आवश्यक कदम था। अतः इनके विकास में रूकावटों का अन्त जरूरी था।

इस क्रम में रूढ़िवादी विचार से उत्पन्न संकीर्ण मानसिकता को दूर करने को प्राथमिकता दी गई। एक नई चेतना जगाने के प्रयास किए गए जो सामाजिक दोष को हटा सके। रूढ़िवादी एवं संकुचित विचारधारा केवल शिक्षा के द्वारा समाप्त की जा सकती थी, अतः महिला शिक्षा पर बल दिया गया। ताकि एक उदारवादी एवं प्रगतिशिल दृष्टिकोण समाज में बन सके। इसी संदर्भ में शिशु हत्या, सती प्रथा जैसी अमानवीय पद्धतियों पर रोक लगाने की बात भी उठाई गयी और बहु विवाह, पर्दा प्रथा एवं विधवाओं के पुनर्विवाह पर रोक आदि को बदलने की कोशिश हुई।

हमें यह समझना होगा कि समाज सुधार के क्रम में यह प्रयास महिलाओं की स्थिति में

सुधार लाने के महत्वपूर्ण प्रयास थे परन्तु नारी उत्थान के प्रश्न पर अभी इनमें जोर नहीं दिया गया था। महिलाओं को समाज में समानता का अधिकार मिले, ऐसे विचार की कमी हम इस पूरे संदर्भ में पाते हैं। इसलिए इन बदलती परिस्थितियों में भी महिलाएँ मूल अधिकारों से वंचित रहीं। मुख्यतः पैतृक संपत्ति पर अधिकार की बात लंबे समय तक उठाई ही नहीं गई।

सबसे पहले शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं को शामिल करने के उपाय प्रारंभ किए गए। परंतु इनका प्रभाव उच्च वर्ग की महिलाओं तक ही सीमित रहा। जब उन्नीसवीं सदी में समाज सुधारकों के द्वारा महिलाओं के लिए शिक्षा के प्रयास हुए तो उनका प्रभाव सीमित रहा। फिर भी उस समय की परिस्थितियों में यह एक सराहनीय प्रयास था।

उच्च वर्ग की महिलाएँ शिक्षित होते हुए भी रोजगार से प्रत्यक्ष रूप से नहीं जोड़ी गईं। जबकि निम्न वर्ग की महिलाओं को शिक्षा से वंचित रख कर उन्हें भी आर्थिक भागीदारी से दूर रखा गया। महिलाओं को शिक्षित तो बनाया गया पर रोजगार से उनकी शिक्षा को हाल के वर्षों तक जोड़ा नहीं गया था, अब इस कमी को समाज से हम दूर होते हुए पा रहे हैं।

समाज सुधारक ज्योतिराव फूले की पत्नी सावित्रि बाई फूले ने महिला समानता के प्रश्न को उठाया एवं 'बहुजन समाज' की स्थापना उनके द्वारा हुई। इस दंपत्ति के द्वारा निम्न वर्ग की महिलाओं के अधिकार की बात उठाई गई। लेकिन संपूर्ण समाज सुधार आंदोलन के क्रम में उच्च वर्ग की महिलाओं की समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया गया।

सती प्रथा पर विवाद

उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दु समाज में विधवाओं को भारी कष्टों का सामना करना पड़ता था। जिसमें सबसे कठोर सती प्रथा थी इसमें विधवा को उनके पति की चिता के साथ जला

दिया जाता था। दुर्भाग्यवश कुछ लोग समझते थे कि इस अमानवीय परंपरा को धार्मिक मान्यता प्राप्त थी। जबकि वास्तव में यह विधवा स्त्रियों को संपत्ति एवं उत्तराधिकार के अधिकारों से वंचित करने का एक उपाय था।

ऐसी बर्बर प्रथाओं को समाप्त करने की पहल इस समय के पश्चिमी विचारकों द्वारा की गई, जिसने भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को भी झकझोर दिया। समाज में ऐसी मानसिकता बनी हुई थी कि एक 'सती' होने वाली महिला को सदाचारी माना जाता था। इस समय बहु विवाह एवं बाल विवाह का भी प्रचलन था इसलिए सती होने वाली महिला प्रायः कम आयु की वह महिलाएँ होती थीं, जिनका विवाह वृद्ध एवं अधेड़ पुरुषों से होता था।

समाज में सती प्रथा विरोधियों एवं समर्थकों के बीच अंतर्द्वन्द्व जारी था।

सती विरोधी– महिलाओं को अपनी स्वाभाविक क्षमता का प्रदर्शन करने का सही मौका ही कब दिया? यह कैसे माना जा सकता है कि उनमें समझ नहीं होती? अगर ज्ञान और शिक्षा के बाद भी कोई व्यक्ति न समझ सकता हो या पढ़ाई गई चीजों को ग्रहण न कर पाए तो उसे अक्षम मान सकते हैं पर अगर महिलाओं को पढ़ने का अवसर ही नहीं मिलेगा तो उन्हें कमतर कैसे कहा जा सकता है।



चित्र 1 – सती प्रथा

सती समर्थक– औरतें कुदरती तौर पर कम समझदार, बिना दृढ़ संकल्प वाली, अपने पति की मृत्यु के बाद उसके साथ जाने की कामना करने लगती है पर वह धधकती आग से भाग न निकले, इसलिए पहले हम उन्हें चिता की लकड़ियों में कस कर बाँध देते हैं।

इस कुप्रथा की समाप्ति की पहल राजा राम मोहन राय के द्वारा हुई। चूँकि कट्टरपंथी वर्ग सती प्रथा का सर्मथन कर रहे थे, इसलिए राजा राम मोहन राय के अनुरोध पर तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक ने 1829 में कानून बनाकर सती प्रथा का अंत किया। सामाजिक सुधार के क्षेत्र में यह राजाराम मोहन राय की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना 1828 में की। ब्रह्म समाज के द्वारा महिलाओं की स्थिति में सुधार की प्रक्रिया अपनाई गई, जैसे सती प्रथा पर रोक, महिलाओं की शिक्षा पर बल, विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहन, अंतर्जातीय विवाह को समर्थन, बाल विवाह का विरोध इत्यादि।

राजा राममोहन राय (1772–1833)

राजा राममोहन राय आधुनिक युग के प्रणेता थे। उन्होंने कलकत्ता में ब्रह्म सभा के नाम से एक सुधारवादी संगठन बनाया जिसे बाद में ब्रह्म समाज के नाम से जाना गया। यह संगठन महिलाओं के लिए समानता के अधिकार का पक्षधर था। अतः उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए राममोहन राय ने पश्चिमी शिक्षा के प्रसार को प्रोत्साहन दिया। कई भाषाओं के ज्ञाता, (संस्कृत, फारसी, यूरोपीय भाषाओं का ज्ञान) होने के कारण विभिन्न धार्मिक ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन कर उन्होंने यह पाया कि सभी धर्म में सद्‌गुण हैं। अतः राम मोहन राय अत्यन्त उदारवादी विचारधारा के पक्षधर रहे।



चित्र 2 – राजा राममोहन राय

राममोहन राय ने इस अभियान के लिए जो तरीका अपनाया उसे बाद के सुधारकों ने भी अपनाया। जब भी वह किसी कुप्रथा को चुनौती देना चाहते थे तो अक्सर प्राचीन धार्मिक ग्रंथों से उदाहरण यह प्रमाणित करने के लिए प्राप्त करते थे कि ऐसी परंपराओं को धार्मिक ग्रंथों में मान्यता प्राप्त नहीं है।

यद्यपि ब्रह्म समाजियों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी। फिर भी वह तर्कवाद एवं सामाजिक सुधार की नई भावना के प्रतिनिधि थे। उन्होंने जाति प्रथा की कठोर व्यवस्था पर भी प्रहार किया। समाज में स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए प्रयास किए, शिक्षा के प्रसार के लिए कार्य किया एवं संपत्ति में भी उत्तराधिकार महिलाओं को मिले ऐसे विचारों को प्रस्तुत किया। राममोहन राय द्वारा सुधार शुरू किए गए और उनके दूसरों समर्थकों में केशव चंद सेन द्वारा इस कार्य को आगे बढ़ाया गया। इस प्रकार के आंदोलन ने देश के अन्य भागों में सुधार की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया।

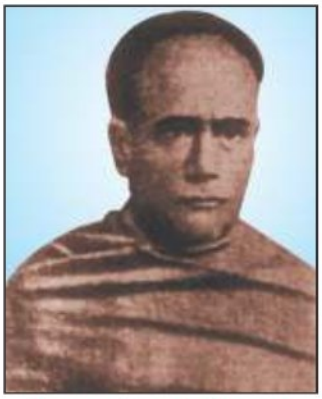
प्रार्थना समाज

प्रार्थना समाज का गठन पश्चिम भारत में हुआ जहाँ एम.जी. राणाडे ने समाज सुधार का बीड़ा लिया जो मूलतः महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के उपाय में जुटे थे। जब 1882 में पंडिता रमाबाई सरस्वती पश्चिम भारत पहुँची तथा राणाडे की सहायता से आर्य महिला समाज का गठन हुआ जिसका मूल उद्देश्य महिला जागरूकता एवं उनका उत्थान रहा। भारत महिला परिषद् का गठन हुआ जिसके पहले सम्मलेन में लगभग 200 महिलाओं ने हिस्सा लिया।

ईश्वर चंद्र विद्यासागर एवं विधवा पुनर्विवाह–(1820–91)

प्रसिद्ध समाज सुधारक ईश्वर चंद्र विद्यासागर के नेतृत्व में विधवा विवाह के पक्ष में

आंदोलन चलाया गया जिसके लिए उन्होंने प्राचीन ग्रंथों का हवाला दिया। ऐसा करते हुए वह वास्तव में ऐसे सामाजिक प्रचलन को समाप्त करना चाहते थे जिसपर धर्म की मुहर लगा दी गई थी। राजा राम मोहन राय की तरह ईश्वरचंद्र ने भी धर्म के वास्तविक रूप को इन सुधारों का आधार बनाने का प्रयास किया ताकि ये सामाजिक बदलाव धर्म विरोधी नहीं लगे।



चित्र 3 – ईश्वर चंद्र विद्यासागर

ईश्वर चंद्र विद्यासागर के द्वारा विधवा पुनर्विवाह का मान्यता प्रदान करवाने का श्रेय दिया जाता है। अंग्रेज सरकार के तत्कालीन गवर्नर लार्ड डलहौजी ने उनके सुझाव को मानते हुए वर्ष 1856 में विधवा विवाह के पक्ष में एक कानून पारित कर दिया। विधवा पुनर्विवाह को एक वैधानिक मान्यता तो प्राप्त हुई पर सामाजिक स्वीकृति के लिए लंबे समय तक कठिन परिस्थिति बनी रही। विधवा विवाह के विरोधियों ने ईश्वरचंद्र का भी बहिष्कार किया।

विद्यासागर के प्रयासों ने सुधार की प्रवृति को एक नया बल दिया जिसके आधार पर बाद में 'ऐज ऑफ कन्सेंट' (सहमति आयु विधेयक) लागू हुआ जिसने भारतीय परंपराओं का कड़ा विरोध किया। केशव चंद्र सेन ने इस कार्य को आगे बढ़ाया जिसके परिणामस्वरूप 'नेटिव मैरेज ऐक्ट' पारित हुआ। इस कानून ने बहु विवाह का विरोध किया और विवाह की न्यूनतम आयु लड़कियों के लिए 14 वर्ष एवं लड़कों के लिए 18 वर्ष रखी। पर जब केशव चंद्र सेन ने अपनी अल्पायु बेटी का विवाह किया तब भारतीय समाज में मौजूद विसंगतियाँ सामने आईं। ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज ने भी अपने संगठनों के द्वारा स्त्री उत्थान से संबंधित विषयों को पूर्ण समर्थन दिया।

रमाबाई

संस्कृत की महान विद्वान पंडिता रमाबाई का मानना था कि हिन्दू धर्म महिलाओं का दमन करता है। उन्होंने ऊँची जातियों की हिन्दू महिलाओं की दुर्दशा पर एक किताब भी

लिखी थी। उन्होंने पूणा में एक विधवा गृह की स्थापना की जो विधवाओं को स्वावलंबी बना सके, यह शारदा सदन के नाम से जाना गया। रमाबाई ने बाद में 'ईसाई धर्म ग्रहण किया एवं विधवा होने के बावजूद पुनर्विवाह किया, जिससे रूढ़िवादी खेमे के लोग असंतुष्ट हुए और उन्हें उस सम्मान से वंचित किया जो एक विद्वान को मिलना चाहिए था।



चित्र 4 – पंडिता रमाबाई

स्वामी दयानंद सरस्वती (1824–1875)

स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की थी। आर्य समाज ने सामाजिक असमानता को दूर करने के हर संभव प्रयास किए जिनमें मूल रूप से महिला उत्थान के लिए शिक्षा पर बल दिया गया। आर्य समाजी बाल विवाह का विरोध और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करते थे। वेदों को परमसत्य मानते हुए स्त्रियों के उत्थान तथा जातिप्रथा के बंधन को कमजोर करने में बहुत प्रभावकारी रहे ।



चित्र 5 – स्वामी दयानंद सरस्वती

स्वामी विवेकानंद–(1863–1902)

स्वामी विवेकानंद ने भारत के पिछड़ेपन और अवनति के लिए अपनी 'गुलामी' अशिक्षा और भविष्य के प्रति निराशा'को जिम्मेदार माना। अपने देशवासियों की कमजोरियों के प्रति संकेत करते हुए विवेकानंद ने महिला उत्थान के लिए शिक्षा का माध्यम ही अपनाया। शिक्षा के प्रसार से ही वह महिलाओं की गरिमा को बनाए रखना चाहते थे, जिससे भारतीय संस्कृति का आदर पश्चिमी जगत में



चित्र 6 – स्वामी विवेकानंद

स्थापित हो सके। 1893 ई. में अमेरिका के शिकागो नगर में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में हिस्सा लेते हुए भारत की गूढ़ दार्शनिकता का प्रभाव स्थापित करने में उन्हें सफलता मिली।

सैयद अहमद खाँ


चित्र 7 – सैयद अहमद खाँ

अल्पसंख्यक समुदाय के बीच भी महिलाओं की स्थिति में सुधार के कई प्रयास हुए एवं कई संगठन कायम किए गए। मुसलमान समुदाय में जागरण की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में सर सैयद अहमद खाँ(1817–98 ई.) द्वारा हुई। इस्लामी समुदाय में सुधार लाने के दृष्टिकोण से वे शिक्षा के विस्तार में लगे महिला उत्थान के क्रम में सैयद अहमद ने बहु विवाह, पर्दा प्रथा तथा तलाक के परंपरागत नियमों में आधुनिकता के अनुसार संशोधन के विचार सुझाए पर शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा लड़कों को प्राथमिकता मिली। इस कमी को शेख अब्दुल्ला ने पूरा करने का प्रयास किया और महिला शिक्षा पर बल दिया। मुमताज अली जैसे कुछ सुधारकों ने कुरान शरीफ की आयतों का हवाला देकर बताया कि महिलाओं को भी शिक्षा का अधिकार मिलना चाहिए।

नौरोजी फरदूनजी


चित्र 8 – नौरोजी फरदूनजी

पारसी समुदाय में भी स्त्रियों के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण प्रयास प्रारंभ किए गए। पारसी समाज के दादा भाई नौरोजी (1825–1917 ई.) और नौरोजी फरदूनजी (1817–1885 ई).दोनों ने मिलकर 'रास्त गोफ्तार' नामक पत्रिका शुरू की। दोनों ने ही शिक्षा के प्रसार के लिए, विशेषकर कन्याओं की शिक्षा के लिए अथक प्रयास किए। नौरोजी परिवार के सहयोग से पारसी समुदाय के अंतर्गत 'स्त्री जरतोश्ती मंडल' का गठन हुआ। 1903 ई. के आने तक लगभग 50 महिलाओं को इस संगठन के साथ जोड़ा गया। इस संगठन को लगभग 36 वर्षों तक सेरेनमाई एम. कुरसेत जी की अध्यक्षता में चलाया गया।

डा. बी.सी. राय (बंगाल के प्रथम मुख्य मंत्री) की माता अघोर कामिनी देवी के द्वारा लड़कियों के लिए बाँकीपुर गर्ल्स हाई स्कूल की स्थापना कर, यहाँ के रूढ़िवादी तबके के विरोध के बावजूद पटना में कन्याओं के लिए शिक्षा के नए आयाम स्थापित किए।

इन्हें भी जानें

शेख अब्दुल्लाह और उनकी पत्नी बेगम वाहिद जहाँ के द्वारा अलीगढ़ कन्या विद्यालय खोला गया जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अंतर्गत एक महाविद्यालय में परिवर्तित हुआ।

बेगम रूकैया सखावत हुसैन ने कलकत्ता और पटना में मुस्लिम लड़कियों के लिए स्कूल खोले।

यह विद्यालय फरवरी 1867 में केवल 6 छात्राओं से प्रारंभ हुआ और आज बिहार की राजधानी में इस शिक्षण संस्थान की अपनी पहचान है। इन्होंने शिल्पकला को प्रोत्साहन देने के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना भी की। इसके अलावा अन्य कन्या पाठशालाएँ भी खोली गईं जिनमें रविंद्र बालिका विद्यालय (1931) की स्थापना रविन्द्रनाथ ठाकुर की बेटी ने की। माधुरीलता देवी ने 1903 में मुजफ्फरपुर में चैपमैन गर्ल्स स्कूल की स्थापना की। ये सभी विद्यालय आज भी कन्या शिक्षा के विस्तार में अपना योगदान दे रहे हैं। निम्न जाति की कन्याओं के लिए भी बिहार में 1910 से 1945 के बीच पटना, मुंगेर, जमालपुर, गया इत्यादि शहरों में स्कूल खोले गए। बिहार में नारी शिक्षा के क्षेत्र में रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाईटी और कबीरपंथ की भी सराहनीय भूमिका रही। रामकृष्ण मिशन की शाखाएँ 1922 ई. में पटना एवं देवघर में स्थापित हुई। 1882 ई. तक थियोसोफिकल सोसाईटी ने भागलपुर, गया, आरा, पटना में प्रार्थना सभा और शिक्षण संस्थाएँ खोली जो आज जीर्ण अवस्था में हैं।

बाल विवाह एवं विवाह की उम्र

वर्ष 1929 में बाल विवाह निषेध अधिनियम पारित किया गया। इस कानून के अनुसार 18 साल से कम उम्र के लड़के और 16 साल से कम उम्र की लड़की का विवाह नहीं हो सकता था। बाद में यह उम्र बढ़ाकर



चित्र 9 – केशव चंद्र सेन

क्रमशः 21 साल व 18 साल कर दी गई।

शिशु हत्या का प्रचलन विशेषकर भारत के उत्तर एवं पश्चिमी क्षेत्र में था। इस अमानवीय परंपरा को 1870 में अवैध घोषित किया गया। 1870 के एक विशेष अधिनियम के द्वारा इस अपराध को प्रभावशाली ढंग से समाप्त किया गया ।

इन्हें भी जानें

केशव चंद्र सेन के द्वारा ऐतिहासिक 'स्पेशल मैरिज बिल' वर्ष 1871 का ड्राफ्ट पटना में तैयार हुआ था।

उन्नीसवीं सदी के आखिर तक खुद महिलाएँ भी अपनी स्थिति में सुधार के लिए आगे बढ़ीं। उन्होंने किताबें लिखीं, पत्रिकाएँ निकालीं, स्कूल और प्रशिक्षण केन्द्र खोले तथा महिलाओं को संगठित किया। ऐसे अन्य कई राष्ट्रीय महिला संगठन स्थापित हुए जिनमें राष्ट्रीय महिला परिषद्, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (A.I.W.C.) जैसे महिला मोर्चों को तैयार किया गया, जो महिलाओं के बीच जागरूकता फैलाने का कार्य भी कर रही थी।

1861 के अधिनियम ने दहेज को अवैध घोषित किया पर यह प्रथा आज भी प्रचलित है जो महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करता है।

समाज सुधार आंदोलन ने महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने की पहल की। उनके द्वारा विशेषकर सती प्रथा, कन्या शिशु हत्या, बहु–विवाह, बाल–विवाह, जैसे सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने के लिए शिक्षा के माध्यम को अपनाया गया। उनके अनुसार केवल शिक्षा ही ऐसी असमानता, रूढ़ी और दकियानुसी विचारों को दूर कर सकती थी, जिसने महिलाओं को समाज में अपनी भागीदारी देने से वंचित रखा था।

महिलाओं से जुड़े ऐसे गंभीर व संवेदशनशील विषय को उन्नीसवीं सदी में स्वीकार

किया गया, इस प्रयास को छोटा नहीं माना जा सकता है। बीसवीं सदी की शुरुआत से वह महिलाओं को मताधिकार, बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ और शिक्षा के अधिकार के बारे में कानून बनवाने के लिए राजनैतिक दबाव बनाने लगी थी। ऐसी संस्थाएँ आज बहुत सक्रिय हैं और ऐसी बहुत सी सुधार योजनाएँ राज्य के द्वारा संपोषित भी हैं। उनमें से कुछ महिलाओं ने 1920 के दशक से विभिन्न प्रकार के राष्ट्रवादी और समाजवादी आंदोलनों में भी हिस्सा लिया। महात्मा गाँधी ने पहली बार राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी पर बल दिया एवं उनमें एक नया आत्मविश्वास जगाया। जवाहर लाल नेहरू ने महिलाओं के लिए अधिक स्वतंत्रता व समानता की मांगों का समर्थन किया।

बिहार में – बालिका साईकिल योजना ने भी कन्याओं के शिक्षा दर को आगे बढ़ाया है।

पंचायती व्यवस्था में– बिहार में 50 प्रतिशत आरक्षण की पहल, महिला सशक्तिकरण की ओर उठाया गया एक ठोस कदम माना जाता है।

अनेक समाज सुधारकों ने महिलाओं के प्रति अपनाई गई असंवेदनशील परंपराओं को नकारा। उनके द्वारा महिलाओं के प्रति सहानुभूति रखी गई। विधवाओं को समाज में समानता और जीने के पूर्ण अधिकार के लिए इन्होंने प्रयास किया। सतिप्रथा के अमानवीय स्वरूप का घोर विरोध किया गया। बहु–विवाह, बाल–विवाह जैसे अप्रासंगिक प्रचलन को भी समाप्त करने के उपाय किए गए। पर्दा प्रथा जैसी सामाजिक कुरीति को भी समाप्त करने का आह्वान महिलाओं ने किया, जो इस काल की बड़ी उपलब्धि थी।

पर्दा प्रथा के द्वारा महिलाओं पर सामाजिक प्रतिबन्ध लगाया गया था। ऐसी परंपरा को

तोड़ने का आह्वान महिलाओं द्वारा किया गया, जो इस काल की एक बड़ी उपलब्धि है। चूँकि महिला को पहली बार समाज की मुख्य धारा से जुड़ने का अवसर मिला एवं महिलाओं के प्रश्न पर मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया गया। हालाँकि महिलाओं की स्थिति में सुधार के उपायों में कुछ कमी पाई गई जिससे ये प्रयास उच्च वर्ग की महिलाओं तक ही सीमित रहा।

बीसवीं सदी के आने तक जागरूकता की लहर महिला समाज तक पहुँच चुकी थी जिन्होंने स्वयं अपने अधिकारों के संधर्ष को आगे बढ़ाने का बीड़ा उठाया, चूँकि पुरुषों के द्वारा केवल उनकी स्थिति में सुधार के उपाय किये गये थे ये उपाय भी सीमित एवं अपर्याप्त पाये गये चूँकि नियंत्रण और सीमित उद्देश्य पर आधारित ये आंदोलन समय के साथ कम लगने लगे। महिलाओं ने अब स्वयं अपने उत्थान के साथ समानता के अधिकार प्राप्ति के लिए अपने संघर्ष को आज भी बनाए रखा है।

वर्तमान समय में भी महिलायें अपने उत्थान तथा समानता के अधिकारों के प्रति काफी सजग हैं। उनकी जागरुकता ने सरकार का ध्यान इस तरफ आकृष्ट कराया है।

अभ्यास

आइए फिर से याद करें–

सही विकल्प को चुनें

(I) स्त्रियों की असमानता की स्थिति पर पहली बार किसके द्वारा प्रश्नचिह्न लगाया गया?

(क) अंग्रेजों के द्वारा (ख) भारतीय शिक्षितों के द्वारा

(ग) महिलाओं के द्वारा (घ) निम्न वर्ग के प्रणेताओं के द्वारा

(ii) शिक्षा किस वर्ग की महिलाओं तक सीमित रहा?

(क) निम्न वर्ग (ख) मध्यम वर्ग

(ग) उच्च वर्ग (घ) इनमें से कोई नहीं

(iii) कानून के द्वारा सती प्रथा का अंत कब हुआ?

(क) 1826 (ख) 1827 (ग) 1828 (घ) 1829

(iv) विधवा पुनर्विवाह के प्रति किसने अपना जीवन समर्पित कर दिया?

(क) ईश्वर चंद्र विद्यासागर (ख) दयानन्द सरस्वती

(ग) राजाराम मोहन राय (घ) सैयद अहमद खाँ

(v) बाल विवाह निषेध अधिनियम किस वर्ष पारित हुआ?

(क) 1926 (ख) 1927 (ग) 1928 (घ) 1929

आइए विचार करें–

(i) महिलाओ में असमानता की स्थिति मुख्यतः किन कारणों से थी?

(ii) सती प्रथा पर किस प्रकार का विवाद रहा? सती विरोधी एवं सती समर्थक विचारों को लिखें

(iii) राजा राम मोहन राय के द्वारा महिलाओं से संबंधित किस समस्या के खिलाफ आवाज उठाया गया?

(iv) ईश्वर चंद्र विद्यासागर के महिला सुधार में योगदानों की चर्चा करें।

(v) स्वामी विवेकानन्द ने महिला उत्थान के लिए कौन–कौन से उपाय सुझाए?

आइए करके देखें–

(i) महिलाओं में साक्षरता बढ़ाने के लिए आपके विचार से क्या प्रयास किये जाने चाहिए? वर्ग में सहपाठियों से चर्चा करें।

(ii) महिला उत्थान के लिए चलाये जाने वाले सरकारी कार्यक्रमों की जानकारी एकत्र कर उसकी एक सूची बनाएँ।

अध्याय - 10

अंग्रेजी शासन एवं शहरी बदलाव

पाठ 3 में आपने पढ़ा कि किस प्रकार भारत में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के बाद गाँवों का जीवन बदल गया। मगर अंग्रेजों का शासन तो सभी जगह था– शहरों में भी – तो वहां भी कुछ परिवर्तन जरूर आया होगा। इसी बात को हम इस पाठ में समझने का प्रयास करेंगे और देखेंगे कि औपनिवेशिक भारत में 'शहरीकरण' की प्रक्रिया कैसी थी और इस समय शहरों एवं कस्बों में लोगों का जीवन किस प्रकार का था।

लेकिन इससे पहले कि हम औपनिवेशिक काल में शहरों के विकास की खोज करें, हमें अंग्रेजी शासन के पहले के शहरों पर एक नजर डालनी चाहिए। शहर सामान्यतः ग्रामीण इलाकों से काफी अलग होते थे। यहां की आर्थिक गतिविधियां और संस्कृतियां गाँवों से काफी भिन्न होती थीं। आप यह जानते हैं कि गाँव के लोगों का मुख्य काम खेती होता है जबकि शहरों में खेती का काम नहीं के बराबर होता है। यहां कई अन्य तरह के व्यावसाय किए जाते हैं। शहरों में व्यापारी, शिल्पकार, शासक तथा अधिकारी रहते थे। अक्सर शहरों की किलेबंदी की जाती थी, जो ग्रामीण क्षेत्रों से इसके अलगाव को चिह्नित करती थी। शहरों का ग्रामीण जनता पर प्रभुत्व होता था और वे खेती से प्राप्त करों और अधिशेष के आधार पर फलते–फूलते थे।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में मुगलों द्वारा बसाये गए शहर जनसंख्या के जमाव, विशाल भवनों और शहरी समृद्धि के लिए प्रसिद्ध थे। आगरा, दिल्ली, लाहौर जैसे शहर मुगल प्रशासन और सत्ता के महत्वपूर्ण केन्द्र थे। इन केन्द्रों में सम्राट और अमीर (उच्च अधिकारी) जैसे कुलीन वर्ग की उपस्थिति के कारण वहाँ कई प्रकार की विशिष्ट सेवाएँ प्रदान करने वाले लोग निवास करते थे। शिल्पकार कुलीन वर्ग के लिए विशिष्ट हस्तशिल्प का उत्पादन करते थे। ग्रामीण क्षेत्रों से शहर के निवासियों के लिए अनाज लाया जाता था। सम्राट एक किलेबंद

महल में रहता था और नगर एक दीवार से घिरा होता था, जिसमें अलग–अलग दरवाजों से आने–जाने का रास्ता होता था। किलेबंद शहरों के भीतर उद्यान (बाग–बगीचे), मंदिर, मस्जिद, मकबरे, विद्यालय, बाजार तथा सरायें बनी होती थीं।



चित्र 1 – उन्नीसवीं सदी के मध्य में शाहजहाँनाबाद की तसवीर।
आप बाईं ओर लालकिला देख सकते हैं। शहर को घेरने वाली दीवारों को ध्यान से देखें। बीचोबीच चाँदनी चौक का मुख्य रास्ता दिखाई दे रहा है। देखिए कि यमुना नदी लालकिले से सटकर बह रही है। अब इसका रास्ता बदल गया है। जहाँ नाव किनारे की ओर बढ़ रही है उसे अब दरियागंज कहा जाता है।

मध्य काल में इन प्रशासनिक शहरों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में मदुरई, तंजावूर, कांचीपूरम जैसे कुछ ऐसे शहरी केन्द्र थे जो अपने मंदिरों के लिए प्रसिद्ध थे। लेकिन ये शहर उत्पादन और व्यापारिक गतिविधियों के भी प्रमुख केन्द्र थे। धार्मिक त्योहारों के अवसर पर यहां मेले का आयोजन किया जाता था, जिससे तीर्थ और व्यापार जुड़ जाते थे।

शहरी केन्द्रों में परिवर्तन

अठारहवीं सदी में शहरों की स्थिति में बदलाव आने लगा। राजनीतिक तथा व्यापारिक गतिविधियों में परिवर्तन के साथ पुराने शहर पतनोन्मुख हुए और नए शहरों का विकास होने लगा। मुगल सत्ता के धीरे–धीरे कमजोर होने के कारण शासन से संबद्ध शहरों का पतन होने लगा। नई क्षेत्रीय शासन केन्द्र–लखनऊ, हैदराबाद, श्रीरंगपट्टनम्, पूणा, नागपुर, बड़ौदा आदि नये शहरी केन्द्रों के रूप में स्थापित होने लगे। व्यापारी, शिल्पकार, कलाकार, प्रशासक तथा अन्य विशिष्ट सेवा प्रदान करने वाले लोग इन नये शासन केन्द्रों की

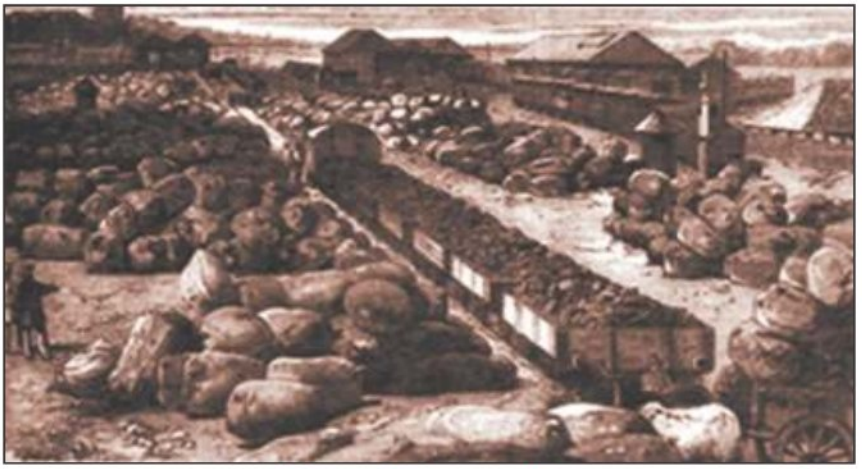
ओर काम तथा संरक्षण की तलाश में आने लगे। व्यापारिक व्यवस्था में परिवर्तन के कारण भी शहरी केन्द्रों में बदलाव के चिन्ह देखे गये। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों ने मुगल काल में ही विभिन्न स्थानों पर अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित किए, जैसे पुर्तगालियों ने गोवा में, डचों ने मछलीपट्टनम् में, अंग्रेजों ने मद्रास (चेन्नई) में, फ्रांसीसियों ने पांडिचेरी (पुदुचेरी) में। व्यापारिक गतिविधियों में विस्तार के कारण इन व्यापारिक केन्द्रों के आस–पास शहर विकसित होने लगे।

अठारहवीं सदी के अंत में परिवर्तन का एक नया दौर आरंभ हुआ। जब व्यापारिक गतिविधियाँ अन्य स्थानों पर केन्द्रित होने लगीं तब पुराने व्यापारिक केन्द्र और बंदरगाह अपना महत्व खोने लगे। खास प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले शहर इसलिए पिछड़ने लगे क्योंकि उनकी मांग धीरे–धीरे घटने लगी। अंग्रेजों द्वारा स्थानीय शासकों पर विजय के कारण भी क्षेत्रीय सत्ता के पुराने केन्द्र नष्ट होने लगे और सत्ता के नये केन्द्रों का विकास होने लगा। 1757 ई. में पलासी के युद्ध के बाद जैसे–जैसे अंग्रेजों ने राजनीतिक नियंत्रण स्थापित किया और अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापार फैलने लगा तब मद्रास (चेन्नई), कलकत्ता (कोलकाता), बम्बई (मुम्बई) का महत्व 'प्रेसिडेंसी शहर' के रूप में उभरा। नए भवनों और संस्थानों का विकास हुआ तथा शहरों को नये तरीकों से व्यवस्थित किया गया। नए रोजगार विकसित हुए और लोग शहरों की ओर आने लगे।

उजड़ते शहर

बंगाल में भागीरथी नदी के तट पर स्थित मुर्शिदाबाद रेशमी वस्त्रों के उत्पादन के प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरा था। लेकिन अठारहवीं सदी के दौरान शहर पहले की अपेक्षा विस्तार एवं महत्व की दृष्टि से सिकुड़ गया, क्योंकि वहाँ के बुनकर इंग्लैंड की मिलों से बनकर आए सस्ते कपड़ों के साथ प्रतियोगिता में टिक नहीं सके। यही हाल ढाका का भी हुआ, जो मलमल कपड़े के उत्पादन का केन्द्र था। इसी तरह सूरत एवं मछलीपट्टनम भी सूती वस्त्र के व्यापार का केन्द्र तथा बंदरगाह शहर थे। अठारहवीं सदी के अंत में जब व्यापार बंबई, मद्रास, कलकत्ता के नए बंदरगाहों पर केन्द्रित होने लगा तब ये शहर अपना व्यापारिक महत्व और समृद्धि खो बैठे। बिहार के संदर्भ में मुंगेर, भागलपुर आदि शहरों के उजड़ने की स्थिति की समकालीन ईरानी यात्री अहमद बहबहानी ने विस्तार से चर्चा की है।

1853 ई. में रेलवे की शुरुआत हुई। प्रत्येक रेलवे स्टेशन कच्चे माल का संग्रह केन्द्र और आयातित वस्तुओं का वितरण बिन्दु बन गया। रेलवे के विस्तार के बाद रेलवे वर्कशॉप और रेलवे कॉलोनियों की स्थापना शुरू हो गई। इसी समय जमालपुर और बरेली जैसे रेलवे शहर भी अस्तित्व में आये।



चित्र 2 – रेलवे शहर का चित्र

पश्चिम यूरोप के ज्यादातर देशों में आधुनिक शहरों का उदय औद्योगिकीकरण के साथ जुड़ा था। ब्रिटेन में मैनचेस्टर, लीवरपुल, लीड्स जैसे औद्योगिक शहरों का उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में तेजी से विस्तार हुआ। ये शहर सूती वस्त्र एवं इस्पात उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप लोग रोजगार की तलाश में गाँवों से शहरों की ओर आने लगे। बड़े–बड़े कृषि फार्मों की स्थापना के कारण छोटे किसानों को गाँव छोड़कर काम की तलाश में कारखानों में आना पड़ा जिससे औद्योगिक केन्द्रों की आबादी बढ़ने लगी। औद्योगिक केन्द्रों के आस–पास नये नगरों का विकास हुआ। जहाँ इंग्लैंड में 1700 ई० में 77% लोग गाँवों में बसते थे, वहाँ 1900 ई० में केवल 20% लोग गाँवों में रह रहे थे और 80% लोग शहरों में रहने लगे। इस तरह तीव्र गति से जनसंख्या का शहरीकरण हुआ। गाँवों के उजड़ने एवं नये शहरों के बसने से अर्थव्यवस्था का आधार ही बदल गया। पहले गाँव ही अर्थव्यवस्था के आधार थे। अब औद्योगिक क्रांति के कारण शहर अर्थव्यवस्था के आधार बन गये। लेकिन भारत में शहरों का विस्तार यूरोपीय देशों की तरह तेजी से नहीं हुआ, क्योंकि भारत में पक्षपातपूर्ण औपनिवेशिक नीतियों ने हमारे औद्योगिक विकास को आगे नहीं बढ़ने दिया। फिर भी कानपुर और जमशेदपुर सही मायनों में औद्योगिक शहर थे।

कानपुर में सूती एवं ऊनी कपड़े तथा चमड़े की वस्तुएँ बनती थीं, जबकि जमशेदपुर स्टील उत्पादन के लिए विख्यात हुआ।

प्रेसिडेंसी शहर की बसावट

अठारहवीं सदी के मध्य तक कलकत्ता, बंबई और मद्रास तेजी से विशाल शहर बन गए। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने कारखाने (वाणिज्यिक कार्यालय) इन्हीं शहरों में बनाए। ये कारखाने कम्पनी के व्यापारिक वस्तुओं के संग्रह केन्द्र के रूप में कार्य करते थे। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के बीच प्रतिस्पर्धा के कारण इनकी किलेबंदी की जाती थी। मद्रास में फोर्ट सेंट जार्ज, कलकत्ता में फोर्ट विलियम और बम्बई में फोर्ट, ये इलाके ब्रिटिश आबादी के रूप में जाने जाते थे। यूरोपीय व्यापारियों से लेन–देन करने वाले भारतीय व्यापारी, करीगर और कामगार इन किलों के बाहर अलग इलाकों में रहते थे। इन इलाकों को 'ह्वाइट टाउन' (गोरा शहर) और 'ब्लैक टाउन' (काला शहर) के नाम से संबोधित किया जाता था।



चित्र 3 – फोर्ट सेंट जॉर्ज,मद्रास का नक्शा
फोर्ट सेंट जॉर्ज के इर्द–गिर्द बना व्हाइट टाउन बाएं सिरे पर तथा पुराना ब्लैक टाउन दाहिने सिरे पर है। फोर्ट सेंट जॉर्ज घेरे में स्थित है। ध्यान से देखिए कि ब्लैक टाउन को किस तरह बसाया गया था। नीचे ब्लैक टाउन का एक हिस्सा।

औपनिवेशिक शहर, मध्यकालीन शहर से किस प्रकार भिन्न थे? कक्षा में चर्चा करें।

शहरी जीवन और सामाजिक परिवेश

शहरों में सम्पन्नता एवं गरीबी दोनों साथ–साथ दिखाई देते थे। जिंदगी हमेशा

दौड़ती–भागती सी दिखाई देती थी। टाउन हॉल, सार्वजनिक पार्क, रंगशालाओं और सिनेमाघरों जैसे सार्वजनिक स्थानों के बनाने से शहरों में लोगों को मिलने–जुलने की नई जगह और अवसर मिलने लगे थे। सभी वर्ग के लोग शहरों में आने लगे। क्लर्कों, शिक्षकों, वकीलों, डॉक्टरों, इंजीनियरों की मांग बढ़ती जा रही थी। फलस्वरूप, शहरों में मध्यवर्ग के लोगों की संख्या बढ़ती गयी। स्कूल, कॉलेज और पुस्तकालय जैसे नए शिक्षण संस्थानों के खुलने से उनके बीच नये विचारों का प्रसार हुआ। शिक्षित होने के नाते वे समाज और सरकार के बारे में अखबारों, पत्रिकाओं और सार्वजनिक सभाओं में अपने विचार व्यक्त कर सकते थे। बहस और चर्चा का एक नया सार्वजनिक दायरा पैदा हुआ।

शहरों में महिलाओं के लिए भी नए अवसर थे। घर की चारदीवारी से बाहर सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं की उपस्थिति बढ़ने लगी। वे शिक्षिका, रंगकर्मी, फिल्म कलाकार, फैक्ट्री मजदूर, नौकरानी के रूप में शहर के नए व्यवसायों में दाखिल होने लगी।

शहरों में मेहनतकश गरीबों एवं कामगारों का एक नया वर्ग उभर रहा था। ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब रोजगार की तलाश में शहरों की ओर आ रहे थे। मजदूर वर्ग के लोग अपने यूरोपीय और भारतीय मालिकों के लिए खानसामा (भोजन बनाने वाले), गाड़ीवान, चौकीदार, निर्माण मजदूर के रूप में विभिन्न प्रकार की सेवाएँ उपलब्ध कराते थे। वे शहर के विभिन्न इलाकों में कच्ची झोपड़ियों में रहते थे।

अतीत के आइने में भागलपुर शहर

बिहार के भागलपुर शहर का अस्तित्व गंगा नदी के दक्षिण किनारे पर लगभग 3000 साल से कायम है। इसकी पहचान हमेशा से एक व्यावसायिक और सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में रही है। प्राचीन काल में शहर का अस्तित्व एक उपनगर के रूप में था जो अंगदेश की राजधानी चम्पा से सटा था। लेकिन समय का तकाजा देखिए, अब चम्पा ही उपनगर बनकर चम्पानगर हो गई और भागलपुर ही शहर का मुख्य केन्द्र बन चुका है।

बारहवीं सदी से अठारहवीं सदी के मध्य इस शहर पर मुसलमानों का शासन था। इस दौर में भागलपुर शहर सूफी संस्कृति का एक अहम केन्द्र हुआ करता था। यहाँ दर्जनों

मस्जिद, दरगाह, मजार, खानकाह, ईदगाह और इमामबाड़े थे। आधुनिक भागलपुर शहर में घूमने पर इन केन्द्रों के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं।

मस्जिदः– मुसलमान समुदाय का उपासना स्थल।

मजार :– किसी श्रेष्ठ व्यक्ति या संत की कब्र अर्थात दफन करने का स्थान

मकबरा :– कब्र या मजार पर बनाई गई भव्य इमारत।

खानकाह :– सूफी संतों के धार्मिक केन्द्र।

ईदगाह :– मुसलमानों के ईद की नमाज पढ़ने के लिए विशेष स्थल जो सामान्यतः खुले मैदान के रूप में होता है।

इमामबाड़ा :– शिया मुस्लिम समुदाय के धार्मिक स्थल, जहाँ मुहर्रम में शोक सभा (मजलिस) का आयोजन होता है।

घने मुहल्लों और दर्जनों बाजार से घिरा भागलपुर एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक शहरी केन्द्र था। शायरी एवं नृत्य संगीत आमतौर पर मनोरंजन के साधन थे। इस शहर में ऐशो–आराम सिर्फ कुछ अमीर लोगों के हिस्से में आते थे। अमीर और गरीब के बीच फासला बहुत गहरा था।



चित्र 4 – मौलानाचक की मस्जिद में नमाज अदा करते श्रद्धालु
(मुगल बादशाह जहांगीर एवं फर्रूखसीयर के शासनकाल में निर्मित भागलपुर रेलवे स्टेशन से करीब 50 मीटर पश्चिम–दक्षिण तातारपुर में स्थित। हजरत मुहम्मद साहब के पवित्र अवशेष सुरक्षित होने के कारण यह मुसलमानों की पवित्र धर्म स्थली है। इस मोहल्ले में एक मदरसा था और यहां से शिक्षा पाकर विद्वान मौलवी हुए। इसी कारण इसका नाम मौलानाचक पड़ा)



चित्र 5 – शाहजंगी का मकबरा
(शाहजंगी का मकबरा भागलपुर रेलवे–स्टेशन से करीब से करीब दो किलोमीटर पश्चिम–दक्षिण की ओर ऊँचे टीले पर स्थित है और नीचे तालाब एवं मस्जिद है।यहां प्रतिवर्ष मुहर्रम का मेला लगता है। ताजिया का पहलाम (विसर्जन) इसी स्थान पर किया जाता है।)

औपनिवेशिक काल में भागलपुर शहर

हम औपनिवेशिक शहरों के बारे में पीछे अध्ययन कर चुके हैं। भागलपुर शहर के हालात दूसरे औपनिवेशिक शहरों से काफी अलग थे। यह शहर परंपरागत भारतीय शहरों जैसा था। यह शहर तीन कस्बों– चम्पा, भागलपुर और बरारी को मिलाकर विकसित हुआ था। जब भागलपुर नगरपालिका की स्थापना हुई, तो पहले दो कस्बे– चम्पा और भागलपुर इसमें शामिल किये गये। बाद में बरारी भी सम्मिलित हुआ और आज तीनों कस्बे भागलपुर नगरपालिका के अंतर्गत हैं। शहर के बीच से गुजरने वाली आड़ी टेढ़ी संकरी गलियों में अलग–अलग जाति, धर्म, भाषा और पेशे के लोगों के मुहल्ले थे। अलग–अलग समय में विविध प्रकार के आर्थिक कार्य करने वाले कई समुदाय भागलपुर शहर में आये और यहीं बस गये।

उन्नीसवीं सदी में आधुनिक शिक्षा के प्रसार, भू–राजस्व व्यवस्था एवं व्यवसायों के नये अवसर का नतीजा यह हुआ कि भागलपुर शहर में बांग्ला भाषियों और मारवाड़ी समुदाय का आगमन हुआ। शहर की आबादी बढ़ गई, रोजगार बदल गए और शहर की संस्कृति बिल्कुल भिन्न हो गई। भोजन पहनावे, कला और साहित्य के हर क्षेत्र में मुख्य रूप से उर्दू–फारसी पर आधारित शहरी संस्कृति नई रूचियों के नीचे दब गई।

शिक्षा के क्षेत्र मे अंग्रेजों के प्रयास का लाभ सबसे पहले यहां के बांग्लाजनों ने उठाया। देखते–देखते एक समय ऐसा भी आया जब शहर में बंगाल से आये डाक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रोफेसर, क्लर्क, शिक्षक, लेखक, अधिकतर बंगाली ही हुआ करते थे। भागलपुर शहर का बूढ़नाथ, मंसूरगंज, आदमपुर, खंजरपुर का इलाका मुख्य रूप से बांग्ला भाषियों से पटा था। ये बांग्ला भद्रजन अपनी संस्कृति और साहित्य की छाप लेकर शहर में आये और बांग्ला परिवेश का निर्माण किया।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में व्यापारिक लाभ के उद्देश्य से मारवाड़ी, अग्रवाल, जायसवाल बनिया आदि जातियां एक ताकतवर व्यावसायिक समूह के रूप में शहर में उपस्थित हुये। ये व्यापारी, एजेण्ट, बैंकर और महाजन होते थे और शहर के व्यवसाय पर इनका नियंत्रण था। मारवाड़ी टोला, खलीफा बाग, शुजागंज में मारवाड़ी, नया बाजार में अग्रवाल तथा मसूरगंज मुहल्ले में जयसवाल लोग निवास करते थे।

ब्राह्मण और कायस्थ स्थानीय ग्रामीण जातियाँ थीं जो अंग्रेजी शिक्षा का लाभ उठाकर सरकारी पदों पर काबिज हुये। ये लोग शहर के मुदीचक एवं खंजरपुर इलाके में अपना बसेरा बनाया। कुछ ब्राह्मणों एवं कायस्थों का संबंध जमींदार परिवारों से भी था।

शहर का दक्षिणी–पश्चिमी इलाका तातारपुर, कबीरपुर, मौलानाचक, शाहजंगी, हबीबपुर, हुसैनाबद आदि मुहल्ले में मुस्लिम व्यापारी, कारीगर, बुनकर, मजदूर रहते थे। अनेक मुस्लिम परिवारों का संबंध सूफी संतों के साथ था जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी वर्षों से इस शहर में निवास कर रहे थे।

भागलपुर शहर का नाथनगर और चम्पानगर मुहल्ले में परम्परागत व्यवसाय में विशिष्टता प्राप्त मुस्लिम जुलाहे और हिन्दु तांती जाति के बुनकर रहते थे। ये रेशमी कपड़े और धागे तैयार करने का काम करते थे।

1862 ई. में रेलवे की शुरुआत और शिक्षण संस्थाओं की स्थापना ने शहर की कायापलट कर दी। बहुसंख्यक लोग रोजगार, व्यावसाय, शिक्षा और अन्य सुविधाओं की उम्मीद में शहर की तरफ आ रहे थे। जैसे–जैसे भागलपुर की आबादी बढ़ने लगी, बरारी में नये लोगों ने बसना शुरू किया। रोजगार की तलाश में ग्रामीण इलाकों से आए मेहनतकश गरीब और कामगारों का एक नया वर्ग उभरा जो बरारी कस्बे में गंगा नदी के किनारे कालीघाट स्थित मायागंज इलाके की कच्ची झोपड़ियों में रहने लगे।



चित्र 6 – मायागंज इलाके में गरीबों की झोपड़ पट्टी

महाशय ड्यौढ़ी



चित्र 7 – महाशय ड्यौढ़ी

इस विशाल इमारत का निर्माण अठारहवीं सदी के अंतिम वर्षों में भागलपुर शहर के स्थानीय जमींदार महाशय वंश के परेशनाथ घोष ने गंगा नदी के किनारे चौकी नियामतपुर (चम्पानगर) में अपने निवास स्थान के लिए करवाया था। महाशय वंश के परिवार के सदस्य मुगल काल से भागलपुर परगना नामक प्रशासनिक इकाई में कानूनगो के पद पर कार्य करते आ रहे थे। जब 1765 ई० में अंग्रेजों ने मुगल बादशाह से दीवानी का अधिकार प्राप्त किया, तब इस परिवार के लोग भागलपुर परगना में दीवान के पद पर नियुक्त हुए। बाद में भागलपुर के जिला कलक्टर मि० चेयरमैन ने परेशनाथ घोष को शुजानगर टप्पा की जमीन्दारी की सनद (आदेश) प्रदान की।

ब्रिटिश शासन की भू–राजस्व नीति के परिणामस्वरूप अनेक जमींदार परिवारों का आगमन शहर में हुआ। दरअसल इनकी जमीन्दारी का क्षेत्र ग्रामीण इलाकों में हुआ करता था, लेकिन ये लोग शहर के विभिन्न इलाकों में निवास करते थे। महाशय वंश, बनेली, बरारी, अरूआरी जैसे बड़े जमींदारों के साथ छोटे–छोटे जमींदार भी शहर में मौजूद थे। इनकी जमींदारी का क्षेत्र भागलपुर, मुंगेर, बाँका, नवगछिया, पूर्णिया, आदि में था। शहर में मंदिरों, शिक्षण संस्थानों, चिकित्सालयों, अनाथालयों एवं परोपकारी कार्यों को संरक्षण प्रदान करने से इन लागों का वहां के समाज में उनकी शक्तिशाली स्थिति स्थापित होती थी।

इस प्रकार कई कस्बों को मिलाकर भागलपुर शहर दूर तक फैली अल्प सघन आबादी वाला शहर बन गया और भागलपुर के इर्द–गिर्द स्थित कस्बे इसके नए उपशहरी इलाके बन गए।

भागलपुर, औपनिवेशिक शहर से भिन्न एक परम्परागत शहर था। कैसे?

व्यवसाय, व्यापार और उद्योग

हमने उपर देखा कि इस काल में बाहर से आये व्यावसायिक समुदाय के लोगों ने भागलपुर शहर को अपना व्यापारिक ठिकाना बनाया। रेलवे और गंगा नदी के किनारे बसे होने के कारण शहर की व्यापारिक गतिविधियों में और भी तेजी आई। नतीजा यह हुआ कि भागलपुर एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक शहर के रूप में विकसित होने लगा।

भागलपुर शहर में स्टेशन चौक से खलीफाबाग तक का इलाका राजस्थान से आये मारवाड़ी समुदाय का आवास क्षेत्र था। राजस्थानी परम्परा को दृष्टिगत रखते हुये मारवाड़ियों ने अपने घरों के बाहर दुकान खोलकर व्यावसायिक गतिविधि को प्रारंभ किया। मारवाड़ियों के साथ अन्य दूसरी जातियाँ और समुदाय–दर्जी, मोची, नीलगर–छीपा (रंगरेज) और विसाती मुसलमान भी आये।

राजस्थानी मोचियों की दुकान हड़ियापट्टी (शुजागंज बाजार से उत्तर दिशा) में थी। ये मोची चमड़े के ऊपर कशीदे का भी काम करते थे। इनके घर और दुकान एक ही जगह थे। इसी हड़ियापट्टी में मिट्टी के बर्तनों की दुकानें भी थीं। मिट्टी के बर्तन का काम मुख्य रूप से स्थानीय कुम्हार ही करते थे। हड़ियापट्टी से पूरब दिशा में नीलगर और छीपाओं ने शहर की कोतवाली के पास अपना बसेरा डाल रखा था। ये लोग कपड़ा रंगने का काम किया करते थे। यहीं विसाती के भी घर थे। ये विसाती कपड़ों पर गोटा किनारी और बेल बुटे का काम करते थे। महिलाएँ बँधेज की चुनरी और रंगने का काम करती थीं। लहेरी टोला, मस्जिद गली और तातारपुर में बसे मनियार लाट/लाह की चुड़ी बनाते थे। कचौड़ी गली में हलवाइयों की दुकानें थीं। सोनापट्टी (शुजागंज से पश्चिम दिशा) सुनारों का मुहल्ला था। इस व्यवसाय से संबद्ध लोग स्थानीय स्वर्णकार और राजस्थान से आये मारवाड़ी भी थे। गंगा नदी के किनारे स्थित मोहल्ले–गोलाघाट, सराय, मंसूरगंज (रेलवे स्टेशन से उत्तर दिशा) एवं मिरजान हाट (स्टेशन से दक्षिण दिशा) में अनाज के बड़े–बड़े गोदाम थे, जहाँ अनाज का थोक एवं खुदरा व्यापार होता था। मिरजान हाट से सटे गुरहट्टा में गुड़ का कारोबार होता था।

भागलपुर शहर के बड़े व्यापारियों में सर्वप्रथम मेसर्स भूदरमल चंडीप्रसाद का नाम आता है। ये राजस्थान से भागलपुर आए थे और इस परिवार को भागलपुर में निवास करते हुए दो सौ वर्षों से अधिक हो गये हैं। यह फर्म बैंकिंग, सोना–चांदी, गल्ला, तसर रेशम का व्यापार करता था। इसके अलावा मेसर्स बोहित राम रामचंद्र, मेसर्स शोभा राम जोरती राम, मेसर्स जयराम दास, हनुमान दास, मेसर्स जानकी दास बैजनाथ, मेसर्स जीवन राम रामचन्द्र आदि फर्म भागलपुर में थे। इन फर्मों में बैंकिंग, कम्पनियों के बिक्रय एजेंट, हड्डी के काम के अतिरिक्त सिल्क, सूती, ऊनी कपड़े, किराना, अनाज, तेल का थोक व्यापार होता था।

भागलपुर शहर का सबसे प्रसिद्ध उद्योग तसर सिल्क का कपड़ा तैयार करना था। यह व्यवसाय बहुत पुराने समय से चला आ रहा है। इसलिए इस शहर को सिल्क सिटी भी कहा जाता है। यहां 1810 में करीब 3275 करघे चल रहे थे। इस व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र चम्पानगर और नाथनगर मोहल्ला था। तसर का कोया बाँकुरा, संथाल परगना और गया से आता था। जगदीशपुर एवं पुरैनी के गाँवों में धागा तैयार करने का काम होता था। फिर धागा नाथनगर, चंपानगर के बुनकरों के घर पहुँचता था, जहाँ हथकरघे पर रेशम के कपड़े तैयार होते थे। पटवा, मोमीन, जुलाहा (सभी मुस्लिम), तांती (हिन्दू) जातियाँ प्रमुखतः इस पेशे में कार्यरत हैं। रेशम और सूत की मिलावट से 'बाफ्टा' तैयार किया जाता था। यहाँ का तैयार कपड़ा यूरोपीय देशों को भेजा जाता था, जहाँ इसकी बहुत मांग थी।



चित्र 8 – पावरलुम पर काम करता हुआ बुनकर

बाफ्टा :– बाफ्टा एक ही रंग का रेशमी कपड़े का टुकड़ा होता है, जिसे बुनने के बाद रंगा जाता है। इसका टुकड़ा 20–22 हाथ लंबा एवं 1–1.5 हाथ चौड़ा होता था।,

भागलपुर एक व्यवसायिक शहर था। क्या आप इस विचार से सहमत हैं?

शासन प्रबंध

जब भारत में अंग्रेजी शासन स्थायी स्वरूप ग्रहण करने लगा तब अंग्रेजों ने अपनी सत्ता को मजबूत बनाने के लिए देश में एक नयी प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डाली। उस समय प्रशासनिक इकाइयों के कार्यालय शहरों में अवस्थित होते थे। आइए, हम भागलपुर के शासन प्रबंध के माध्यम से अंग्रेजों द्वारा एक जिले में स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में जानें।

1774 ई० में भागलपुर को जिला बनाया गया। जिले का सबसे बड़ा अधिकारी 'कलक्टर' कहलाता था। भागलपुर जिले का पहला कलक्टर ऑगस्थस क्लिवलैंड था। कलक्टर की सहायता के लिए जिले के सदर दफ्तर में डिप्टी कलक्टर, सब डिप्टी कलक्टर और असिस्टेंट कलक्टर होते थे। 1936 तक यह जिला चार सब डिविजनों (भागलपुर सदर, बाँका, मधेपुरा, सुपौल) में बँटा था। सब डिविजन का सबसे बड़ा अफसर सब डिविजनल अफसर (एस०डी०ओ०) कहलाता था।



चित्र 9 – भागलपुर समाहरणालय

जिले में न्याय विभाग का सबसे बड़ा अफसर डिस्ट्रिक्ट एवं सेशन जज (जिला एवं सत्र न्यायाधीश) कहलाता था। दीवानी मुकदमों में इनकी सहायता के लिए सबोर्डिनेट जज और मुंसिफ होते थे। फौजदारी मुकदमें में जिला मजिस्ट्रेट तथा डिप्टी एवं सब डिप्टी मजिस्ट्रेट इनकी सहायता करते थे।



चित्र 10

जिले में पुलिस विभाग का सबसे बड़ा अफसर सुपरिंटेन्डेंट ऑफ पुलिस (एस०पी०) कहलाता था। उसके नीचे असिस्टेन्ट एवं डिप्टी सुपरिंटेन्डेंट रहते थे। पुलिस के काम के लिए जिले को 25 भागों में बाँटा गया था। यह भाग 'थाना' कहलाता था। स्वतंत्रता के समय तक भागलपुर शहर के अंदर तीन थाने थे– भागलपुर शहर, भागलपुर मुफस्सिल और नाथ नगर। थाने का बड़ा अफसर इंसपेक्टर या सब इंसपेक्टर होता था, जिसे दरोगा भी कहा जाता था।

नगरपालिका

10 वर्ग मील क्षेत्र में विस्तृत भागलपुर शहर के नगरपालिका की स्थापना 1864 ई. में हुई थी। जनसाधारण द्वारा निर्वाचित एवं सरकार द्वारा मनोनीत प्रतिनिधियों के द्वारा इसका प्रबंधन होता था। नगरपालिका में 22 सदस्य होते थे, जिनमें 7 सदस्य मनोनीत और 14 निर्वाचित होते थे। अपनी सीमा क्षेत्र में शहर की सफाई, सड़क, पुल, पेयजल, शिक्षा, स्वास्थ्य की जवाबदेही नगरपालिका के जिम्मे था। शहर में पीने के पानी के आभाव को दूर करने के लिए भागलपुर नगरपालिका द्वारा 1887 ई. में एक जलागार का निर्माण किया गया। 1896–97 ई. में इसका विस्तार चम्पानगर एवं नाथनगर की ओर किया गया। जलागार को बड़ा बनाने के लिए सरकार ने नगरपालिका को 3 लाख रुपये कर्ज दिये थे। 1936–37 ई. में नगरपालिका की कुल सालाना आय 4.5 लाख रुपये थी। भागलपुर नगरपालिका क्षेत्र के अंतर्गत शहर की कुल आबादी 1872 ई. में 65,377 थी जो 1931 ई. में 83,847 हो गयी।



चित्र 11 – भागलपुर नगरपालिका

शैक्षणिक विरासत

भागलपुर शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था। विभिन्न काल खंडों से गुजरते हुये भागलपुर ने अपनी शैक्षणिक पहचान को कायम रखा है। प्राचीन काल में अंतीचक (भागलपुर के नजदीक) का विक्रमशीला विश्वविद्यालय था तो मध्यकाल में मौलानाचक का खानकाह शहबाजिया हुआ करता था। ब्रिटिश काल में प्राथमिक शिक्षा, हायर सेकेण्डरी शिक्षा और

उच्च शिक्षा के प्रचार–प्रसार में यहाँ के जमींदार, बंगाली, मारवाड़ी, ईसाई समुदाय की अहम भूमिका रही है। इनके द्वारा स्थापित शैक्षणिक संस्थान आज भी यहाँ की शैक्षणिक विरासत को जिंदा रखे हुये हैं। सरकारी स्तर पर 1837 ई. में जिला स्कूल शुरू किया गया। मारवाड़ी कन्या पाठशाला, बाल संबोधिनी स्कूल मारवाड़ियों की देन थी। चर्च मिशनरी सोसायटी (सी.एम.एस.) द्वारा आदमपुर में प्राथमिक एवं हाई स्कूल (1854) एवं चम्पानगर में अल्पसंख्यक मध्य विद्यालय का संचालन किया जाता था। माणिक सरकार स्थित दुर्गाचरण प्राइमरी स्कूल (1860 ई.) व हाई स्कूल (1937 ई.) बंगाली समुदाय के योगदान की दास्तान सुना रहे हैं। इसी दुर्गाचरण प्राइमरी स्कूल में सुप्रसिद्ध उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने आरंभिक शिक्षा हासिल की थी।



चित्र 12 – सी.एम.एस. हाई स्कूल

शहर के स्थानीय जमींदार तेजनारायण सिंह ने 1883 ई. में तेजनारायण जुबली कॉलेजियट हाई स्कूल तथा 1887 ई. में तेजनारायण जुबली कॉलेज की स्थापना की थी। दोनों ही संस्थान नया बाजार मोहल्ले में चला करते थे। बाद में बनैली स्टेट द्वारा दानस्वरूप भूमि एवं धन दिये जाने के बाद इन संस्थानों के नाम के साथ बनैली शब्द जुड़ गया। आज भी शहर में शिक्षा के क्षेत्र में इसकी पहचान है। वाणिज्य शिक्षा की मांग को देखते हुये शहर के मारवाड़ी समुदाय द्वारा 1941 ई. में मारवाड़ी कॉलेज की स्थापना की गई।



चित्र 13 – टी.एन.बी. कॉलेज

भागलपुर में महिला शिक्षा की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। श्री अरविन्द घोष के पिता श्री कृष्णाधन घोष ने मोक्षदा बालिका विद्यालय की स्थापना 1868 ई. में की। 1868 ई. में ही जनाना मिशन स्कूल भी खोला गया। महिला उच्च शिक्षा के लिए मोक्षदा

बालिका विद्यालय परिसर में 15 अगस्त 1949 ई. को महिला महाविद्यालय की बुनियाद डाली गई। बाद में बरारी के जमींदार नरेश मोहन ठाकुर ने दान में खंजरपुर मोहल्ले में इस महाविद्यालय के लिए जमीन उपलब्ध कराई। इसलिए उनकी माँ के नाम पर इस महाविद्यालय का नामकरण सुंदरवती महिला महाविद्यालय हुआ।

तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में 1910 ई. में सबौर स्थित बिहार कृषि कॉलेज की नींव तत्कालीन गवर्नर सर एंड्रयू फ्रेजर ने रखी थी। इस कॉलेज की गिनती एशिया के महत्वपूर्ण कॉलेजों में हुआ करती थी। इससे कृषि शिक्षा के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित हुये। रोजगारपरक शिक्षा के लिए 1947–51 में सिल्क इंस्टीट्यूट नाथ नगर में शुरू किया गया।



चित्र 14 – बिहार कृषि कॉलेज सबौर, भागलपुर

यहां शिक्षा के प्रसार में पुस्तकालयों का अहम योगदान था। सबौर स्थित बिहार कृषि कॉलेज, तेजनारायण बनैली कॉलेज (टी.एन.बी. कॉलेज), भागलपुर कलेक्ट्रेट (समाहरणालय), भगवान पुस्तकालय, सरस्वती पुस्तकालय, बांग्ला इंस्टीच्यूट में पुस्तकों का अच्छा संग्रह था।



चित्र 15 – भगवान पुस्तकालय
भगवान पुस्तकालय भागलपुर स्टेशन से लगभग एक किलोमीटर उत्तर गोशाला के निकट नया बाजार में स्थित एक प्रसिद्ध पुस्तकालय है। यहां ज्ञान–विज्ञान की पुस्तकें एवं पत्र–पत्रिकाएं उपलब्ध हैं।

सांस्कृतिक गतिविधियाँ

स्वतंत्रता पूर्व भागलपुर की सांस्कृतिक विरासत भी कम महत्वपूर्ण नहीं रही है। इस परिदृश्य में भागलपुर की साहित्यिक व सांस्कृतिक यात्रा का विवरण अपने आप में दिलचस्प है। यदि हम भागलपुर की सांस्कृतिक गतिविधियों की बात करें तो शहर में अनेक नामीगिरामी साहित्यकारों, सांस्कृतिकर्मी, रंगकर्मी, शिल्पकारों, संगीतकारों एवं फोटोग्राफरों का जमघट लगता था।

उस समय भागलपुर के साहित्य पर बंग्ला साहित्य का बहुत अधिक प्रभाव था। शरतचन्द्र चटर्जी, विभूति भूषण बंद्योपाध्याय, रविन्द्रनाथ टैगोर भागलपुर प्रवास कर चुके थे। लेकिन उस समय जिस साहित्यकार ने यहाँ लम्बे समय तक रह कर अपना लेखन जारी रखा था, वह थे बलाई चंद्र मुखर्जी। उन्हें लोग बनफूल के नाम से जानते हैं। भागलपुर के साहित्यकार व रंगकर्मी राधाकृष्ण सहाय ने उनकी कई रचनाओं का बांग्ला से हिन्दी में अनुवाद किया। शरतचन्द्र ने कालजयी उपन्यास 'देवदास' विभूति भूषण बंद्योपाध्याय ने 'पथेर पंचाली' का सृजन भागलपुर में रह कर ही किया। यह भी कहा जाता है कि रविन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'गीताजंली' के कुछ अंशों को भागलपुर में रचा था, जिसे साहित्य का नोबल पुरस्कार मिला था।

भागलपुर का 'रंगमंचीय (नाटक) इतिहास कोई ज्यादा पुराना नहीं है। भागलपुर की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करने के लिए शरतचन्द्र ने स्वयं कई नाटक लिखे थे और उन्हें मंचित किया गया था। पर वे नाटक भी आधुनिक रंगमंच के करीब नहीं थे। यहाँ सिर्फ थियेटर या जात्रा (नाटक) की परंपरा के अंतर्गत बंगाली समाज प्रमुख भूमिका निभाता था। अर्द्धेंदु बाबु नाम के एक व्यक्ति प्रत्येक साल कोलकता से भागलपुर आकर जात्रा का प्रदर्शन करते थे। उसी क्रम में एक बार पृथ्वी थियेटर भी भागलपुर आया था और उसने कई नाटक मंचित किये थे। वैसे शहर की परंपरा का पहला नाटक हरिकुंज लिखित 'बाबरी मीरा' था जिसे हरिकुंज ने खुद निर्देशित किया था। लेकिन रंगमंचीय आंदोलन के रूप में जिसने भागलपुर के दर्शकों का ध्यान अपनी ओर खींचा था, वह संस्था थी– अभिनय भारती।

हरिकुंज :– भागलपुर शहर के सांस्कृतिकर्मी

1938 ई. में हरिकुंज ने भागलपुर शहर में सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए चरण संस्थाओं की नींव डालने में विशेष भूमिका निभाई। यह संस्थाएँ हैं– हिन्दी जात्रा पार्टी, श्री गौरांग संकीर्तन समिति, बागगिश्वरी संगीतालय व चित्रशाला। चित्रशाला में उस समय के प्रसिद्ध साहित्यकारों, रंगकर्मियों, शिल्पकारों, नृत्यकारों, संगीतकारों, फोटोग्राफरों का जमघट लगता था। इस जमघट में कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु, राष्ट्रकवि गोपाल सिंह नेपाली, राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर, साहित्यकार डॉ. बेचन, लघुकथाकार बनफूल, भारतरत्न बिस्मिल्लाह खां, नृत्यांगना सितारा देवी, सिने अभिनेता अशोक कुमार जैसी हस्तियाँ शामिल होती थीं।

धार्मिक स्थल

भागलपुर शहर में गंगा नदी के दक्षिणी तट पर बुढ़ानाथ मोहल्ला में बाबा बुढ़ानाथ महादेव मंदिर हिन्दुओं का प्रसिद्ध उपासना स्थल है। (चित्र पर नजर डालिए) इस मंदिर का निर्माण शंकरपुर के जमीनदार लक्ष्मी नारायण सिंह ने करवाया था। बाबू मोहन साह एवं बाबू रामकृष्ण भगत ने मंदिर परिसर में दो धर्मशालाएँ बनवाई थीं। जहाँ यात्रियों को ठहरने की अच्छी व्यवस्था थी। यहाँ चैत्र एवं आश्विन नवरात्र में विशेष उत्सव होता है जिसमें हिन्दु श्रद्धालु बड़ी संख्या में भाग लेते थे।



चित्र 16– बुढ़ानाथ महादेव मंदिर

जैन धर्म के बारहवें तीर्थंकर बासुपूज्य की जन्मभूमि होने के कारण भागलपुर शहर जैनियों की पवित्र भूमि मानी जाती है। शहर के नाथनगर मोहल्ला में दिगम्बर जैन मंदिर एवं

चम्पानगर में श्वेताम्बर जैन मंदिर जैनियों की पूज्य स्थल हैं। हराबव राज्य के जमीन्दार धनपत सिंह ने तीर्थयात्रियों के ठहरने की सुविधा का ख्याल करते हुए श्वेताम्बर धर्मशाला का निर्माण करके बड़ी उदारता का परिचय दिया था। मारवाड़ी मोहल्ला में जैनियों के अनेक मंदिर हैं।


चित्र 17 – नाथनगर स्थित दिगंबर जैन मंदिर

सिक्ख सम्प्रदाय का उपासना स्थल नया बाजार एवं खालीफा बाग मोहल्ला में स्थित हैं। ईसाइयों ने 1845 ई.में घंटाघर के निकट तथा 1854 ई. में कर्णगढ़ में गिरजाघर का निर्माण किया था।


चित्र 18 – घंटाघर के पास स्थित गिरजाघर

सार्वजनिक भवन

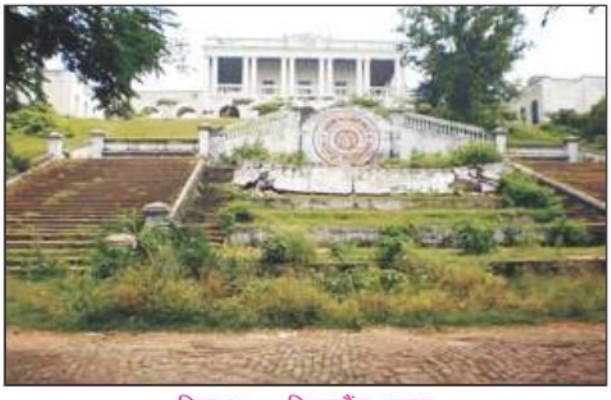
यदि आप भागलपुर की इमारतों पर एक नजर डालें तो उन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– उन्नीसवीं सदी से पहले निर्मित किले, महल, मंदिर, मस्जिद, मकबरा तथा उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी में निर्मित सरकारी दफ्तर टाउन हॉल, सार्वजनिक अस्पताल, रेलवे स्टेशन, घंटाघर चर्च क्लब, स्कूल, कॉलेज आदि। ये भवन लोगों की रूचि के साथ–साथ शासकों एवं स्थानीय जमीन्दारों की पंसद और इच्छाओं को दर्शाते हैं। इन विशाल इमारतों का निर्माण पहली बार इस्तेमाल में लगाये गए लोहे और सीमेंट के कारण संभव हो पाया। पहले की इमारातें बिल्कुल सादी होती थीं। बाद में अंग्रेजों ने हिन्दू और इस्लामिक स्थापत्य (भवन निर्माण की तकनीक) के मिश्रण से कुछ खूबसूरत भवन बनवाएँ। उन्होंने कुछ प्राचीन भवनों की नकल करने पर भी विचार किया। यदि आप ऐसी कुछ पुरानी इमारतों को ध्यान से देखें तो उनमें यूरोपीय और भारतीय स्थापत्य का बड़ा ही रोचक तालमेल नजर आएगा। भवन निर्माण कला के कुछ रोचक शैलियों का अध्ययन इकाई 11 में करेंगे। आइए, हम भागलपुर शहर की सैर करते हुये भवनों एवं इमारतों का अवलोकन करें।

भागलपुर शहर का हृदय स्थल और भारत के पुराने रेलवे स्टेशन में से एक भागलपुर रेलवे स्टेशन, शहर का मुख्य व्यापारिक स्थान है। यहाँ ई० आई० आर० (ईस्ट इंडियन रेलवे) एवं बी०एन०डब्लू०आर० (बंगाल नॉर्थ वेस्टर्न रेलवे) के स्टेशन हैं। इसकी शुरुआत 1862 ई० में हुई थी। इसके कारण आम लोगों के जीवन में बड़ा बदलाव आया। व्यापारी अपने कारोबार के लिए, श्रद्धालू तीर्थ यात्रा के लिए, अधिकारी अपने काम के लिए और अन्य लोग रोजगार की तलाश में यात्रा करते थे। लोग यातायात के इस नये साधन से लाभान्वित थे।

भागलपुर रेलवे स्टेशन से लगभग 3 किलोमीटर उत्तर गंगा नदी के किनारे स्थित क्लिवलैंड हाउस की गणना विशाल एवं सुंदर इमारतों में की जाती है। इसका निर्माण भागलपुर के पहले जिला कलक्टर क्लिवलैंड द्वारा 1780–1783 ई० के मध्य करवाया गया था। इटालियन शैली में निर्मित यह इमारत एक ऊँचे टीले पर बना है। पहले यहाँ शहर के स्थानीय जमीनदार महाशय वंश के परेशनाथ घोष का निवास स्थान था। क्लिवलैंड ने महाशय परिवार को चौकी नियामतपुर में 84 बीघा जमीन देकर इसे अपने अधीन कर लिया और अपना निवास स्थान बनाया। बाद में यह विशाल भवन टैगोर परिवार के हाथ चली गई। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसे अपना अध्ययन स्थल बनाया और गीतांजली के कुछ अंश यहाँ लिखे। बाद में उन्हीं के नाम पर इस इमारत को रवीन्द्र भवन के नाम से जाना जाता है। वर्त्तमान समय में रवीन्द्र भवन में तिलकामांझी विश्वविद्यालय भागलपुर का 'इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग और क्षेत्रीय अध्ययन केन्द्र'



चित्र 19 – भागलपुर रेलवे स्टेशन


चित्र 20 – क्लिवलैंड हाउस

अपनी कक्षाएँ आयोजित करता है।

19वीं सदी के आरंभ में समय देखने का यूरोपीय तरीका अंग्रेज शासित भारत में भी लागू किया गया। अब काम करने का यूरोपीय काल अवधि (सुबह 10 बजे से शाम 5 बजे तक) भारत में भी अपना लिया गया था। लोग देर से आने के कोई बहाना नहीं बना सकें, इसके लिए सार्वजनिक स्थानों पर घंटाघर बनाए गए। इसमें चारों तरफ डायल होते थे ,ताकि लोग दूर से और किसी भी दिशा से घड़ी को देख सकें। यही नहीं, लोगों को समय की जानकारी देने के लिए इन घंटाघरों से निश्चित समय के बाद घंटे की आभास भी होती थी। भागलपुर शहर का घंटाघर चौक एक उदाहरण था।


चित्र 21 – घंटाघर

भागलपुर रेलवे स्टेशन से 3 किलोमीटर उत्तर लाजपत पार्क के निकट स्थित टाउन हॉल बीसवीं सदी के आरंभ में निर्मित भवन है जहाँ सार्वजनिक समारोहों का आयोजन किया जाता था।


चित्र 22 – टाउन हॉल

भागलपुर कचहरी परिसर के निकट स्वामी विवेकानन्द पथ पर स्थित सेंटीश कम्पाउंड मैदान एक सार्वजनिक पार्क था। इसका नामाकरण बनेली इस्टेट के मैनेजर टी. सेंटीश के नाम पर पड़ा। इस कम्पाउंड के भीतर अंग्रेज प्रशासनिक अधिकारियों ने मनोरंजन एवं मौज–मस्ती के लिए स्टेशन क्लब का निर्माण किया। आप चित्र में क्लब की जर्जर स्थिति को देख सकते हैं।


चित्र 23 – स्टेशन क्लब,सेंटिस कंपाउंड

आप किसी शहर के शैक्षणिक, धार्मिक, सार्वजनिक एवं सरकारी भवन की सूची बनाएँ तथा जानकारी प्राप्त करें कि इनका निर्माण कब हुआ? आप यह बताएँ कि इसका उपयोग किस काम के लिए किया जाता है?

अभ्यास

आइये फिर से याद करें

1. सही या गलत बताए–

(i) भागलपुर शहर का विकास औपनिवेशिक शहरों से भिन्न परंपरागत शहर के रूप में हुआ।

(ii) मुस्लिम काल में भागलपुर शहर सूफी संस्कृति का केन्द्र नहीं था।

(iii) उन्नीसवीं सदी में भागलपुर में बंगाली और मारवाड़ी समुदाय का आगमन हुआ।

(iv) भारत में आधुनिक शहरों का विकास औद्योगीकीकरण के साथ हुआ।

(v) प्रेसिडेंसी शहरों में 'गोरे' और 'काले' लोग अलग–अलग इलाकों में रहते थे।

2. निम्नलिखित के जोड़े बनाएं–

(क) प्रेसिडेंसी शहर	(क) बरेली, जमालपुर
(ख) रेलवे शहर	(ख) बम्बई, कलकत्ता, मद्रास
(ग) औद्योगिक शहर	(ग) कानपुर, जमशेदपुर

3. रिक्त स्थानों को भरें–

(क) भागलपुर नगरपालिका की स्थापना.....ई० में हुई थी।

(ख) भागलपुर में सिल्क कपड़ा उत्पादन का केन्द्र.....और .....था।

(ग) भागलपुर में सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा देने वाले प्रमुख संस्कृतिकर्मी .....थे।

(घ) रेलवे स्टेशन कच्चे माल का.....और आयातित वस्तुओं का .....था।

(ङ) कालजयी उपन्यास.....की रचना शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने की थी।

आइए विचार करें–

(i) शहरीकरण का आशय क्या है?

(ii) अठारहवीं सदी में नये शहरी केन्द्रों के विकास की प्रक्रिया पर प्रकाश डालें?

(iii) ग्रामीण एवं शहरी अर्थव्यवस्था के अंतर को स्पष्ट करें?

(iv) भागलपुर शहर एक व्यावसायिक एवं सांस्कृतिक नगर था। कैसे?

(v) भागलपुर को सिल्क सिटी (रेशमी शहर) कहा जाता है। क्यों?

(vi) शहरों के सामाजिक परिवेश को समझाएं।

आइए करके देखें

(i) आप अपने राज्य के किसी शहर के इतिहास का पता लगाएँ तथा शहर के फैलाव और आबादी के बसाव के बारे में बताएँ। साथ ही शहर में संचालित व्यावसायिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक गतिविधियों के विषय में जानकारी दें?

अध्याय - 11

कला क्षेत्र में परिवर्तन

भारत की संस्कृति सम्पन्न एवं विविध है। प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास के विभिन्न कालों में भारत के लोगों ने चित्रकला स्थापत्य, नृत्य, संगीत, साहित्य के क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की थीं। अठारहवीं सदी में देश के भीतर राजनीतिक विघटन का दौर चल रहा था। राजाओं एवं नवाबों की स्थिति डावांडोल एवं वित्तीय दृष्टि से कमजोर हो गई थी। फलतः कलाकार एवं साहित्यकार राजकीय संरक्षण से वंचित हो गए। सभी तरफ सांस्कृतिक पतन के लक्षण दिखाई दे रहे थे। पलासी की लड़ाई के बाद जो नई औपनिवेशिक शक्ति उभर रही थी, उनका प्रभाव देश के जीवन के कई पहलुओं पर पड़ रहा था। इस दौरान कला के क्षेत्र में भारतीय एवं यूरोपीय शैली एक–दूसरे के निकट आई।

इस इकाई में हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि औपनिवेशिक कला के अंतर्गत चित्रकला, स्थापत्य एवं साहित्य के क्षेत्र में किस प्रकार के परिवर्तन हुये। इन परिवर्तनों को हम उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद से जुड़ाव की पृष्ठभूमि में देखने का प्रयास करेंगे।

औपनिवेशिक कला

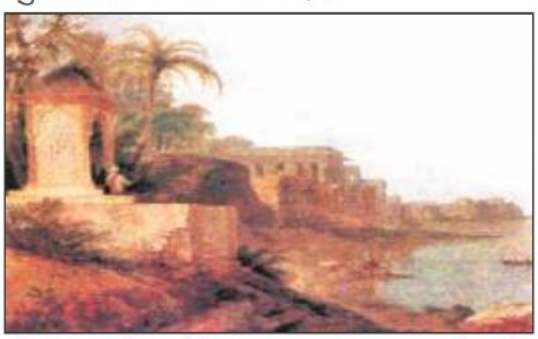
औपनिवेशिक कला में अनेक यूरोपीय कलाकार अंग्रेज व्यापारियों एवं अधिकारियों के साथ भारत आये और उनके संरक्षण में अपने कला रूपों का प्रदर्शन किया। ये कलाकार चित्रकारी की नई शैलियों, विषयों, परम्पराओं एवं तकनीकों की भारत में शुरुआत की। इनके द्वारा बनाये गये चित्रों को यूरोप के देशों में काफी लोकप्रियता मिली। क्योंकि इन चित्रों के माध्यम से उन्हें विदेशों में भारत की छवि को दिखाने का अवसर मिला।

यूरोपीय चित्रकार यथार्थवाद के दृष्टिकोण को लेकर भारत आये। यह दृष्टिकोण इस विचार पर आधारित था कि कलाकार अपनी आँखों से जो कुछ देखता है उसे उसी रूप में चित्रित करनी चाहिए। ताकि चित्र वास्तविक और असली जैसी दिखे। ये कलाकार तैलचित्र

की नई तकनीक को भारत में लाए। उनके द्वारा बनाये गये विभिन्न विषयों के चित्रों में ब्रिटेन की सांस्कृतिक श्रेष्ठता को दर्शाया गया है। आइए हम औपनिवेशिक चित्रकला के कुछ रूपों का अध्ययन करेंगे।

भारत के भूदृश्यों का चित्रण

कुछ ब्रिटिश चित्रकारों ने भारत के भूदृश्यों की खोज में देश के विभिन्न क्षेत्रों की यात्राएँ कीं दरअसल, ये चित्रकार भारत को एक आदिम देश साबित करने के लिए यहाँ की सांस्कृतिक विविधता को दिखाना चाहते थे। उन्होंने ब्रिटेन द्वारा भारत में जीते गये क्षेत्रों की कुछ मोहक तस्वीरें बनाईं।



चित्र 1 – टॉमस डेनियल द्वारा बनाया गया गाजीपुर में गंगा के किनारे स्थित खंडहर चित्र (ई. 1791)



चित्र 2 – टॉमस डेनियल एवं विलियम डेनियल द्वारा बनाया गया कलकत्ता स्थित क्लाइव स्ट्रीट (ई. 1786)

चित्र 1 पर नजर डालिए। इस चित्र में गुजरे जमाने की टुटी–फूटी भवनों एवं इमारतों के खंडहर दे रहे हैं। इसमें एक ऐसी सभ्यता के अवशेष दिखाई जा रही है, जो अब पतन की ओर अग्रसर है। चित्र 2 को देखें। इसमें चौड़ी सड़कें तथा यूरोपीय शैली में बनाई गई विशाल एवं भव्य इमारतें दिखाई दे रही हैं। चित्र 1 एवं 2 को देखने पर आपको कोई अंतर दिखता है? हाँ, इनमें भारत के परम्परागत जीवन एवं ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारतीय जीवन में अंतर को दिखाने का प्रयास किया गया है। चित्र 1 में भारत के परम्परागत जीवन को पतनोन्मुख एवं गतिहीन दिखाया गया है। जबकि चित्र 2 में ब्रिटिश शासन के तहत भारत के आधुनिकीकरण की छवि दिखाई गई है। डेनियल बंधुओं द्वारा **उत्कीर्ण चित्रों** की **अलबम** को ब्रिटेन के लोग बड़ी उत्सुकता के साथ खरीदते थे। क्योंकि वे भारत में ब्रिटिश राज्य को जानना चाहते थे।

उत्कीर्ण चित्र–लकड़ी या धातु के छापे से कागज पर बनाये गये चित्र।
अलबम –चित्र रखने की किताब

रूपचित्रण

औपनिवेशिक चित्रकला की एक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय शैली **रूपचित्रण (छवि चित्रण)** थी। भारतीय राजे–रजवाड़े तथा ब्रिटिश लोग अपने शक्ति एवं सत्ता तथा धन–सम्पदा के प्रदर्शन करने के लिए **किरमिच** पर अपनी तस्वीरें बनवाईं। पूर्व के समय में छवि चित्र छोटे आकार में बनाई जाती थी। किन्तु औपनिवेशिक काल में बनाये गये छवि चित्र आदमकद होते थे।

रूपचित्र–किसी व्यक्ति का ऐसा चित्र जिसमें उसके चेहरे एवं हाव–भाव पर विशेष जोर दिया गया हो। किरमिच–गाढ़ा या मोटा कपड़ा जिस पर चित्र उकेरा जाता था





चित्र 3, 4 – योहान जोफनी द्वारा बनाया गया रूपचित्र (1784)

रूपचित्रण शैली की लोकप्रियता को देखते हुये अनेक यूरोपीय चित्रकार काम की तलाश में भारत आये। 1780 ई. में भारत आये यूरोपीय चित्रकार योहान जोफनी द्वारा बनाया गया चित्र 3 एवं 4 रूपचित्रण के कुछ उदाहरण हैं। इन चित्रों में भारतीय नौकरों को अपने अंग्रेज मालिकों को सेवा करते हुये दिखाया गया है। इनमें भारतीयों की हैसियत को दीन–हीन एवं कमतर दिखाने के लिए धुंधली पृष्ठभूमि का उपयोग किया गया है। जबकि अंग्रेज मालिकों को श्रेष्ठ साबित करने के लिए उन्हें कीमती परिधान पहने रोबीले एवं शाही अंदाज में दर्शाया गया है ।

अंग्रेजों के देखा–देखी कई भारतीय राजा और नवाब भी यूरोपीय कलाकरों से अपनी

आदमकद रूपचित्र बनवाये। जार्ज विलिसन द्वारा बनाया गया चित्र 5 अर्काट के नवाब मोहम्मद अली खान का आदमकद रूपचित्र है। चित्र को देखने से आप समझ सकते हैं कि नवाब ने अपने शाही रौब–दाब को किस तरह दर्शाया है। जबकि नवाब अंग्रेजों से पराजित होकर उनके पेंशनभोक्ता बन गये थे। क्योंकि वे अंग्रेजों की सांस्कृतिक श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुये उनकी शैलियों एवं परम्परा को अपनाना चाहते थे।



चित्र 5 – जार्ज विलिसन द्वारा बनाया गया ऑर्कट के नवाब मोहम्मद अली खान का तैलचित्र (1775)

ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण

औपनिवेशिक चित्रकला की एक अन्य शैली 'इतिहास की चित्रकारी' थी। भारत में अंग्रेजों की जीत ब्रिटिश चित्रकारों के लिए चित्रकारी की एक प्रमुख विषयवस्तु थी। चित्र 6 एवं 7 ऐतिहासिक धटनाओं पर आधारित चित्रकारी का उदाहरण है। इकाई 2 में आप पढ़ चुके हैं कि अंग्रेजों ने पलासी के युद्ध में सिराजुद्दौला को पराजित कर मीर जाफर को बंगाल का नवाब बनाया था। चित्र 6 में आप देख सकते हैं कि इसमें मीर जाफर और उसके सैनिकों द्वारा पलासी युद्ध के बाद लार्ड क्लाइव की आगवानी करते हुये दिखाया गया है।



चित्र 6 – फ्रांसीस हेमन द्वारा बनाया गया तैलचित्र (1762)

चित्र 7 में श्रीरंगपटनम् के उस प्रसिद्ध लड़ाई को दिखाया गया, जिसमें मैसूर के शासक टीपू सुल्तान की बुरी तरह पराजय हुई थी। चित्र में युद्ध के दृश्यों को आप देख सकते हैं। इसमें अंग्रेज सैनिक टीपू के सैनिकों का कत्लेआम कर रही है और टीपू के किले पर ब्रिटिश झंडे को फहरा रही है। ब्रिटिश चित्रकारों द्वारा ऐसे चित्र बनाने के पीछे मकसद था कि वे अंग्रेजों को शक्तिशाली साबित कर सके। ताकि अंग्रेजों की जीत जनता के मन में बना रहे।



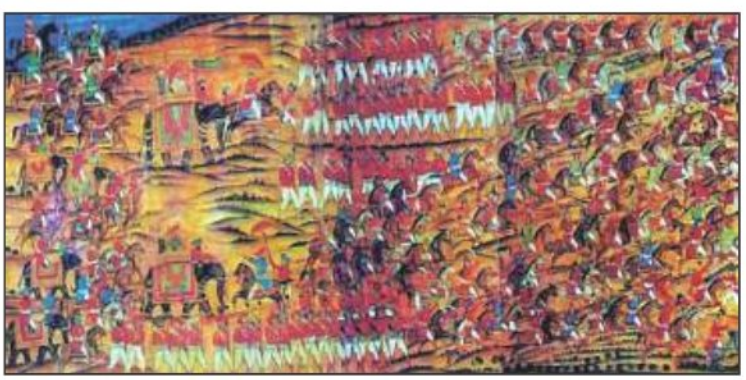
चित्र :– 7 रोबर केर पॉटर द्वारा बनाया गया तैलचित्र (1800)

पाश्चात्य चित्रकारों ने अंग्रेजों की श्रेष्ठता को दर्शाने के लिए चित्रकला की कौन–सी विषय, शैली एवं परम्परा को अपनाया। कक्षा में इसकी चर्चा करें।

दरबारी कला और स्थानीय कलाकार

भारतीय राजदरबार के संरक्षण में काम करने वाले स्थानीय कलाकारों ने साम्राज्यवादी कला शैली को किस प्रकार चुनौती दी। आइए, हम देखते हैं कि विभिन्न दरबारों में मौजूद स्थानीय कलाकार, चित्रकला शैली के रूझानों को किस प्रकार व्यक्त कर रहे थे।

मैसूर के शासक टीपू ने अंग्रेजों की सांस्कृतिक परम्पराओं का विरोध करते हुये स्थानीय शैली एवं परम्पराओं को संरक्षण दिया। उनके महल की दीवारें स्थानीय कलाकरों द्वारा बनाये गये **भित्ति चित्र** से सजे होते थे। चित्र 8 में एक भित्ति चित्र दिखाई दे रहा है। इस भित्ति चित्र में पोलिलुर के



चित्र 8 – श्रीरंगपटनम् स्थित दरिया दौलत महल की दीवार पर दरबारी चित्रकार द्वारा बनाया गया भित्तिचित्र

प्रसिद्ध युद्ध के दृश्य को दर्शाया गया है, जिसमें मैसूर की सेना ने अंग्रेजों को करारी शिकस्त दी थी।

भित्ति चित्र–
दीवार पर बनाये गये चित्र

बंगाल में स्थानीय कलाकारों को, अंग्रेजों की शैली एवं परम्परा को सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा था। चित्र 9 में एक जुलूस की तस्वीर है। स्थानीय कलाकार द्वारा बनाई गई इस तस्वीर में **परिपेक्ष्य विधि** का इस्तेमाल किया गया है। इस चित्र में नजदीक और दूर वाली चीजों के बीच दूरी का बोध कराने के लिए रोशनी और परछाई का उपयोग किया गया है।



चित्र 9 – मुर्शिदाबाद में स्थानीय कलाकार द्वारा निर्मित ईद के जुलूस का चित्र

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना हो जाने के बाद स्थानीय रियासतों के राजे–रजवाड़े और नवाब की स्थिति ऐसी नहीं रह गई थी कि वे कलाकारों को अपने दरबार की सेवा में रख सकें। ऐसे में चित्रकार भी काम की तलाश एवं रोजी–रोटी के लिए अंग्रेजों की शरण में जाने लगे। भारत आए अंग्रेज अधिकारी एवं व्यापारी भी ऐसी तस्वीरें बनवाना चाहते थे, जिससे कि वे भारत को समझ सके। इस प्रकार, हम देखते हैं कि स्थानीय कलाकारों ने पौधों, जानवरों, ऐतिहासिक इमारतों, पर्व–त्यौहारों, व्यवसायों, जाति और समुदायों की तस्वीरें बनाने लगे। इन चित्रों को 'कम्पनी चित्र' के नाम से जाना जाता है।

कई स्थानीय चित्रकार ऐसे भी थे, जो राजदरबार के प्रभावों से मुक्त स्थानीय परिवेश में चित्रकला की स्वतंत्र शैली एवं परम्परा के रूझानों को दर्शा रहे थे। ऐसे ही शैलियों में बिहार की 'मधुबनी पेंटिंग' एक प्रमुख चित्रशैली है। इसमें प्रकृति धर्म और सामाजिक संस्कारों के चित्रों को ग्रामीण परिवेश में उकेरा जा रहा था। आइए, हम देखते हैं, कि मधुबनी पेंटिंग के कलाकार ग्रामीण लोक चित्रकला के रूझानों को किस प्रकार व्यक्त कर रहे हैं।

मधुबनी पेंटिंग

इस लोक काल की ओर कला प्रेमियों एवं पारखियों का ध्यान उस समय आकृष्ट हुआ, जब 1942 ई. में लंदन की आर्ट गैलरी में 'मधुबनी पेंटिंग' की प्रदर्शनी लगाई गई। मधुबनी चित्रकला पूर्णतया एक महिला चित्रकला शैली है। वे इस चित्रकला को पीढ़ी–दर–पीढ़ी विरासत के रूप में छोड़ती गई। इस प्रकार, घर की दीवारों तथा आंगन के फर्श से कपड़ों और कागज पर इसका स्थानांतरण होता गया। अन्य लोक कलाओं की भांति मधुबनी चित्रकला भी विभिन्न पर्व–त्यौहारों, विवाह, पारिवारिक अनुष्ठानों के साथ जुड़ी है। मधुबनी चित्रकला के दो रूप हैं– भित्ति चित्र एवं अरिपन चित्र (भूमि चित्रण)। (चित्र–10)

भित्ति चित्रों में देवी–देवताओं, राधा–कृष्ण की लीला, राम–सीता के कथा के चित्रों को प्रमुखता से दर्शाया गया है। विवाह के अवसर पर घर के बाहर और भीतर की दीवारों पर रति और कामदेव के चित्र तथा पशु–पक्षी के चित्रों को प्रतीक के रूप में चित्रित किया जाता है।

अरिपन चित्रों में आंगन या चौखट के सामने जमीन पर बनाया जाने वाला चित्र है। इन्हें बनाने में पीसे हुये चावल को पानी और रंग में मिलाया जाता है। अरिपन चित्रों के अंतर्गत मनुष्य, पशु–पक्षी, पेड़, फूल, फल, स्वास्तिक, दीप आदि के चित्रों को उकेरा जाता है।

मधुबनी शैली के चित्रों में चित्रित वस्तुओं का मात्र सांकेतिक स्वरूप दिया जाता है। पहले के चित्र मुख्यतः दीवारों एवं फर्शों पर ही बनाये जाते थे। मगर कुछ वर्षों से कपड़े और कागज पर भी चित्रांकन की प्रवृत्ति काफी बढ़ी है। चित्रांकन की सामग्री के नाम पर बांस की कूची और विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक रंग होते हैं। ज्यादातर रंग वनस्पति से प्राप्त किये जाते हैं।

इस चित्रकला के प्रमुख कलाकारों में सिया देवी, कौशल्या देवी, शशिकला देवी, गंगा

देवी, भगवती देवी आदि के नाम लिये जा सकते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यह चित्रकला अपने स्थानीय परिवेश की सीमा को लांघते हुये देश–विदेश में काफी लोकप्रिय हुई है और इसकी प्रदर्शनियाँ आयोजित की गई। जापान के तोकामाची शहर में मधुबनी पेंटिंग का संग्रहालय बनाया गया है।



चित्र 10 – मधुबनी पेंटिंग

राष्ट्रवादी चित्रकला शैली

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक एवं बीसवीं सदी के प्रारंभ में जनसाधारण की तस्वीरों में राष्ट्रवादी संदेश दिये जाने लगे थे। राजा रवि वर्मा उन चित्रकारों में से एक थे, जिन्होंने राष्ट्रवादी कला शैली को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने तैल चित्रकारी की यूरोपीय कला शैली को अपने चित्रकारी का आधार बनाया। उन्होंने रामायण, महाभारत और पौराणिक कहानियों के नाटकीय दृश्यों को किरमिच पर चित्रांकित किया। उनके द्वारा बनाये गये चित्र कला प्रेमियों के बीच काफी लोकप्रिय हुये। चित्रों के प्रति लोगों के आकर्षण को देखते हुए राजा रवि वर्मा ने बम्बई (मुम्बई) में प्रिंटिंग प्रेस लगाई। यहाँ, उनके द्वारा बनाई गई तस्वीरों की छपाई बड़ी संख्या में होने लगी। अब आम लोग भी सस्ती कीमत पर उनके चित्रों को खरीद सकते थे।



चित्र 11 – राजा रवि वर्मा द्वारा बनाया गया तैलचित्र चित्र

कलाकारों का आधुनिक स्कूल

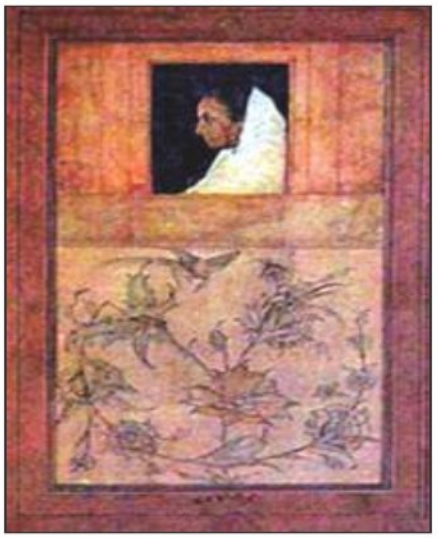
उन्नीसवीं सदी के मध्य में भारत को पश्चिमी शिक्षा से लाभ दिलाने की शैक्षणिक नीति के अंतर्गत सरकार ने कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और लाहौर में कला स्कूलों (आर्ट स्कूल) की स्थापना की। इन स्कूलों में कला के पाश्चात्य तरीकों को ही अध्ययन के विषय के रूप में रखा गया था। ई.वी. हैवेल मद्रास स्कूल ऑफ आर्ट में कला के अध्यापक थे। उन्होंने अवनीन्द्रनाथ टैगोर के सहयोग से भारतीय चित्रकारों का एक अलग समूह बनाया, जिन्हें कलाकारों का आधुनिक स्कूल कहा गया। बंगाल के राष्ट्रवादी कलाकारों का समूह इनके साथ जुड़ने लगा। इस समूह के कलाकारों ने विषयों के चयन एवं तकनीक में अजंता के भित्ति चित्रों, मध्यकालीन लघुचित्रों एवं एशियाई कला आंदोलन को प्रोत्साहित करने वाले जापानी कलाकारों से प्रेरणा ग्रहण की।

एशियाई कला आंदोलन

जापानी कलाकार ओकाकुरा काकुजो ने जापानी कला पर शोध किया और एक ऐसे समय में जापानी कला की परंपरागत तकनीकों को बचाने की जरूरत पर बल दिया जो कि पश्चिमी शैली के कारण खतरे में पड़ती जा रही थी। उन्होंने यह परिभाषित करने का प्रयास किया कि आधुनिक कला क्या होती है और परंपराओं को बनाए रखने तथा आधुनिकीकरण करने के लिए क्या किया जाना चाहिए। वह जापानी कला अकादमी के प्रधान संस्थापक थे। ओकाकुरा ने शांतिनिकेतन का दौरा किया था। रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं अवनीन्द्रनाथ टैगोर पर उनका गहरा प्रभाव था।

चित्र 12 को देखिए। अवनीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा बनाये गये इस चित्र में राजपूत लघुचित्र की शैली का प्रभाव देखा जा सकता है। चित्र 13 में, धुंधली पृष्ठभूमि में हल्के रंगों के उपयोग को देखा जा सकता है। इस चित्र शैली में जापानी कलाकारों के प्रभाव स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हो रहे हैं। चित्र 14 नंदलाल बोस द्वारा बनाया गया है। इस चित्र में आप देख सकते हैं कि नंदलाल बोस ने अपनी तस्वीर में त्रिआयामी प्रभाव पैदा करने के लिए

छायाकरण का इस्तेमाल किया है। नंदलाल बोस के इस चित्र में अजंता की चित्रशैली के प्रभाव को साफ देखा जा सकता है।



चित्र 12 –
मेरी माँ, अवनीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा चित्रित



चित्र 13 – कालिदास की कविता का निर्वासित यक्ष, अवनिंद्र नाथ द्वारा बनाया गया चित्र। यह शैली जापानी जलरंग की तसवीरों में देखा जा सकता है।



चित्र 14 – जातुगृह दाह (पांडवों के वनवास के दौरान लाक्षागृह के जलने का चित्र) नन्दलाल बोस द्वारा चित्रित। अजन्ता के चित्र शैली से प्रभावित

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के बाद कलाकारों का एक पृथक समूह अवनीन्द्रनाथ के कलाशैली से भिन्न विचारों को प्रस्तुत किया। इस समूह के कलाकारों की मान्यता थी कि कलाकारों को प्राचीन कला रूपों के बजाय लोक कला एवं जनजातीय कला शैली से प्रेरणा ग्रहण करना चाहिए। जैसे–जैसे यह बहस और चलता रहा, वैसे–वैसे कला की नई शैलियों एवं परम्पराओं का विकास होता रहा।

– **औपनिवेशिक चित्रकला एवं राष्ट्रवादी चित्रकला में अंतर स्पष्ट करें**

– **कक्षा 7 के इकाई 8 में चित्रित लघुचित्रों को देखकर चित्र 12 की तुलना कीजिए? क्या आपको कोई समानता–असमानता दिखता है?**

भवन निर्माण की नई शैली और नई इमारतें

जब भारत में ब्रिटिश शासन को स्थिरता प्राप्त हुई। तब बुनियादी तौर पर रक्षा, प्रशासन, आवास और वाणिज्य जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भवनों एवं इमारतों की जरूरत पैदा होने लगी। उन्नीसवीं सदी से शहरों में बनने वाली इमारतों में किले, सरकारी दफ्तरों,

शैक्षणिक संस्थान, धार्मिक इमारतें, व्यावसायिक भवन आदि प्रमुख थीं। ये इमारतें अंग्रेजों की श्रेष्ठता, अधिकार, सत्ता की प्रतीक तथा उनकी राष्ट्रवादी विचारों का प्रतिनिधित्व भी करती है। आइए देखें कि इस सोच को अंग्रेजों ने किस तरह अमली जामा पहनाया।

सार्वजनिक भवनों के लिए मोटे तौर पर तीन स्थापत्य शैलियों का प्रयोग किया गया। इनमें से एक शैली को ''ग्रीकों–रोमन स्थापत्य शैली'' कहा जाता था। बड़े–बड़े स्तंभों के पीछे रेखागणितीय संरचनाओं एवं गुम्बद का निर्माण इस शैली की विशेषता थी (आप चित्र 15 को देखें)। यह शैली मूल रूप से प्राचीन रोम की भवन निर्माण शैली से निकली थी, जिसे यूरोपीय पुनर्जागरण के दौरान पुनर्जीवित किया गया। अंग्रेजों ने इस शैली का प्रयोग भारत में शाही वैभव की अभिव्यक्ति के लिए किया था।



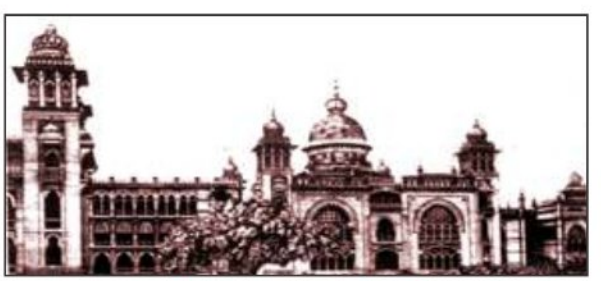
चित्र 15 – सेंट्रल पोस्ट ऑफिस कलकत्ता

एक और शैली जिसका काफी उपयोग किया गया वह 'गॉथिक शैली' थी। ऊँची उठी हुई छतें, नोकदार, मेहराबें, बारीक साज–सज्जा इस शैली की विशेषता थी। गॉथिक शैली का प्रयोग सरकारी इमारतों शैक्षणिक संस्थानों एवं गिरजाघरों में व्यापक पैमाने पर किया गया।



चित्र 16 – विक्टोरिया टर्मिनस रेलवे स्टेशन बम्बई

उन्नीसवीं सदी के आखिर में और बीसवीं सदी की शुरुआत में एक नई मिश्रित स्थापत्य शैली विकसित हुई, जिसमें भारतीय एवं यूरोपीय शैलियों के तत्व विद्यमान थे। इस शैली को



चित्र 17 – मद्रास लॉ कोर्ट

'इंडो–सारासेनिक शैली ' का नाम दिया गया था। 'इंडो' शब्द हिन्दू का संक्षिप्त रूप था जबकि 'सारासेन' शब्द का प्रयोग यूरोप के लोग मुसलमानों को संबोधित करने के लिए करते थे। भारत की मध्यकालीन इमारतों– गुंबदों, छतरियों, जालियों, मेहराबों से यह शैली प्रभावित थी। भारतीय शैली को समावेश करके अंग्रेज यह साबित करना चाहते थे कि वे यहाँ के वैद्य एवं स्वाभाविक शासक हैं।



चित्र 18 – उन्नीसवीं सदी का एक बंगला

यूरोपीय ढंग की दिखने वाली इमारतों एवं भवनों से औपनिवेशिक स्वामियों और भारतीय प्रजा के बीच के अंतर को प्रदर्शित करती है। शुरुआत में ये इमारतें परंपरागत भारतीय इमारतों एवं भवनों के मुकाबले अजीब सी दिखाई देती थी। लेकिन धीरे–धीरे भारतीय भी यूरोपीय स्थापत्य शैली के आदि हो गए और उन्होंने इसे अपना लिया। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने अपनी जरूरतों के मुताबिक कुछ भारतीय शैलियों को अपना लिया। इसकी एक मिसाल उन बंगलों को माना जा सकता है, जिन्हें पूरे देश में सरकारी अफसरों के आवास के लिए बनाया जाता था। बंगाल के परंपरागत फूँस की बनी झोपड़ी को अंग्रेजों ने उसे अपनी जरूरतों के हिसाब से बदल लिया था। औपनिवेशिक बंगला एक बड़ी जमीन पर बना होता था। परंपरागत ढलवां छत, चारो तरफ बना बरामदा और उसके पीछे घर बना होता था। बंगले के परिसर में घरेलु नौकरों के लिए अलग से क्वार्टर होते थे।

– आप अपने गाँव, कस्बा एवं शहर में स्थित भवन एवं इमारतों की सूची बताएँ एवं यह बताएँ कि उनका निर्माण किस स्थापत्य शैली में हुआ है।

साहित्य में राष्ट्रवादी विचार

भारतीय स्वाधीनता संघर्ष (इसकी चर्चा अगले इकाई में करेंगे) में साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में जब राष्ट्रवादी विचार उभार लेने लगा, तब विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने साहित्य को देश भक्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए

प्रयोग में लाने लगे। दरअसल इनमें से अधिकांश साहित्यकारों का यह विश्वास था कि वे गुलाम देश के नागरिक हैं। अतः उनका यह कर्तव्य है कि वे इस प्रकार के साहित्य का सृजन करें जो उनके देश की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेगा। साहित्य में पराधीनता के बोध तथा स्वतंत्रता की जरूरत को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलने लगी थी। इतना ही नहीं, साहित्य ने देश की आजादी के लिए जनसाधारण को हर प्रकार से बलिदान करने के लिए उत्प्रेरित किया। सुविधा की दृष्टि से हमारी चर्चा मुख्य रूप से तीन भाषाओं– बांगला, हिन्दी एवं उर्दू तक सीमित होगी।

बांग्ला साहित्य

आधुनिक बांग्ला साहित्य के महान् साहित्यकार बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय (1838–1894) के उपन्यास अपने देशवासियों में देशभक्तिपूर्ण भावनाओं को जाग्रत करने में लगे हुये थे। उन्होंने देशवासियों को अपने देश की मौजूदा दयनीय स्थिति के कारणों पर विचार करने के लिए बाध्य किया। अपने प्रसिद्ध गीत 'वन्दे मातरम्' के साथ 'आनंदमठ' देशभक्तों के लिए प्रेरणास्रोत बन गया। 'आनंदमठ', आजादी के उन दीवाने देशभक्त और क्रांतिकारी व्यक्तियों की गाथा है, जो वंदेमातरम् का जयघोष करते हुए देश की स्वतंत्रता के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दिया।

'आर्थिक राष्ट्रवाद' के प्रवर्तक के रूप में विख्यात रमेश चन्द्र दत्त (1848–1909) को अपनी रचना की प्रेरणा उन्हें **'साहित्यिक देशभक्ति'** से मिली थी। रमेश चन्द्र दत्त, ऐसे हिन्दू थे जिन्हें अपनी परम्परा एवं संस्कृति से लगाव था। उन्होंने अपने उपन्यास 'समाज' में प्राचीन भारतीय अतीत को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने इस उपन्यास में ऐसे भारतीय राष्ट्रवाद का चित्रण किया है जो हिन्दुओं पर केन्द्रित था। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि रमेश चन्द्र सम्प्रदायवादी थे। यहाँ हिन्दू आदर्श को प्रस्तुत करने के पीछे इस बात को प्रकाश में लाना था कि उस समय भारतीय राष्ट्रवाद में ऐसी संभावनाएँ निहित थीं जो सम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को जन्म दे सकती थीं। अतः रमेश चन्द्र को उनके समय की प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति देने वाले प्रतिनिधि के रूप में देखा और समझा जाना चाहिए।

आर्थिक राष्ट्रवाद :– अंग्रेजी शासन की आर्थिक आलोचना के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद की आर्थिक बुनियाद तैयार करने का प्रयास।

साहित्यिक देशभक्ति :– देशभक्तिपूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य को माध्यम बनाना।

बांग्ला उपन्यासकार ताराशंकर बंद्योपाध्याय (1898–1971) की 1947 से पूर्व की रचनाओं पर दृष्टि डालना काफी उपयोगी होगा। विशेषकर 'गणदेवता' एवं 'पंचग्राम' उपन्यास में उन्होंने शोषण एवं औद्योगिकीकरण के कारण ग्रामीण समाज के विघटन को दिखाया है। इस शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध निर्धन ग्रामीणों के संघर्ष का भी वर्णन किया है, जो अन्ततः असफल होता है। यह असफलता इसलिए नहीं कि प्रभावी वर्ग शक्तिशाली था। बल्कि इसलिए कि औद्योगिकीकरण की वास्तविकता के समक्ष ग्रामीण सामाजिक जीवन एवं अर्थव्यवस्था टिकी नहीं रह सकती।

हिन्दी साहित्य

भारतेन्दु (1850–1885) हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग के प्रवर्तक रहे हैं। अपने देश और समाज से लोगों को अवगत कराने के लिए उन्होंने विभिन्न साहित्यिक विद्याओं–कविता, नाटक, निबंध लिखा। भारतेन्दु द्वारा सृजित साहित्य का एक बड़ा भाग पराधीनता के प्रश्न से संबंधित है। अपने प्रसिद्ध नाटक 'अंधेर नगरी चौपट राजा' एवं 'भारत दुर्दशा' में उन्होंने अंग्रेजी शासन के शोषक चरित्र को उजागर करने के लिए ऐसी लोक कथा का उपयोग किया, जो देश के विभिन्न भागों में सामान्य रूप से प्रचलित थी। अनेक राष्ट्रवादी नेताओं एवं लेखकों ने भारतीय धन के लूट के माध्यम से ब्रिटिश शासन के शोषण का पर्दाफाश किया। भारतेन्दु ने भी कविता के माध्यम से भारतीय धन के लूट को इस प्रकार व्यक्त किया है।

कल के कल बल छलन सों छले इते के लोग
नित–नित धन सों घटत है बढ़त है दुःख सोग।।

मारकीन मलमल बिना चलत कुछ नहिं काम
परदेशी जुलाहन के मानहु भये गुलाम।।

———

भीतर–भीतर सब रस चूसै।

हंसि हंसि के तन–मन–धन मुसै।

जाहिर वातन में अति तेज।

क्यों राखि साजन नहिं अंगरेज।

बीसवीं सदी के प्रारंभिक दो दशकों तक शोषण, आजादी एवं पराधीनता के प्रति वैचारिक रवैया आम तौर पर वही था, जो उन्नीसवीं सदी के दौरान उभरा था। लेकिन प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) के बाद परिस्थितियाँ तेजी से बदलीं। अब मुद्दा केवल भारत की स्वतंत्रता का नहीं रहा वह तो किसी भी कीमत पर लेनी ही थी। अब स्वाधीनता का मूल अर्थ और मुख्य उद्देश्य चर्चा का मुख्य आधार बन गये और 'आजादी किसके लिए' जैसे प्रश्न उठने लगे। जैसा कि प्रेमचंद की एक कहानी 'आहूति' में रूपमति कहती है– ''कम से कम मेरे लिए स्वराज का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जाए। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिये हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ायेगी कि वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं। अगर स्वराज आने पर भी संपत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा लिखा समाज यों स्वार्थान्ध बना रहे तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज का न आना ही अच्छा।''

प्रेमचंद ने राष्ट्रवादी नेताओं के स्वार्थपरता एवं भोग–विलास का स्पष्ट रूप से पर्दाफाश किया है। उनका मानना था कि यदि देश के नेता सही नहीं होंगे तो भारत की स्वाधीनता का क्या लाभ? प्रेमचंद के उपन्यास 'गबन' (1931) में इस चिंता के महत्व को उजागर किया गया है। देवीदीन जो एक पक्का राष्ट्रवादी है, नेताओं से कहता है– ''अभी जब तुम्हारा राज नहीं है, तब तो तुम भोग–विलास पर इतना मरते हो। जब तुम्हारा राज हो जायेगा तब तो तुम गरीबों को पीस कर पी जाओगे।''

लेकिन राष्ट्रवादी राजनीति का सबसे निराशाजनक पहलु 'गोदान' में परिलक्षित होता है। राय साहब जो कि एक धनी जमींदार है, सत्याग्रह में शामिल होते हैं तथा बेईमानी से उद्देश्यपूर्ति के लिए धन का उपयोग करते हैं। खन्ना, जो कि महाजन, व्यापारी और उद्योगपति हैं, आंदोलन में भाग लेकर फिर ऐसे तरीकों से धन बनाने में लग जाते हैं जिन्हें जायज नहीं कहा जा सकता। ओंकारनाथ पत्रकार हैं जो अपने संपादकीय लेखों में आग उगलते हैं लेकिन बुनियादी रूप में स्वार्थी हैं जिनके लिए राष्ट्रवाद स्वार्थ पूर्ति का एक साधन है।

–साहित्य में किन राष्ट्रवादी तत्वों को उजागर किया गया है, कक्षा में चर्चा करें?

उर्दू भाषा

आपने मध्यकाल के इतिहास को पढ़ते समय यह जाना कि एक साझा संस्कृति का देश में विकास हुआ जिसे गंगा–जमुना संस्कृति भी कहा जाता है। इसके अनेक उदाहरणों में उर्दू भाषा भी शामिल है। उर्दू भाषा की उत्पत्ति पंजाब के क्षेत्र में ग्यारहवीं शताब्दी ई. में हुई और मध्यकाल में इसका धीरे–धीरे विकास हुआ। अठारहवीं शताब्दी तक यह एक साहित्यिक भाषा बन चुकी थी जिसमें फारसी और कुछ भारतीय भाषाओं के शब्द शामिल थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब राष्ट्रीय आंदोलन ने जोर पकड़ा तो उत्तर भारत में सबसे अधिक प्रचलित भाषा उर्दू ही थी, जिसे हम 'हिन्दुस्तानी' भी कहते हैं। शायद आप जानते हैं कि उर्दू और हिन्दी के बहुत सारे शब्द समान हैं और इनमें मुख्य अंतर लिपि का है। हिन्दी देवनागरी लिपि में, और उर्दू फारसी लिपि में उस समय लिखी जाती थी।

दिलचस्प बात यह है कि उस समय उत्तर भारत में अधिकतर समाचार–पत्र और पत्रिकाएं उर्दू भाषा में ही प्रकाशित होते थे। 1857 के संघर्ष के समय दिल्ली से प्रकाशित होने वाले ''देहली अखबार'' और लखनऊ से प्रकाशित ''तिलिस्म'' जैसे अखबार आज प्रमुख ऐतिहासिक स्रोत हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख नेता, मौलाना अबुल कलाम आजाद ने उर्दू में कई समाचार–पत्र निकाले जिनमें ''अल–हिलाल'' और ''अल–बलाग'' काफी महत्वपूर्ण

थे। इनके अलावा भी कई दूसरे अखबार उर्दू में निकाले जाते थे जिनके माध्यम से देश–प्रेम की भावना का प्रचार हुआ और अंग्रेजों के शासन के अन्याय और दमन के खिलाफ लोगों में चेतना जगायी गयी। आप जानते होंगे कि ''इंकलाब जिन्दाबाद'' (क्रांति अमर रहे) का नारा उर्दू जबान का ही है।

उर्दू भाषा के अखबारों के साथ–साथ उर्दू कविता के माध्यम से भी देश–प्रेम और सामाजिक सौहार्द का पैगाम घर–घर पहुँचाया गया। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में अल्लामा इकबाल ने **''सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा''** कविता की रचना की, तो पटना के बिस्मिल अजीमाबादी ने लिखा–

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजूए कातिल में है।

ऐसी अनेक मिसालें आपको देखने को मिलेंगी जब देश की आजादी के लिए प्राण निछावर करने वालों ने ऐसे शेर और गीत दुहराते हुए मौत को गले लगाया। उर्दू भाषा आज भी लोकप्रिय है और हमारी दूसरी सरकारी भाषा भी है।

अभ्यास

आइये फिर से याद करें :

1. सही या गलत बताएँ :

(i) साहित्य में पराधीनता के बोध एवं स्वतंत्रता की जरूरतों को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलने लगी थी।

(ii) प्रेमचंद ने 'आनंदमठ' की रचना की थी।

(iii) रमेश चन्द्र दत्त के उपन्यास में हिन्दू समर्थक प्रवृति देखने को मिलती है।

(iv) भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने भारतीय धन के लूट को नाटक के माध्यम से पर्दाफाश किया है।

(v) 'वंदे मातरम्' गीत की रचना बंकिमचन्द्र चटर्जी ने की थी।

2. रिक्त स्थानों को भरें:

(क) लकड़ी या धातु के छापे से कागज पर बनाई गई तस्वीर को ..... कहा जाता है।

(ख) औपनिवेशिक काल में बनाये गये छविचित्र ..... होते थे।

(ग) अंग्रेजों की विजय को दर्शाने के लिए ..... की चित्रकारी की जाती थी।

(घ) एशियाई कला आंदोलन को प्रोत्साहित करने वाले ..... कलाकार थे।

3. निम्नलिखित के जोड़े बनाएं :

(क) सेन्ट्रल पोस्ट ऑफिस कलकत्ता	(i) गोथिक शैली
(ख) विक्टोरिया टर्मिनस रेलवे स्टेशन बम्बई	(ii) इंडो सारासेनिक शैली
(ग) मद्रास लॉ कोर्ट	(iii) इंडो ग्रीक शैली

आइए विचार करें:

(i) मधुबनी पेंटिंग किस प्रकार की कला शैली थी। इसके अंतर्गत किन विषयों को ध्यान में रखकर चित्र बनाये जाते थे?

(ii) ब्रिटिश चित्रकारों ने अंग्रेजों की श्रेष्ठता एवं भारतीयों की कमतर हैसियत को दिखाने के लिए किस तरह के चित्रों को दर्शाया है?

(iii) 'उन्नीसवीं सदी की इमारतें अंग्रेजों की श्रेष्ठता, अधिकार, सत्ता की प्रतीक एवं उनकी राष्ट्रवादी विचारों का प्रतिनिधित्व करती है।' इस कथन के आधार पर स्थापत्य कला शैली की विशेषताओं का वर्णन करें?

(iv) साहित्यिक देशभक्ति से आप क्या समझते हैं। विचार करें?

(v) 'मॉडर्न स्कूल ऑफ आर्टिस्टस से जुड़े भारतीय कलाकारों ने राष्ट्रीय कला को प्रोत्साहित करने के लिए किन विषयों को चयन किया। चित्र 12, 13, 14 के आधार पर वर्णन करें?

आइए करके देखें

(i) आप अपने गाँव या शहर के आस–पास मौजूद भवन निर्माण शैली पर ध्यान दें, जो पाठ में दिये गये भवन एवं इमारत से मिलती–जुलती हो। आप उस भवन का एक स्केच तैयार कर उसकी निर्माण शैली की विशेषताओं का वर्णन करें?

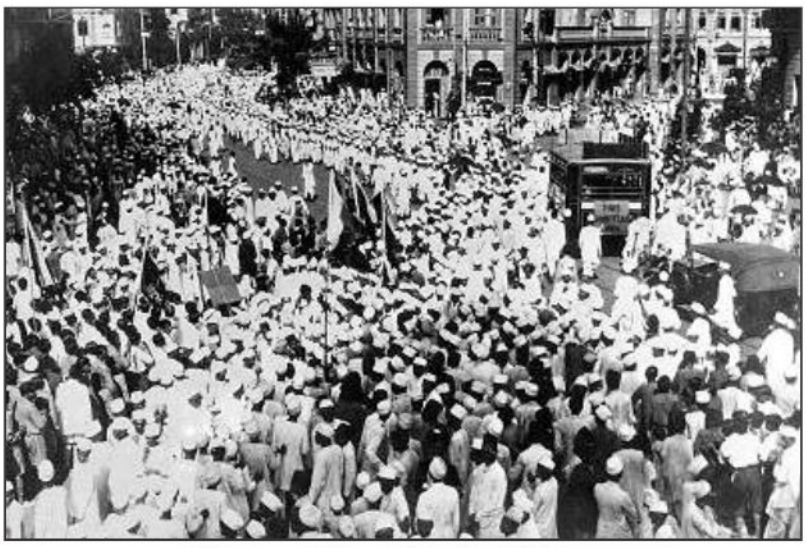
(ii) विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रकाशित राष्ट्रीय विचारों को प्रोत्साहित करने वाले कविता, कहानी, गीत का संकलन कर उसे कक्षा में प्रदर्शित करें?

अध्याय - 12

राष्ट्रीय आन्दोलन 1885-1947

आपने पिछले अध्यायों में पढ़ा है कि भारत में अंग्रेजों का आगमन कैसे हुआ? उनके द्वारा जो प्रशासनिक व्यवस्था कायम की गई वह कैसे भारतीयों के लिए शोषणकारी सिद्ध हुई? उनके द्वारा कैसे अपना हित साधने के लिए भारत में सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षणिक सुधार का ताना–बाना बुना गया, जिसने भारत की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को तो समाप्त किया ही, सामाजिक एवं धार्मिक सद्भाव को भी समाप्त कर दिया। साथ ही, शोषणकारी एवं विभेदकारी नीतियों ने 1857 के विद्रोह को भी जन्म दिया।

आपने ऐसा महसूस किया होगा कि भारतीयों में भारी असंतोष व्याप्त था। राष्ट्रवादी अब नहीं चाहते थे कि अंग्रेज भारत में बिना रोक टोक शासन करें। भारतीय अब संगठित रूप से अंग्रेजों का विरोध करना चाहते थे। शुरुआती वर्षों में कुछ संगठनों की स्थापना हुई जिनके प्रभाव क्षेत्रीय स्तर तक ही सीमित रहे। लेकिन इनके उद्देश्य संपूर्ण राष्ट्रहित में थे। इन संगठनों के द्वारा देश के भिन्न–भिन्न भागों में भारतीय जनता को सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से जागरूक करने का प्रयास किया गया।



चित्र 1 – राष्ट्रीय आंदोलन में आंदोलित जनसमुदाय

भारत के महत्वपूर्ण शुरुआती राजनैतिक संगठन

1. 1851–52 – ब्रिटिश भारत के तीनों प्रोविन्स में शुरू में अलग–अलग तीन संगठनों का गठन हुआ जिसके सदस्य मुख्यतः अंग्रेज और भारतीय जमीन्दार थे। बंगाल में **ब्रिटिश–इंडियन एसोसिएशन**, मद्रास में **मद्रास नेटिव एसोसिएशन** और बम्बई में **बम्बई एसोसिएशन**।
2. 1867– **पूना सार्वजनिक सभा** की स्थापना **महादेव गोविन्द रनाडे** ने किया। इसके सदस्य मध्यमवर्गीय सामान्य लोग थे।
3. 1876– **इंडियन एसोसिएशन** की स्थापना **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** द्वारा **कलकत्ता** में की गई। इस के सदस्य भी पढ़े लिखे आम लोग थे।
4. 1878– **नेटिव प्रेस** और **पोलिटिकल एसोसिएशन कान्फ्रेंस,** कलकत्ता का गठन।
5. 1883– **अखिल भारतीय सम्मेलन** में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा कुछ पढ़े लिखे भारतीयों को बुलाया गया।
6. 1884– **मद्रास महाजन सभा** का गठन किया गया। इसके अधिकांश सदस्य मध्यमवर्ग के लोग थे।
7. 1885– **इलाहाबाद पीपुल्स एसोसिएशन, बम्बई प्रेसीडेंट एसोसिएशन**। संस्थानों के सदस्य भी मध्यमवर्ग के लोग थे।
8. 28 दिसम्बर 1885– **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना।**

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस – 28 दिसम्बर 1885

1850 के बाद राजनीतिक संगठनों से जुड़े लोगों के मन में देश के प्रति एक सोच विकसित हुई। इन लोगों की नजर में भारत में निवास करने वाले सभी वर्ग, धर्म, रंग, जाति, भाषा एवं लिंग समूह के लोग भारतीय हैं, और **भारत** इन भारतीयों का घर है। यहाँ के संसाधन एवं व्यवस्था पर **भारतीयों** का हक होना चाहिए। जब तक अंग्रेज यहाँ से बाहर नहीं

जाएँगे **भारत, भारतीयों का नहीं हो सकता है।** इसी तरह अपने देश के प्रति लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास होने लगा और 'राष्ट्रवाद' का जन्म हुआ। धीरे–धीरे इन संगठनों की राष्ट्रवादी चेतना और गहरी होती गई। इस भावना का आधार यह सोच थी कि भारतीयों को, भारत और यहाँ के लोगों के बारे में सोचने–समझने और काम करने की आजादी होनी चाहिए। इस तरह भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना जगी। इसे पनपने में कई कारणों ने मिल–जुलकर भूमिका निभाई।

भारत में अंग्रेजी राज की औपनिवेशिक नीतियों ने अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए भारत का आर्थिक शोषण करना शुरू किया। इंगलैन्ड ने अपनी औद्योगिक जरूरतों के लिए सस्ते कच्चे माल के निर्यात और तैयार माल के लिए बाजार (खरीददार) के रूप में भारत का उपयोग शुरू किया। उदाहरण स्वरूप इंगलैन्ड ने अपने कपड़ा उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए भारत से निर्यात होनेवाले कपड़ों पर भारी मात्रा में टैक्स लगाए जबकि इंगलैंड में तैयार माल को कर में राहत प्रदान की। अंग्रेजों का सिविल एवं सैन्य प्रशासन काफी खर्चीला था। ऊँचे पदों पर भारतीयों की बहाली न करके अंग्रेजों की ही बहाली की जाती थी और उन्हें मोटी तन्ख्वाह दी जाती थी। अपनी तनख्वाह की सारी रकम वे इंगलैन्ड भेज देते थे। भारतीय मामलों से जुड़े इंगलैन्ड में काम करने वाले अफसर को भी भारत से ही पैसा दिया जाता था। इन आर्थिक शोषणों के कारण भारत में अकाल साल–दर साल पड़ने लगा क्योंकि भारतीय कृषक अपनी जरूरतों के अनुसार अनाज का उत्पादन नहीं करते थे बल्कि इन्हें इंगलैन्ड की जनता एवं उद्योगों को ध्यान में रखकर वस्तुओं का उत्पादन करना पड़ता था। भारतीय नेताओं ने अंग्रेजों की भारत विरोधी आर्थिक नीति को ही दरिद्रता के लिए जिम्मेवार बताया। इनके अनुसार स्वदेशी माल और स्वराज ही समस्या का एक मात्र समाधान था।

अंग्रेजों ने संपूर्ण भारत को अपने हित में राजनीतिक रूप से एकीकृत किया। भारत की राजनीतिक एकता ने देश के हर कोने के लोगों को मिलने–जुलने का अवसर प्रदान किया। अंग्रेजों ने राजनीतिक एकता स्थापित करने के साथ ही प्रशासनिक एकरूपता भी

कायम की। समूचे भारत में एक ही तरह की न्यायिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। अंग्रेजों ने संपूर्ण भारत को सड़क, तार एवं रेलवे के माध्यम से एकसूत्र में बाँधा। परिवहन के साधनों एवं प्रशासनिक एकरूपता में अलग–अलग जगहों पर रहनेवालों को मिलने–जुलने एवं ब्रिटिश प्रशासन की शोषणकारी नीतियों पर विचार विमर्श का मौका दिया। फलस्वरूप भारत में राष्ट्रवाद की भावना को संगठित होने के लिए एक मंच मिला।

अंग्रेजी शिक्षा ने भारत में आधुनिक राष्ट्रवाद की भावना को सशक्त बनाया। पाश्चात्य शिक्षा प्रणली ने संपूर्ण भारत को एक नया बुद्धिजीवी वर्ग दिया जो पाश्चात्य विचारों स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की भावना से प्रेरित था। अंग्रेजी भाषा के रूप में शिक्षित भारतीयों को एक संपर्क भाषा मिली जिसके माध्यम से वे अपनी समस्याओं एवं विचारों से संपूर्ण भारत में एक दूसरे को अवगत करा सकते थे।

अंग्रेजों के आगमन के पश्चात भारत में आधुनिक समाचार पत्रों का विकास हुआ सस्ते समाचार पत्र लोगों तक पहुँचने लगे। धीरे–धीरे भारतीय लोगों के द्वारा भी समाचार पत्र छापे जाने लगे। इन समाचार पत्रों ने अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों को उजागर किया। समाचार पत्रों के माध्यम से जब अंग्रेजों के अत्याचार एवं शोषण का पर्दाफाश होने लगा तो अंग्रेजों ने **वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (1878)** के माध्यम से प्रतिबंधात्मक कार्रवाई की ताकि इनका प्रसार रुक जाए। लेकिन प्रतिबंध के बावजूद भी भारतीय समाचार पत्र अपने मिशन (कार्य) में लगे रहे। अखबार अब लाखों लोगों तक पहुँचने लगे। अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध समाचार पत्रों ने जनमत बनाने एवं राष्ट्रीयता के प्रसार में मुख्य भूमिका अदा की।

(देशी भाषा) वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (1878) के द्वारा भारतीय भाषाओं में छपने वाले अखबारों पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

इंडियन मिरर, बंगाली, केसरी, मराठी, हिन्दू, पैट्रियट, अमृत बाजार पत्रिका इत्यादि अनेक अंग्रेजी समाचार पत्र एवं भारतीय भाषा के समाचार पत्रों ने अंग्रेजों के कुकृत्यों को प्रकाशित तो किया ही, साथ–साथ प्रतिनिधियों के द्वारा शासन की व्यवस्था, स्वतंत्रता एवं लोकतांत्रिक विचारों को आमलोग के बीच लोकप्रिय बनाया। इस प्रकार भारतीय समाचार

पत्र राजनीतिक प्रशिक्षण एवं राष्ट्रवादी विचारों के फैलाव के मुख्य हथियार के रूप में काम करने लगे।

कुछ अंग्रेज विद्वानों जैसे विलियम जोंस, मैक्समूलर आदि ने शोध एवं उत्खनन के बाद प्राचीन भारतीय संस्कृति के समृद्ध एवं बहुमूल्य धरोहरों को उजागर करने का सफल प्रयास किया। यूरोपीय विद्वानों ने वेदों, उपनिषदों आदि की व्याख्या से यह साबित करने का प्रयास किया कि भारतीय आर्य उसी मानव शाखा के लोग हैं जिनसे यूरोपीय जातियाँ उपजी हैं। इससे भारतीयों में, जो कुंठाग्रस्त थे, आत्मविश्वास जगा। शिक्षित भारतीयों ने अपनी पुरानी परम्परा, रीतिरिवाजों एवं सामाजिक प्रथाओं का पुनः परीक्षण करना शुरू किया। इन लोगों ने भारतीय समाज की बुराइयों को दूर करने का भी प्रयास किया। उपरोक्त परिस्थितियों के आलोक में जब भारत में राष्ट्रवादी विचार एक आकार लेने लगा तभी आई०सी०एस० (अब आई०ए०स०) में भर्ती होने की आयु घटाकर 21 वर्ष से 19 वर्ष कर दी गई ताकि भारतीय शिक्षित युवक परीक्षा में शामिल ही न हो सकें।

भारतीय शस्त्र अधिनियम बनाकर भारतीयों को नियंतित्र एवं प्रताड़ित करने का प्रयास किया गया। इन कार्यों ने अंग्रेजों के प्रति असंतोष को बढ़ावा दिया। कई राजनीतिक संस्थाओं का जन्म हुआ एवं सरकार विरोधी आन्दोलन चले।


चित्र 2 – कांग्रेस के संस्थापक सदस्य

लार्ड रिपन ने जाति भेद पर आधारित न्यायिक असमानता को दूर करने का प्रयास किया। इसने इलबर्ट–बिल के माध्यम से भारतीय जिला एवं सत्र न्यायाधीश को भी वही शक्तियाँ तथा अधिकार प्रदान किए, जो यूरोपीय न्यायाधीशों को मिले हुए थे। यह व्यवस्था यूरोपीयों को पसंद नहीं आई और इन लोगों ने इलबर्ट–बिल का संगठित विरोध किया; फलतः

वायसराय को यह बिल वापस लेना पड़ा। इस घटना ने यह सिद्ध कर दिया कि भारतीयों को यूरोपीयों के बराबर दर्जा हासिल नहीं है। साथ ही साथ संगठित विरोध के बाद सरकार किसी निर्णय को वापस लेने पर बाध्य हो सकती है।

इस प्रकार उपरोक्त सारे कार्यों एवं परिस्थितियों ने राष्ट्रवादी भावना के साथ एक राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता को अपरिहार्य बना दिया। फलतः 28 दिसम्बर 1885 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना बम्बई के गोकुल दास कॉलेज के हॉल में भारत के विभिन्न भागों से आए 72 प्रतिनिधियों के द्वारा की गई।

कांग्रेस के शुरुआती नेताओं में दादाभाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, बदरूद्दीन तैयबजी, डब्लू०सी० बनर्जी, आर०सी० दत्त और एक साल बाद शामिल होनेवाले सुरेन्द्र नाथ बनर्जी जैसे पढ़े–लिखे और दूरदर्शी व्यक्ति थे। इन नेताओं ने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए ए०ओ० ह्यूम जैसे अवकाश प्राप्त अंग्रेज अधिकारी को अपना मुख्य संगठन कर्त्ता बनाया।

कांग्रेस के शुरुआती दिन– कांग्रेस अपने शुरू के दिनों में राष्ट्रीय चेतना के फैलाव का हर संभव प्रयास करना चाहती थी क्योंकि अंग्रेज–प्रशासक भारत को राष्ट्र के रूप में मानते ही नहीं थे। वे सिर्फ भारत को एक भौगोलिक शब्दावली के रूप में परिभाषित करते थे क्योंकि भारत उनकी नजर में अलग–अलग धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों एवं भाषा भाषियों का समूह था। कांग्रेसी नेताओं ने इसका खण्डन नहीं किया बल्कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोखले, तिलक आदि नेताओं ने भारत को बनता हुआ राष्ट्र बताया।

कांग्रेस के नेताओं का मानना था कि भारत की सांस्कृतिक विभिन्नताओं को देखते हुए सावधानी पूर्वक राष्ट्रीय एकता की कोशिश की जाए। यह तय किया गया कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बारी–बारी से देश के भिन्न–भिन्न हिस्सों में आयोजित किए जाएँ और अध्यक्ष उस क्षेत्र का न हो जहाँ अधिवेशन हो रहा हो।

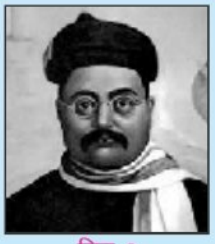
कांग्रेस ने यह तय किया कि किसी भी प्रस्ताव को पारित करने में अल्पसंख्यकों के विचारों को ध्यान में रखा जाए तथा कॉन्सिल में उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या आबादी के अनुपात से कम न हो। शुरुआती दौर से ही राष्ट्रवादी नेता धर्मनिरपेक्षता के प्रबल

पक्षधर थे। कांग्रेस यह भी चाहती थी कि राजनीतिक कार्यकर्ता संगठित होकर अखिल भारतीय स्तर पर अपनी गतिविधि चलाएँ।

कांग्रेस में शुरुआती दिनों में बिहार के प्रतिनिधि

कांग्रेस की स्थापना के समय बिहार से कोई प्रतिनिधि तो शामिल नहीं था लेकिन कलकत्ता के दूसरे अधिवेशन 1886 में कुल 16000 रुपये खर्च हुए जिसमें 2500 रुपये का सहयोग अकेले दरभंगा महाराज लक्ष्मेश्वर सिंह द्वारा किया गया। हथुआ एवं डुमराँव महाराज ने भी सहयोग प्रदान किया। द्वितीय अधिवेशन में डेलीगेट के रूप में बिहार से शालीग्राम सिंह एवं विशेश्वर सिंह (कुल्हड़िया स्टेट) जिनके नाम पर ही बी०एन० कॉलेज है, शामिल हुए थे एवं पूर्णेन्दु नारायण सिन्हा एवं गजाधर प्रसाद जो पेशे से वकील थे।

गोपाल कृष्ण गोखले – जहाँ तक हो सके हमें ज्यादा से ज्यादा लोगों में राष्ट्रीय चेतना पैदा करनी चाहिए और इसे बढ़ावा देना चाहिए ताकि धर्म, जाति और वर्ग की विभिन्ताओं को परे रखकर वे एक जुट हो सकें।



चित्र 3

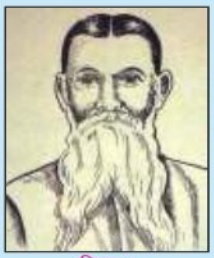
शुरू में कांग्रेस के लिए जनांदोलन, लामबंदी आदि चलाना नामुमकिन था अतः इन्होंने राजनीतिक चेतना जगाने और जनमत बनाने के लिए मध्यमवर्गीय लोगों से संपर्क शुरू किया जो धीरे–धीरे आम लोगों तक पहुँचा।

दादाभाई नौरोजी – हम यहाँ एक राजनीतिक संगठन के रूप में इकट्ठे हुए हैं ताकि हम अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं से अपने शासकों को अवगत करा सकें।



चित्र 4

डब्लू०सी० बनर्जी – **कांग्रेस का उद्देश्य भाईचारे के माध्यम से भारतीय जनता के बीच सभी तरह के जाति वर्ग और क्षेत्रीय पूर्वाग्रहों को समाप्त करना और देश के लिए काम करनेवालों के बीच भाईचारे और दोस्ती का और मजबूत बनाना है।**



चित्र 5

कांग्रेस के नेताओं ने लोगों को यह समझाया कि हम एक राष्ट्र हैं और उपनिवेशवाद हमारा दुश्मन। इसी दुश्मन के खिलाफ हमारा संघर्ष है। यह सही है कि उस समय के नेताओं ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ कोई जनान्दोलन नहीं चलाया लेकिन उन्होंने उपनिवेशवाद के खिलाफ वैचारिक लड़ाई की शुरुआत अवश्य की। कांग्रेस ने तत्कालीन राजनीतिक विचारधाराओं सामाजिक वर्गों और समूहों को अपने साथ जोड़कर राष्ट्रवाद को आन्दोलन के रूप में स्थापित किया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कांग्रेस ने अपनी प्रारंभिक अवस्था में लोकतांत्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष आन्दोलन की आधारशिला रखी। जनता में राजनीतिक चेतना पैदा की और उसे राजनीतिक रूप से शिक्षित किया। अपने प्रथम बीस वर्षों में कांग्रेस ने आन्दोलन की जमीन तैयार करने का काम किया।

स्वराज की चाहत – 19वीं सदी के अंतिम दशक आते–आते कांग्रेस के ही बहुत सारे नेता ब्रिटिश–शासन विरोधी राजनीतिक तौर तरीकों से असहमत दिखने लगे थे। वे कांग्रेस की प्रार्थना और प्रतिवेदन की नीति के प्रबल विरोधी थे। इस तरह की विचारधारा का नेतृत्व बंगाल में बिपिन चन्द्र पाल, पंजाब में लाला लाजपत राय तथा महाराष्ट्र में बालगंगाधर तिलक कर रहे थे। इन्होंने (प्रार्थना) निवेदन की बजाए रचनात्मक कार्यों एवं आत्मनिर्भरता पर जोर दिया। इन्हें अंग्रेजों की न्यायप्रियता एवं नेक इरादों पर कोई भरोसा नहीं था वे



लाल–बाल–पाल

चित्र 6

संगठन को ताकतवर और संगठित बनाना चाहते थे ताकि 'स्वराज' के लिए अंग्रेजों से लड़ सकें। तिलक ने नारा दिया **"स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।"** इन नेताओं ने गाँव–गाँव जाकर लोगों को संगठित किया तथा स्वराज के साथ–साथ स्वदेशी की महत्ता पर भी बल दिया।

प्रार्थना एवं प्रतिवेदन की नीति क्या है? शिक्षकों से चर्चा करें।

बंग–भंग एवं स्वदेशी आन्दोलन – लार्ड कर्जन ने राष्ट्रीय भावना को कमज़ोर करने के लिए 1905 में बंगाल के विभाजन का आदेश निकाला। उस समय बंगाल के अन्तर्गत बंगलादेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार और झारखण्ड के प्रदेश थे। अंग्रेजों का तर्क था कि चूँकि यह प्रांत काफी बड़ा है अतः 'प्रशासनिक सुविधा के लिए बंगाल का विभाजन अनिवार्य है। लेकिन इस विभाजन के पीछे छिपी हुई मंशा थी कि एकीकृत बंगाल, जो कांग्रेस अथवा राष्ट्रीय आंदोलन का गढ़ था उसे सामुदायिक आधार पर हिन्दू बहुल पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड एवं उड़ीसा में तथा मुस्लिम बहुल पूर्वी बंगाल को एक दूसरे से विभाजित किया जाय। इस विभाजन में बंगला भाषी क्षेत्र को दो भागों में विभाजित किया गया तथा भिन्न भौगोलिक तथा भाषायी स्थिति रखनेवाले बिहार, उड़ीसा एवं झारखण्ड को पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत रखा गया।

राष्ट्रवादी एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने कर्जन के इस कार्य का विरोध करने का निर्णय लिया। 16 अक्टूबर 1905 को विभाजन लागू होने के दिन समूचे बंगाल में **शोक दिवस** मनाया गया। लोगों ने उपवास रखे। बंगाल की गलियों में 'वंदे मातरम्' के नारे गूँज उठे। कलकत्ता के टाउन हॉल में एक सभा हुई, जिसमें तिलक भी उपस्थित थे। लोगों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार एवं स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का संकल्प लिया। छात्रों ने स्कूलों एवं कॉलेजों तथा वकीलों ने न्यायालयों का बहिष्कार किया। स्वदेशी आंदोलन में महिलाओं ने भी बढ़–चढ़कर भाग लिया। स्वदेशी आन्दोलन को देश के कोने–कोने में राष्ट्रवादियों ने फैलाने का निर्णय लिया। बंगाल से बाहर स्वदेशी आंदोलन का नेतृत्व तिलक और लाला लाजपत राय के हाथों में था।

सरकार ने दमन का सहारा लिया। आम सभाओं पर प्रतिबंध लगा दिए गए, अखबारों पर जुर्माना लगाया गया और राष्ट्रीय नेताओं को गिरफ्तार किया गया। तिलक को राजद्रोह के आरोप में फँसाकर 6 वर्षों के कारावास की सजा दी गई। आंदोलन धीरे–धीरे कमजोर पड़ता गया लेकिन युवा राष्ट्रवादियों में आक्रोश बरकरार था। ये लोग अंग्रेज अफसरों की हत्या करके उनके दमन का जबाव देना चाहते थे।

साम्प्रदायिकता का बीजारोपण– अंग्रेजों ने बंगाल विभाजन से प्रयोग में लाई गई साम्प्रदायिकता की नीति को आगे बढ़ाते हुए 1906 में मुसलमान जमींदारों एवं नवाबों द्वारा ढाका में स्थापित ऑल इंडिया मुस्लिम लीग के गठन में भरपूर मदद की। लीग ने बंगाल विभाजन को जायज बताया। लीग ने मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचक मंडल की मांग की जिसे 1909 में सरकार ने मान लिया। आरक्षित सीटों से चुनकर आनेवाले मुसलमान प्रतिनिधि सिर्फ अपने ही समुदाय के लोगों के हित एवं स्वार्थ की बात करने लगे। इसी समय पंजाब में हिन्दू सभा नामक राजनैतिक दल का गठन किया गया। इसका विस्तार हिन्दू महासभा के रूप में 1915 में किया गया। दोनों दल परस्पर विरोधी विचारधारा रखने वाले थे जिससे आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन साम्प्रदायिक विचारों से कमजोर हुआ।

अतिवादी क्रांतिकारी – ब्रिटिश सत्ता से असंतुष्ट युवा वर्ग में अतिवादी विचार भी पनपने लगा था। यह युवा क्रांतिकारी आवश्यकता पड़ने पर हिंसा का रास्ता अपनाने को भी तैयार थे। खुदीराम बोस राष्ट्रीय आंदोलन में बम की राजनीति का प्रारंभ करने वाले प्रथम क्रांतिकारी थे। इनके पहले अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्रांतिकारियों द्वारा पिस्तौल का ही इस्तेमाल किया जाता था। खुदीराम बोस का मकसद आजादी के लिए संघर्ष करनेवालों को यातना देने वाले अंग्रेज अधिकारियों को सबक सिखाना था। मुजफ्फरपुर के जिला न्यायाधीश डी०एच० किंग्सफोर्ड की हत्या की जिम्मेवारी इन्हें दी गई। इन्होंने गलती में



चित्र 7 – खुदीराम बोस

किंग्सफोर्ड की जगह प्रिंगले केनेडी की बग्घी पर 30 अप्रील 1908 को बम फेंक दिया। बग्घी में सवार केनेडी की बेटी घटनास्थल पर ही मर गई और अस्पताल में केनेडी की पत्नी ने दम तोड़ दिया। खुदीराम बोस रातो–रात मीलों पैदल चलकर बैनी रेलवे स्टेशन पहुँचे। कुछ लोगों द्वारा इस घटना की चर्चा चल रही थी जिसपर खुदीराम बोस अचानक बोल पड़े ''क्या किंग्सफोर्ड नहीं मरा?'' वहाँ के लोगों को इन पर शक हुआ और ये पकड़े गये। मुकदमा चलाकर इन्हें 11 अगस्त 1908 को फाँसी दे दी गई।

मुजफ्फरपुर बम काण्ड से एक नई राजनैतिक चेतना का प्रारंभ हुआ। इस घटना के सम्बन्ध में 22 जून 1908 को केसरी के सम्पादकीय में तिलक ने लिखा कि 1897 को जब पूना में प्लेग कमिश्नर रैण्ड की हत्या चापेकर बंधुओं द्वारा की गई थी उसके बाद मुजफ्फरपुर बम विस्फोट की घटना तक कोई ऐसा महत्वपूर्ण काम नहीं हुआ जो अधिकारियों का ध्यान प्रजा के तरफ खींचता। दोनों घटनाओं में काफी अंतर है। अगर काम को साहसपूर्वक सही अंजाम देने की दृष्टि से देखा जाए तो चापेकर बंधुओं के काम को बंगाल की घटना से श्रेष्ठतर मानना होगा। चापेकर बंधु और बंगाल के क्रांतिकारियों द्वारा की गई हत्याएँ साधारण हत्याओं से भिन्न थीं क्योंकि अंजाम देने वाले समझते थे कि वे राष्ट्रहित में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

यद्यपि मुजफ्फरपुर और पूना की दोनों घटनाओं का उद्देश्य एक ही था लेकिन मुजफ्फरपुर की घटना का दृष्टिकोण व्यापक था, क्योंकि पूना के प्लेग कमिश्नर की हत्या का कारण पूना की अव्यवस्था और अत्याचार था जबकि मुजफ्फरपरु की घटना का कारण बंगाल का विभाजन था।

पृथक निर्वाचक मंडल – किसी खास धर्म और जाति के लोगों का चुनाव अपने जाति या धर्म के लोगों द्वारा किया जाना।

साम्प्रदायिकता – किसी सम्प्रदाय द्वारा अपने राजनैतिक स्वार्थों की प्राप्ति के लिए धार्मिक भावनाओं का इस्तेमाल

गांधी का आगमन

दक्षिण अफ्रिका में सत्याग्रह का सफल प्रयोग करने के बाद महात्मा गांधी 1915 में भारत लौटे। गांधी जी ने अंग्रेजों की नस्लभेदी नीति के खिलाफ अहिंसक आंदोलन चलाकर दक्षिण अफ्रिका के लोगों के हक की लड़ाई लड़ी थी। दक्षिण अफ्रिका में उनके संघर्षों एवं उनकी सफलता ने भारत में उन्हें काफी लोकप्रिय बना दिया था।



चित्र 8 – दक्षिण अफ्रिका में गाँधी जी

सत्याग्रह– शोषण एवं अन्याय के विरुद्ध अहिंसक तरीके से न्याय की मांग।
नस्ल भेद– शारीरिक रंग एवं बनावट के आधार पर लोगों के बीच भेदभाव

गांधी जी ने तत्कालीन परिस्थितियों को समझने के लिए पूरे देश का दौरा किया और साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) को स्थापित किया। गांधी जी के आगमन के समय भारत में होमरूल आंदोलन पूरे जोर पर था लेकिन वे इसमें शरीक नहीं हुए। वे होमरूल आंदोलनकारियों के इस विचार के विरोधी थे कि अंग्रेजों के लिए कोई भी मुसीबत उनके लिए अवसर है। इसी रणनीति के तहत होम रूल आंदोलन छेड़ा गया था। गांधी जी नरमपंथी राजनीति में भी आस्था नहीं रखते थे। गांधी जी सिर्फ सत्याग्रह में विश्वास रखते थे। वे किसी भी संगठन में अपनी शर्तों पर शामिल होना चाहते थे।

भारत में सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग–चंपारण

गांधी जी ने राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा से जुड़ने के पहले स्थानीय समस्याओं को लेकर चंपारण (बिहार), अहमदाबाद और खेड़ा में आंदोलन का नेतृत्व किया। चंपारण और खेड़ा तो किसानों का आंदोलन था लेकिन अहमदाबाद आंदोलन औद्योगिक मजदूरों से संबंधित था।

सबसे सफल कहानी बिहार के चंपारण की है। 19वीं सदी के आरंभ में ही चंपारण के किसानों के साथ अंग्रेज बगान मालिकों ने एक समझौता किया था। इस फैसले के तहत बीघे के तीन कट्ठे (3/20) में किसानों को नील की खेती अनिवार्य रूप से करनी पड़ती थी। इसे

'तीन कठिया पद्धति' भी कहते थे। लेकिन 19वीं सदी के अंत में जर्मनी के रासायनिक रंगों ने नील की मांग को अंतर्राष्ट्रीय बाजार से बाहर कर दिया। किसान नील की मांग घट जाने के कारण खेती नहीं करना चाहते थे। लेकिन अंग्रेज बगान मालिकों ने समझौते से मुक्त करने के लिए कई तरह की अनुचित शर्तें रखी। किसानों के विरोध एवं तंगहाली के बावजूद अंग्रेज जमींदार किसानों को लूटते रहे।


चित्र 9 – चंपारण में गांधी

चंपारण के किसानों को जमींदारों के चंगुल से मुक्त करने के लिए राजकुमार शुक्ल ने कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गांधी जी से चंपारण आने का आग्रह किया। गांधी जी जब किसानों की समस्याओं को समझने के लिए चंपारण पहुँचे तो कमिश्नर ने उन्हें वापस जाने का आदेश दिया लेकिन गांधी जी ने इसे मानने से इंकार कर दिया और किसी भी दण्ड को भुगतने का फैसला किया। भारत सरकार गांधी जी को अब तक विद्रोही नहीं मानती थी और इस मुद्दे को तूल देना नहीं चाहती थी, अतः उसने स्थानीय प्रशासन को अपना आदेश वापस लेकर गांधी जी को चंपारण के गाँवों में जाने की छूट देने का निर्देश दिया।

गांधीजी अपने सहयोगियों ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, महादेव देसाई, जे०बी० कृपलानी एवं बिहार के स्थानीय नेताओं के साथ घूम–घूमकर उनकी समस्याओं को जानने का प्रयास करते एवं बयान दर्ज करते। सरकार ने भी मामले की छान–बीन के लिए कमिटी गठित की जिसका सदस्य गांधी जी को भी बनाया। गांधी जी आयोग को समझाने में सफल रहे कि तीनकठिया व्यवस्था समाप्त हो तथा बगान मालिकों द्वारा अवैध रूप से वसूली रकम वापस की जाए। बगान मालिक 25 प्रतिशत रकम वापस करने पर सहमत हुए। गांधी जी मान गए क्योंकि इनकी नजर में यह भी बगान मालिकों के लिए बहुत बड़ी बेइज्जती थी। शर्मिन्दगी से एक दशक के अन्दर ही बगान मालिक चंपारण छोड़कर चले गए।

चंपारण की सफलता के बाद अहमदाबाद के मजदूरों ने भी मद्द मांगी। वे विश्वयुद्ध

के कारण बढ़ती महंगाई को लेकर वेतन–वृद्धि की मांग कर रहे थे लेकिन मिल मालिक मजदूरों की मांगों पर ध्यान नहीं दे रहे थे। गांधी जी ने शांतिपूर्ण हड़ताल का सुझाव दिया लेकिन बगैर वेतन के मजदूर लंबे समय तक हड़ताल नहीं कर सकते थे। इस परिस्थिति में गांधी जी ने स्वयं भूख हड़ताल पर बैठने का निर्णय लिया। गांधी जी की भूख हड़ताल से घबराकर मिल मालिकों ने मजदूरों का वेतन बढ़ाने का निर्णय ले लिया।

गांधी जी ने भारतीय राष्ट्रवादियों को सत्याग्रह का शस्त्र दिया। शांतिपूर्वक हड़ताल और उपवास के माध्यम से अंग्रेजी साम्राज्यवाद का राष्ट्रवादियों ने डटकर मुकाबला किया।

"मोतिहारी में अपने प्रवेश पर कमिश्नर द्वारा पाबंदी लगाए जाने संबंधी सरकारी आदेश के उत्तर में मोतिहारी के जिलाधिकारी को 6 अप्रैल 1917 को गाँधी जी ने अपने पत्र में स्पष्ट शब्दों में कहा कि सार्वजनिक हित और जिम्मेदारी की भावना में विश्वास रखते हुए उनके लिए चम्पारण जिला छोड़ना संभव नहीं है और सरकारी आदेश के उल्लंघन के लिए सरकार उन्हें जो भी सजा देगी वे उसे मानने के लिए सहर्ष तैयार हैं।"

रॉलेट सत्याग्रह

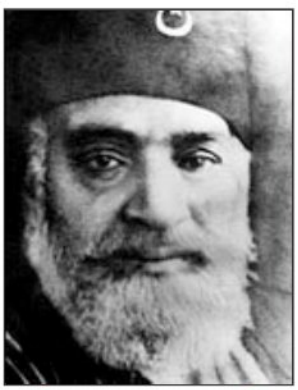


चित्र 10 – जालियाँवाला बाग हत्याकांड

राष्ट्रीय आंदोलन में प्रवेश के साथ ही जहाँ गांधी जी ने चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद के आंदोलन के माध्यम से लोगों को विरोध के लिए सत्याग्रह का संदेश दिया। वहीं प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उपजे असंतोष को दबाने के लिए अंग्रेजों ने दमन का सहारा लिया। इन्होंने मार्च 1919 में रॉलेट ऐक्ट नामक कानून बनाया जिसमें सन्देह के आधार पर किसी व्यक्ति को अनिश्चित समय तक गिरफ्तार किया जा सकता था। गांधी जी ने रॉलेट ऐक्ट के विरोध में 6 अप्रील 1919 को 'राष्ट्रीय अपमान दिवस' मनाने का निर्णय लिया। राष्ट्रव्यापी विरोध एवं प्रदर्शन हुए। इसी क्रम में पंजाब के दो नेताओं सैफुद्दीन किचलू

एवं सत्यपाल को गिरफ्तार कर लिया गया। पंजाब के लोग विरोध प्रदर्शन के लिए 13 अप्रील 1919 (वैशाखी के दिन) को बड़ी संख्या में जालियाँवाला बाग (अमृतसर) में जमा हुए। लोग सभा कर ही रहे थे कि पुलिस ने बिना चेतावनी के भीड़ पर गोली चलानी शुरू कर दी। सैकड़ों लोग मारे गए एवं हजारों की संख्या में घायल हुए। सारे देश में इस घटना ने लोगों को आंदोलित कर दिया।

खिलाफत और असहयोग



चित्र 11 – मुहम्मद अली



चित्र 12 – शौकत अली

प्रथम विश्वयुद्ध में पराजय के बाद तुर्की के खलीफा को पद से हटा दिया गया था। दुनिया के अन्य हिस्सों के मुसलमानों की तरह भारतीय मुसलमान भी ऑटोमन साम्राज्य के पवित्र इस्लामिक स्थलों पर खलीफा का नियंत्रण ही देखना चाहते थे। भारतीय मुसलमानों ने मुहम्मद अली एवं शौकत अली के नेतृत्व में अंग्रेजों की वादा खिलाफी के विरुद्ध खिलाफत आंदोलन की शुरुआत की। गांधी जी ने इसे हिन्दू मुस्लिम एकता के अवसर के रूप में देखते हुए जालियाँवाला बाग हत्याकांड और खिलाफत के मामले में हुए अत्याचार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन चलाकर स्वराज की मांग का आह्वान किया।

खलीफा – मुसलमानों का धार्मिक एवं राजनीतिक रूप से प्रधान व्यक्ति।

अगस्त 1920 को गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन चलाने का निर्णय लिया गया। असहयोग आंदोलन के दरम्यान सरकारी पदवियों को छोड़ने का निर्णय लिया गया। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने 'नाइट' एवं महात्मा गांधी ने 'कैसरे–हिन्द' की उपाधि त्याग दी। चुनावों का मतदाओं द्वारा बहिष्कार किया



चित्र 13 – चरखा चलाते हुए गांधी जी

गया। वकीलों से न्यायालय छोड़ने का आह्वान किया गया। मोतीलाल नेहरू, सी०आर० दास, राजगोपालाचारी एवं आसफअली जैसे वकीलों ने वकालत छोड़ दी। विद्यार्थियों ने स्कूलों एवं कॉलेजों को छोड़ दिया। लोगों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का निर्णय लिया। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। इंगलैंड से आयातित वस्त्रों की मात्रा में भारी गिरावट हुई। पूरे देश की जनता आंदोलित हो उठी।

जनभागीदारी

देश के भिन्न–भिन्न हिस्सों में लोगों ने गांधी जी के विचारों को स्थानीय मुद्दों से जोड़कर आंदोलन चलाया। खेड़ा (गुजरात) के किसानों ने अंग्रेजों द्वारा थोपे गए लगान के खिलाफ आंदोलन चलाया। तमिलनाडु में शराब दुकानों की घेराबंदी, आंध्रप्रदेश में वन सत्याग्रह तो पंजाब में अकालियों ने गुरुद्वारे में बैठे हुए भ्रष्ट महंतों को हटाने के लिए आंदोलन चलाया। असहयोग आंदोलन का बिहार में भी जबरदस्त प्रभाव था। ब्रजकिशोर प्रसाद के सुझाव पर स्वराज के मुद्दे को भी असहयोग आंदोलन में शामिल कर लिया गया। मजहरुल हक ने राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधियों को संचालित करने के लिए खैरू मियाँ की जमीन पर बिहार विद्यापीठ एवं सदाकत आश्रम को स्थापित किया। मजहरुल हक ने असहयोग के कार्यक्रम के प्रचार एवं हिन्दू–मुस्लिम एकता कायम करने के उद्देश्य से **दि मदरलैंड** नामक अखबार सदाकत आश्रम से निकाला।



चित्र 14 – आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी



चित्र 15 – मजहरुल हक

22 दिसम्बर 1921 को ब्रिटिश युवराज का पटना में आगमन हुआ उस दिन शहर में हड़ताल मनाई गई। असहयोग आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर आते–आते हिंसक हो गया। 5 फरवरी 1922 को आंदोलनकारियों की भीड़ ने चौरी–चौरा पुलिस थाना (उत्तर प्रदेश) पर हमला करके 22 पुलिसकर्मियों को जिन्दा जला दिया। गांधी जी हिंसक आंदोलन के

खिलाफ थे फलतः इन्होंने 6 फरवरी 1922 को अंदोलन समाप्ति की घोषणा कर दी।

झंडा सत्याग्रह – झंडा सत्याग्रह का प्रारंभ 13 अप्रील 1923 से शुरू हुआ जब अंग्रेजी प्रशासन ने लोगों को झंडा लेकर चलने से रोक दिया। कांग्रेसियों ने हुक्म मानने से इन्कार करते हुए नागपुर में सत्याग्रह करने का निश्चय किया।

न्यायाधीश के मनाही पर भी डी०एस०पी० ने भीड़ पर हमला बोल दिया। कई लोग गिरफ्तार किए गए। जमनालाल बजाज कमिटी ने 1 मई 1923 से झंडा सत्याग्रह करने का निश्चय लिया इस सत्याग्रह में देश के अन्य हिस्सों के साथ–साथ बिहार के लोग भी गए। यह आंदोलन 109 दिनों तक चला और 1560 सत्याग्रहियों को सजाएँ हुईं। धीरे–धीरे सरकार का रूख नरम हुआ और तिरंगा लेकर चलने की आज्ञा दे दी गई।

शहीद हरदेव ने तिरंगे के सम्मान में शहादत दी

नागपुर झंडा सत्याग्रह में देश के कोन–कोने से सत्याग्रही पहुँचने लगे। बिहार से सत्याग्रहियों को भेजने की जिम्मेवारी राजेन्द्र बाबू की थी। बिहारी सत्याग्रहियों के जत्थे में एक युवक हरदेव नारायण सिंह भी थे जो पटना जिला के अकबरपुर–पालीगंज पथ पर अवस्थित गाँव तोरणी के रहने वाले थे। वे परिवार छोड़कर अपने साथियों अवधबिहारी सिंह, व्यास सिंह, हरदेव सिंह आदि के साथ नागपुर पहुँचे। यहाँ 18 जून 1923 को इन लोगों को कैद कर लिया गया और एक वर्ष की सश्रम कारावास की सजा सुनायी गई। खान–पान की कठिनाइयों के कारण इनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। साथी सत्याग्रहियों ने ब्रिटिश अधिकारियों से माफी मांग जेल से छूटने की सलाह दी। लेकिन इन्होंने माफी मांगने से इनकार कर दिया। इनकी मृत्यु नागपुर जेल में ही हो गई। उस समय राजेन्द्र बाबू भी उसी जेल में बंद थे। हरदेव नारायण सिंह का शव राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल, चितरंजन दास आदि को सौंपा गया। दाह–संस्कार सबों ने मिल कर किया। अपने शहीद पुत्र की याद में पिता चंद्रिका सिंह जीवन पर्यन्त तिरंगा अपने कंधे पर ढोते रहे।

अगली लड़ाई की तैयारी में

असहयोग आंदोलन की समाप्ति (1922) के बाद कांग्रेस का अधिवेशन गया में सम्पन्न हुआ। गांधी जी ने अपने अनुयायियों को सुदूर देहातों में रचनात्मक कार्य करने का संदेश दिया। जबकि चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू जैसे नेताओं ने पार्टी को परिषद् के चुनाव में भाग लेने का पक्ष लिया। इनका तर्क था परिषद् के माध्यम से सरकार की नीतियों को प्रभावित करना चाहिए। इसी बिन्दु पर मतभेद के बाद चितरंजन दास एवं मोतीलाल नेहरू ने फरवरी 1923 में स्वराज दल का गठन किया। पटना में ही इसकी आरंभिक बैठक हुई लेकिन बिहार में डा० राजेन्द्र प्रसाद आदि के प्रभाव के कारण स्वराज दल असफल रहा।

असहयोग आंदोलन के स्थगन के बाद जनता के बीच उपजी असंतोष की भावना का लाभ उठाने के उद्देश्य से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी एवं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (आर०एस०एस०) का गठन हुआ। क्रमशः एक पार्टी सर्वहारा (जनसाधारण) वर्ग की प्रतिनिधि थी तो दूसरी खुद को हिन्दुवादी और उग्रराष्ट्रवादी संगठन मानती थी। इसी दौरान सरदार भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी राष्ट्रभक्तों ने **हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी** का गठन किया। इसी दशक के अंतिम वर्ष में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव भी पारित किया गया एवं 26 जनवरी 1930 को लाहौर में रावी नदी के तट पर स्वतंत्रता दिवस मनाया गया।


BOMB OUTRAGE IN AS B

TWO YOUTHS WITH REVOLVERS UNDER POLICE ARREST

House Disperses in Panic

SIR G. SCHUSTER, SIR B. DALAL AND OTHER M. L. As INJURED

"Red" Warning to Government

"YOU CAN KILL MEN BUT NOT IDEAS"

"बहरे कानों को सुनाने के लिए धमाके की जरूरत होती है। इंक़लाब ज़िंदाबाद!"

भगत सिंह और उनके साथियों जैसे क्रांतिकारी राष्ट्रवादी औपनिवेशिक शासन तथा आमिर शोषक वर्ग से लड़ने के लिए मजदूरों और किसानों को क्रांति चाहते थे। इस काम को पूरा करने के लिए उन्होंने 1928 में दिल्ली स्थित फिरोजशाह कोटला में हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एचएसआरए) की स्थापना की थी। एचएसआरए के सदस्यों ने लाला लाजपत राय पर लाठीचार्ज करने वाले सांडर्स नामक पुलिस अफसर की हत्या की थी। इसी लाठीचार्ज के कारण बाद में लाजपत राय की मृत्यु हो गई थी।

अपने साथी राष्ट्रवादी बी.के. दत्त के साथ भगत सिंह ने 8 अप्रैल 1929 को केन्द्रीय विधान परिषद् में बम फेंका था। क्रांतिकारियों ने अपने पर्चे में कहा था कि उनका मकसद किसी की जान लेना नहीं बल्कि "बहरों को सुनाना है", विदेशी सरकार को उसके द्वारा किए जा रहे भयानक शोषण से अवगत कराना था। इसी आरोप में भगत सिंह पर मुकदमा चलाया गया और 23 साल की उम्र में उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

चित्र 16

जब बिहार के सपूत ने भगत सिंह की हत्या के जिम्मेदार को मार डाला 'वैकुण्ठ शुक्ल'



चित्र 17 – वैकुण्ठ शुक्ल

वैकुण्ठ शुक्ल का जन्म 1910, मुजफ्फरपुर (अब वैशाली) के जलालपुर गाँव में हुआ था। इन्होंने प्राथमिक शिक्षा अपने गाँव में ही ग्रहण कर मथुरापुर गाँव के लोअर प्राइमरी स्कूल के शिक्षक बने। इन्होंने 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया इन्हें गिरफ्तार कर पटना कैंप जेल में रखा गया। 1931 में गाँधी इरविन समझौते के बाद अन्य सत्याग्रहियों के साथ रिहा किए गए। बाद में हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के संपर्क में आकर क्रांतिकारी बन गए। फनीन्द्र नाथ घोष जो बेतिया का निवासी था, जब दल विरोधी कार्य करने लगा तब इसकी हत्या के कार्यक्रम में इन्होंने सक्रिय योगदान दिया था। फनीन्द्र नाथ घोष ने सरकार की तरफ से अनेको राजनीतिक षड़यंत्रों में गवाही दिया–लाहौर षड़यंत्र कांड में भी वह मुख्य मुखबिर था। इसने 1930 में भगत सिंह, राजगुरू तथा सुखदेव के खिलाफ गवाही दी जिसके कारण ही उन्हें फाँसी की सजा मिली थी।

फनीन्द्र नाथ घोष पर हमला वैकुण्ठ शुक्ल तथा चन्द्रमा सिंह के द्वारा 9 नवम्बर 1932 को हुआ जब वह मीना बाजार की अपनी दूकान के सामने बैठकर अपने दोस्त के साथ बातचीत कर रहा था। इस पर हमला धारदार हथियार से हुआ। घायल फनीन्द्र नाथ 17 नवम्बर 1932 को मर गया।

भागते वक्त वैकुण्ठ शुक्ल का झोला छूट गया जिसमें रखी धोती ने वैकुण्ठ शुक्ल तक पुलिस को पहुँचने में मद्द की। वैकुण्ठ शुक्ल 6 जुलाई 1933 को सोनपुर–हाजीपुर पुल के पास पुलिस दल द्वारा गिरफ्तार किए गए। सत्र न्यायालय ने वैकुण्ठ शुक्ल को फाँसी की सजा दी। उच्च न्यायालय ने भी सजा बरकरार रखी। फलतः 14 मई 1934 को गया जेल में फाँसी दे दी गई।...

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी एवं आर० एस० एस० की विचारधारा की चर्चा अपने शिक्षक से करें।

दाण्डीमार्च : जब गांधी निकल पड़े नमक कानून तोड़ने के लिए

सरकार ने नमक के उत्पाद एवं बिक्री पर एकाधिकार स्थापित कर टैक्स लगाया जिससे सरकार को अच्छी आमदनी होती थी। इस कानून से देश का हर व्यक्ति (गरीब–अमीर, महिला–पुरुष, ऊँच–नीच) प्रभावित था। गांधी जी ने नमक कानून को राष्ट्रीयता की भावना से जोड़ा, वे मानते थे कि यह प्रकृतिप्रदत्त चीज है और बिना कर के सबके लिए सुलभ होना चाहिए। अतः गाँधी जी ने नमक कानून के विरोध में सविनय अवज्ञा का निश्चय किया इन्होंने अपने सहित 79 साथियों के साथ 12 मार्च 1930 को साबरमती आश्रम से दाण्डी (समुद्र तट के किनारे) के लिए नमक कानून तोड़ने निकल पड़े। 6 अप्रील 1930 को दाण्डी पहुँचकर गांधी जी ने सार्वजनिक रूप से नमक इकट्ठा कर नमक कानून को तोड़ा। गांधी जी ने पानी उबालकर भी नमक बनाया। देखते–देखते यह आंदोलन पूरे भारत में फैल गया इस आंदोलन में किसानों, महिलाओं एवं आदिवासियों ने भी बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया।



चित्र 18

सरकार ने दमनात्मक कार्रवाई करते हुए हजारों सत्याग्रहियों को जेल में डाल दिया। लेकिन उन्हें भी अब जनता की ताकत का एहसास होने लगा था। फलस्वरूप 1935 में प्रांतीय स्वायत्ता अधिनियम के द्वारा प्रांतों में लोकप्रिय सरकार के गठन का प्रावधान किया। इसी प्रावधान के तहत तत्कालीन 11 प्रांतों में से 7 प्रांतों में 1937 में कांग्रेस की चुनी हुई सरकार बनी। दो वर्ष बाद द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ जाने के कारण कांग्रेस ने युद्ध के बाद भारत को आजाद करने की शर्त पर युद्ध में सहयोग की बात की। लेकिन अंग्रेजी सरकार ने यह बात नहीं मानी, जिससे 1939 में कांग्रेसी सरकारों ने इस्तीफा दे दिया।

प्रांतीय स्वायतता– संघ के अन्दर रहते हुए अपने राज्य क्षेत्र में जनहित में स्वत्रंत निर्णय लेने का अधिकार।

अंग्रेजों भारत छोड़ो –1942

द्वितीय विश्वयुद्ध से उपजी परिस्थितियों में महात्मा गांधी ने अंग्रेजों को **भारत छोड़ने की चेतावनी** दी। इसके लिए गांधी जी ने जनता को **'करो या मरो'** का नारा दिया। हालाँकि गांधी जी ने बम्बई के ग्वालिया टैंक मैदान से 8 अगस्त को अहिंसक संघर्ष का ही आह्वान किया था लेकिन अंग्रेजी सरकार ने दमनात्मक कार्रवाई करते हुए गांधी जी सहित कांग्रेस के सभी वरिष्ठ नेताओं को जेल में डाल दिया। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद जनता और उग्र हो गयी। किसानों, विद्यार्थियों एवं महिलाओं की भागीदारी ने आंदोलन को काफी उग्र और ताकतवर बना दिया। सत्ता और संचार के प्रतीक चिह्नों पर कब्जा कर स्थानीय लोगों ने अपनी सरकार का गठन किया।

बिहार में जब 80 थानों पर जनता का कब्जा हो गया....

पटना जिला के पालीगंज में जबरदस्त संगठन रहने के कारण थाना को झुकना पड़ा और 14 अगस्त को थाना में ताला लगा दिया गया। 15 अगस्त को दरोगा जी ने स्वयं 'इंकलाब जिन्दाबाद का नारा लगाते हुए झंडा फहराया। आज ही के दिन एक जत्था उलार से अरवल की ओर बढ़ा जा रहा था, उस जत्था पर पुलिस की ओर से अचानक गोली चलायी गई, जिसमें रामकृत सिंह (कोरडा–रानीपुर के रहने वाले थे) की बाँह में गोली लगी। वहाँ से उन्हें घायल–अवस्था में पालीगंज अस्पताल में लाया गया जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी। इस बहादुर का हजारों व्यक्तियों ने गाजे–बाजे के साथ महबलीपुर के समीप सोन नदी में अंतिम संस्कार किया।

अंग्रेजों ने दमन का सहारा लेते हुए 90,000 लोगों को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। हजारों लोग पुलिस की गोली से मारे गए। बहुत जगहों पर हवाई जहाज से भी गोलियाँ बरसाई गईं, लेकिन अंग्रेजी सरकार को आंदोलन ने झुकने पर बाध्य कर दिया।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान पटना के हालात को दर्शाती हुई एक चिट्ठी जिसे डा० यू० एन० शाही ने अपनी नवविवाहिता पत्नी को भेजा–

वन्दे मातरम्

पटना
31.08.42

प्रिये,

कई दिन हुए तेरी चिट्ठी मिली, पर पत्रोत्तर नहीं दे सका था। इसका पहला कारण तो आत्म–विस्मरण ही कहा जाएगा और दूसरा उसे तुझतक पहुँचाने के साधन की कमी। रामफल बा के आगमन ने दूसरे का हल दे दिया है। अतः कुछ लिखने बैठा हूँ। अब तक किसी तरह शरीर से अच्छा रहा हूँ। किंतु यह नही कहा जा सकता है कि यह कितने दिनों के लिए है। यूँ तो यह कहना अत्यंत ही कठिन है कि कब किसको क्या होगा; पर आज की दुनिया में यह बिल्कुल एक असंभव सा हो गया है। किसी के जान माल का कोई ठिकाना नहीं है और उसमें उसकी बात क्या पूछना जिसने पंडित जवाहर लाल नेहरु के शब्दों में ''अपनी छोटी नइया को जला दी है और समुद्र की उछलती–कूदती पागल तरंगों पर कूद गया है।'' उसे नहीं मालूम कि उसकी क्या गति होगी। गत् 8 तारीख को ही यहाँ के सभी कॉलेजों में ताला लग गया। अब तो वहाँ विद्यार्थियों की जगह गोरे सिपाही डटे हैं। यहाँ की और खबरें चाचा जी, सबों से सुन लेना। अभी कोई खास हल्ला–गुल्ला यहाँ नहीं हैं। सेक्रेटेरियट पर झंडा फरहारने में गोलियाँ चली और हममें से 11 वीर शहीद हो गए; करीब 22 घायल हुए। इन्ही वीरों की मृत आत्मा की पुकार ने यहाँ की जनता में आग लगा दी और आगे की बात का क्या पूछना। सरकार का हर एक काम बंद हो गया। गोली हँसते–हँसते सहने वालों में मेरा एक पुराना साथी भी था, और वह यहाँ मेरे ही साथ एक रूम में रहता था। पर इसकी मुझे तकलीफ नहीं है, परंतु गौरव है। बहुतों ने लाठियाँ खाईं कोड़े सहे। 'बड़ी

माय' के भतीजे के लड़के ने भी लाठियों से सर फोड़वाया। राम बाबू 11 तारीख को ही गिरफ्तार कर लिया गया। पटने की ही बात नहीं है देश के कोने–कोने में यही रास रचा है। एक तरफ निहत्थी जनता अपने मानवोचित अधिकार के लिए अंहिसात्मक तरीके से लड़ाई लड़ रही है और दूसरी ओर आधुनिक अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित दानवीय शक्ति बंदूक, मशीनगनों और बमों से उन्हें दबाने की भरपूर चेष्टा कर रही है। फिर शहीदों की संख्या की गणना क्या? मुझे विश्वास है कि हमारी कुर्बानियाँ कभी निष्फल नहीं जाएँगी। यहाँ एक ऐसी आग जली है जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अवश्य ही खाक में परिणत कर देगी। अंग्रेजों का पाप और अनाचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है। अब अवश्य ही इसका अंत होगा। और अधिक लिखने का मौका नहीं है। मैं यहाँ गत 13 तारीख से करीब नजरबंद हूँ। यह मुझे बुरी तरह खलती है। देखो क्या होना है? तुमसे अलग होते समय मैंने तुम्हें इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर न्याय और बलिदान की कुछ कहानियाँ कही थीं। समझाया भी था। किसी पत्र में भी कुछ लिखा था। उन्हें ही याद रखो। त्याग ही संसार की सबसे बड़ी अनुभूति है। पुराने आदर्शों की स्मृति और आज का दृश्य मुर्दों के भी दिल में आग जलाने के लिए काफी है। फिर हम तुम तो ज़िंदों में हैं। ईश्वर हमें भी इसके लिए भी दिल दें दिमाग दें और साहस से त्याग तथा बलिदान की भावना दें।

आशा है तुम भी अच्छी होगी।

तेरा

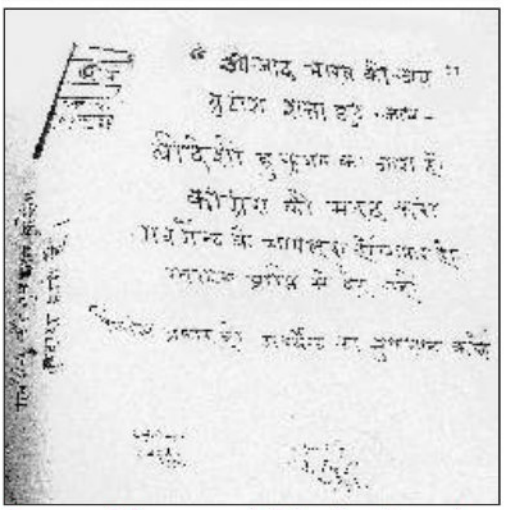
उपेन्द्र

बिहार में भारत छोड़ो– 8 अगस्त को भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित होने के अगले दिन पटना के जिलाधिकारी डब्लू० जी० आर्चर ने राजेन्द्र प्रसाद को गिरफ्तार कर लिया। 11 अगस्त को विद्यार्थियों के एक जुलूस ने सचिवालय भवन के सामने विधानमंडल के भवन

पर राष्ट्रीय झंडा फहराने का प्रयास किया। अधिकारियों के आदेश पर पुलिस फायरिंग में सात छात्र मारे गए और अनके घायल हुए। मरनेवाले छात्रों में उमाकांत सिंहा, रामानंद सिंह, सतीश प्रसाद झा, देवीपद चौधरी, राजेन्द्र सिंह, रामगोविंद सिंह तथा जगपति कुमार थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस स्थान पर शहीद स्मारक का निर्माण हुआ। इसका अनावरण, देश के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के द्वारा किया गया।



आजाद हिन्द फौज – 1942–43 में जब भारत छोड़ो आंदोलन शिथिल हुआ तब भारत की सीमाओं के बाहर 'जय हिन्द' और 'दिल्ली चलो' की आवाज गूँज उठी, जिसने देशवासियों को साहस से भर दिया। नेताजी सुभाष चंद्र बोस अंग्रेजों की आँख में धूल झोंककर 1941 में अफगानिस्तान के रास्ते जर्मनी पहुँचे। वहाँ से जापान गए और जुलाई 1943 में आजाद हिन्द फौज को फिर से संगठित किया। इसकी बागडोर संभालने के बाद अगस्त 1943 में नेताजी ने **आजाद हिन्द सरकार** की स्थापना की। इनके नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज इम्फाल तक आ पहुँची तथा भारत की लगभग 250 वर्गमील जमीन को आजाद करा लिया लेकिन कई कारणों से इसे पीछे हटना पड़ा। हिरोशिमा एवं नागासाकी पर अणुबम गिराये जाने के बाद जापान के साथ–साथ आजाद हिन्द फौज को भी आत्म समर्पण करना पड़ा। सेना के अफसरों को बन्धक बनाकर उनपर मुकदमा चलाने का निश्चय किया गया।



चित्र 19 – ब्रिटिश हुकुमत के विरोध में जारी एक पोस्टर

सबसे पहले तीन वरीय अफसर शाहनवाज, ढिल्लन और सहगल पर मुकदमा चलाया गया। इन अफसरों के बचाव में कांग्रेस आगे आई और देश के बड़े–बड़े बैरिस्टरों, जिनमें भूलाभाई देसाई, डा० काटजू, डा० तेज बहादुर सप्रु और जवाहर लाल शामिल थे, निःशुल्क मुकदमा लड़ा। पूरे देश में इन वीरों के समर्थन में प्रदर्शन किए गए। फिर भी जजों ने इन्हें दोषी ठहराते हुए मृत्यु दण्ड की सजा सुनाई। लेकिन अंग्रेजी सरकार को देश के वातावरण को देखते हुए इतनी हिम्मत नहीं हुई कि इन्हें फाँसी दे सके। तीनों जनरल रिहा कर दिए गए। बाद में आजाद हिन्द फौज के और लोग भी रिहा कर दिए गए।



चित्र 20 – नेताजी सुभाष चंद्र बोस सैन्य अधिकारी के साथ

आजाद हिन्द फौज का राष्ट्रीय गीत यह थाः–

शुभ सुख चैन की वर्षा वरसे
भारत भाग्य है जागा।
पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा, द्रविड, उत्कल, बंगा।
चंचल सागर, विंध्य, हिमालय, नीला, जमना, गंगा।
तेरे नित गुरु गाए
तुझ से जीवन पावें
सब नित पायें आशा।
सूरज बनकर जग पर चमके, भारत नाम सुभागा।
जय हो, जय हो, जय हो
जय, जय, भारत जय हो।
शुभ की दिल में प्रीत वसाये तेरी मीठी बानी।

हर सूबे के रहनेवाले हर मजहब के प्राणी।।
सब भेद और फर्क मिटा के
सब गोद में तेरे आके
गूंथे प्रेम की माला।
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा।
सुबह सवेरे पंख, परवेज तेरे ही गुण गावें।
वस भारी भरपूर हवाएँ, जीवन में ऋतु लावें।
सब मिलकर हिन्दी पुकारें, जय आजाद हिन्द के नारे
प्यारा देश हमारा
सूरज बनकर जग पर चमके भारत ना सुभागा।



चित्र 21 – व्यंग चित्र जिसमें गांधी जी संपूर्ण देश का भार अपने कंधों पर लिये हुए है।

जनता राज का लक्ष्य – अगस्त क्रांति में 80 थानों पर जनता का कब्जा हुआ। उनमें से 45 थाना क्षेत्रों में एक से दो महीनों तक चला जनता राज, अपनी शासन व्यवस्था और अपने कायदे–कानून। जनता राज का दृष्टिकोण था– गाँव की रक्षा का प्रबंधन हो, आपसी झगड़े निपटाये जाएँ, मुकदमा बाजी रोकी जाए। गरीबों और भूखों के लिए खाने–पीने का इंतजाम किया जाए।

जनता राज का स्पष्ट लक्ष्य था– अधिकार का उपयोग इस ढंग से करना कि जनता संतुष्ट दिखे, सबल बने और क्रांति की साधना करें।

स्वतंत्रता के साथ–साथ विभाजन

राष्ट्रीय आंदोलन जैसे–जैसे संगठित होकर स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहा था, अंग्रेजों ने 'फूट डालो' और राज करो की नीति का सहारा लिया। मुस्लिम लीग की स्थापना के साथ ही उसकी हर नाजायज मांग भी मानी जाती रही ताकि दोनों मुख्य सम्प्रदायों (हिन्दू और मुस्लिम) के बीच वैमनस्य की भावना बढ़े। अंग्रेजी शासन ने अल्पसंख्यकों के लिए पृथक

निर्वाचक मंडल की व्यवस्था की। शुरू में तो मुस्लिम लीग अपने आपको मुसलमानों के एकमात्र प्रतिनिधि संगठन के रूप में स्थापित नहीं कर सकी। लेकिन धीरे–धीरे कांग्रेस द्वारा मुसलमानों के अपने पक्ष में गोलबंद करने की विफलता ने मुस्लिम लीग की ताकत एवं महत्वाकांक्षा को बढ़ा दिया। साम्प्रदायिक मानसिकता वाले, विक्षुब्ध और राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में अपनी जगह नहीं बनाने वाले नेता मुस्लिम लीग के साथ जुड़ने लगे। अब लीग खुद को मुसलमानों की एकमात्र संस्था के रूप में मान्यता चाहती थी, लेकिन यह कांग्रेस को मंजूर नहीं था। क्योंकि अब भी कांग्रेस के बहुत बड़े–बड़े नेता मुसलमान थे। लीग ने 1930 के दशक में ही **दो राष्ट्रों का सिद्धांत** स्वीकार कर लिया था। इसने 1940 ई० में मुस्लिम बहुल पश्चिमोत्तर और पूर्वी क्षेत्रों में मुसलमानों के लिए 'स्वतंत्र राज्य' की मांग की।

1946 के प्रान्तीय चुनाव में पृथक निर्वाचन क्षेत्र में लीग की बेजोड़ सफलता ने पाकिस्तान की मांग के प्रति इसे और मुखर कर दिया। सरकार ने पाकिस्तान की मांग और भारत की स्वतंत्रता के संबंध में अध्ययन करने के लिए तीन सदस्यीय **कैबिनेट मिशन** भारत भेजा। कैबिनेट मिशन ने मुस्लिम बहुल क्षेत्र को कुछ स्वायतता प्रदान करते हुए ढीले–ढाले महासंघ के रूप में अविभाजित भारत का सुझाव दिया। कैबिनेट मिशन के कुछ सुझावों पर लीग और कांग्रेस को आपत्ति थी। इन परिस्थितियों में अब देश का विभाजन नहीं टाला जा सकता था। मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग के समर्थन में जनता से 'प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस' 16 अगस्त 1946 को मनाने का आह्वान किया। इसी दिन कलकत्ता में साम्प्रदायिक हिंसा भड़क उठी। इसने तेजी से अधिकांश भारत को अपने चपेट में ले लिया और लाखों लोग मारे गए। करोड़ों लोग शरणार्थी हो गए। ब्रिटिश सरकार कैबिनेट मिशन की असफलता के बाद परिस्थिति को देखते हुए भारत को विभाजित करने का मन बना चुकी थी। यह अंग्रेजों की 'फूट डालो' की नीति की पराकाष्ठा थी। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार ने लार्ड माउन्ट बैटेन को भारत भेजा। माउन्ट बैटेन ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के प्रावधानों के अनुसार भारत को विभाजित करते हुए 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान एवं 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्र कर दिया। हमारे राष्ट्रीय नेताओं को इसे स्वीकार करना

पड़ा। विभाजन के बाद भारत का भूगोल बदल गया। कुछ समय के लिए नफरत पूर्ण माहौल बन गया। इस तरह स्वंतत्रता हमारे लिए आनंद से ज्यादा पीड़ा लेकर आयी। धीरे–धीरे हमारे राष्ट्रीय नेताओं के सूझ–बूझ ने परिस्थितियों पर विजय पाई और भारत एक समृद्ध, सशक्त एवं आदर्श लोकतंत्र की ओर कदम बढ़ाने लगा।



चित्र 22 – व्यंग चित्र – आजादी का जश्न मनाते हुए हमारे नेता

अभ्यास

आइए फिर से याद करें–

1. सही विकल्प को चुनें।

(i) कांग्रेस की स्थापना में किन तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभायी?

(क) शुरुआती राजनीतिक संगठनों ने

(ख) एक राष्ट्रीय संस्था की गठन की जरूरत ने

(ग) अंग्रेजों की शोषणकारी नीति ने

(घ) अंग्रेजों का स्वच्छ प्रशासन ने

(ii) राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ–

(क) प्रशासनिक एवं न्यायिक एकरूपता के कारण

(ख) संचार साधनों के विकास के कारण

(ग) उपरोक्त दोनों के कारण

(घ) इनमें से किसी के कारण नहीं

(iii) आइ० सी० एस० की परीक्षा में शामिल होने के लिए उम्र अवधि 21 वर्ष से घटाकर कितना किया गया।

(क) 18 वर्ष (ख) 19 वर्ष (ग) 20 वर्ष (घ) नहीं घटाई गई

(iv) समाचार पत्रों ने किन–किन विचारों को लोकप्रिय बनाया–

(क) प्रतिनिधियात्मक व्यवस्था

(ख) स्वतंत्रता एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था

(ग) सिर्फ क को

(घ) क एवं ख दोनों को

(v) वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट के माध्यम से क्या किया गया?

(क) अंग्रेजी समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगाया गया।

(ख) भारतीय भाषा के समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगया गया।

(ग) शोषण की खुली छूट दी गई।

(घ) क और ख दोनों पर प्रतिबंध लगाया गया।

(vi) बंग–भंग के बाद पूरे बंगाल में क्या हुआ

(क) शोक दिवस मनाया गया।

(ख) लोगों ने उपवास रखा।

(ग) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया।

(घ) उपरोक्त सभी।

(vii) महात्मा गांधी ने भारत में सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग कहाँ किया।

(क) अहमदाबाद (ख) चंपारण (ग) खेड़ा (घ) दिल्ली

(viii) रालेट एक्ट के विरोध में सभा कहाँ हो रही थी?

(क) जालियाँवाला बाग में। (ख) गांधी मैदान में।

(ग) रामलीला मैदान में। (घ) प्रगति मैदान में।

(ix) कैसरे–हिन्द की उपाधि का किसने त्याग किया?

(क) रवीन्द्रनाथ टैगोर (ख) महात्मा गांधी ने

(ग) जवाहरलाल नेहरू ने (घ) सी०आर० दास ने

(x) 'करो या मरो' का नारा गांधी जी ने दिया।

(क) असहयोग आंदोलन के दौरान (ख) चंपारण में

(ग) भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान (घ) सविनय अवज्ञा आंदोलन में

आइए विचार करें–

(i) कैबिनेट मिशन ने क्या सुझाव दिया?

(ii) प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस क्यों मनाया गया?

(iii) राष्ट्रीयता के उत्थान में किन–किन तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई?

(iv) कांग्रेस के गठन ने राष्ट्रीयता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कैसे?

(v) बंग–भंग ने पूरे भारत को आंदोलित कर दिया। कैसे?

आइए करके देखें–

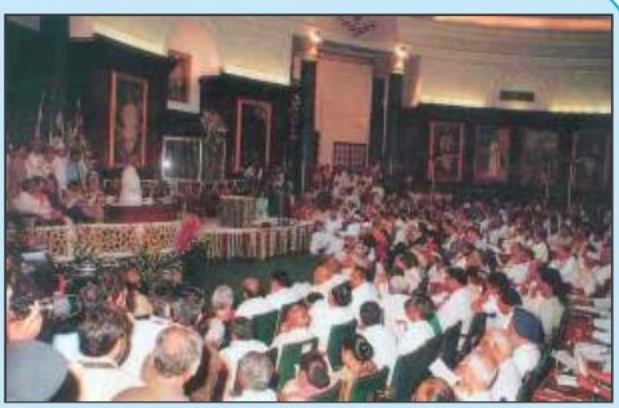
(i) चंपारण से ही गांधी ने अपनी राजनीतिक यात्रा क्यों शुरू की? वर्ग में सहपाठियों से परिचर्चा करें।

(ii) स्वतंत्रता हमारे लिए खुशी और पीड़ा दोनों लेकर आया, इस विषय पर विद्यालय में स्वतंत्रता दिवस समारोह के अवसर पर वाद–विवाद आयोजित करें?

अध्याय - 13

स्वतंत्रता के बाद विभाजित भारत का जन्म

आपने पिछले अध्याय में पढ़ा कि लगभग दो सदियों के संघर्ष के बाद भारत 15 अगस्त 1947 को आजाद हुआ। आजादी के साथ–साथ कई समस्याएँ भी सामने थीं। विभाजन ने लगभग 1 करोड़ शरणार्थियों को पाकिस्तान से भारत आने पर बाध्य कर दिया। इनके रहने और काम देने की व्यवस्था करना सरकार के लिए बहुत बड़ी समस्या थी। लगभग 500 से अधिक देशी रियासतों के विलय की समस्या भी सामने चुनौती के रूप में खड़ी थी। इन सबों के साथ–साथ देश को एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था भी प्रदान करनी थी जो सबके लिए उपयोगी एवं उनकी उम्मीदों के अनुरूप हो।



चित्र 1 – संविधान सभा को संबोधित करते हुए पंडित नेहरू

वर्षों पहले हमने भविष्य को प्रतिज्ञा दी थी और अब वक्त आ गया है जब हम अपने इस वायदे को पूरी तरह से या पूरे रूप में तो नहीं लेकिन काफी बड़ी हद तक पूरा करेंगे। आधी रात बीते जब सारी दुनिया सो रही होगी, भारत आजादी की नई जिदंगी में जाग उठेगा। एक लम्हा आता है– और इतिहास में बहुत कम आता है– जब हम पुरानी जिन्दगी से निकलकर नई जिंदगी में कदम रखते हैं, जब एक युग खत्म होता है और देश की आत्मा आवाज पाती है। यह उचित है कि इस उचित घड़ी में हम भारत और भारत की जनता और उससे भी आगे बढ़कर मानव जाति की सेवा करने का प्रण लें।

इतिहास के प्रभात में भारत अपनी निरंतर यात्रा पर चला और बेशुमार सदियों ने उसकी कोशिश और शानदार कमालों की गवाही दी और उसकी नाकामयाबियों को

भी अच्छे और बुरे दिन, दोनों में, भारत ने उन उसूलों और सिद्धांतों को कभी नजर में नहीं हटने दिया। इनसे उसने नई ताकत पाई और शक्ति भी आज बदकिस्मति का लम्बा अर्सा खत्म होता है और भारत अपने आपको फिर से पहचान रहा है। जिस विजय को आज हम मना रहे हैं वह सिर्फ एक कदम है, अवसर मिलने की एक शुरुआत है, उन बड़ी–बड़ी सफलताओं और प्राप्तियों की ओर जो हमारा इंतजार कर रही है। क्या हममें इतनी हिम्मत है, इतना ज्ञान है कि इस मौके को न जाने दें – उसका लाभ उठाएँ और भविष्य की चुनौती को मंजूर करें।

आजादी और शक्ति जिम्मेदारियाँ लाती हैं। इन जिम्मेदारियों का बोझ इस सभा पर है जो प्रभुता संपन्न है और भारत की स्वतंत्र जनता की नुमाइंदगी करती है। आजादी के पहले हमने कष्ट झेले और हमारे दिल उन दुखों से भारी है– कुछ दुख आज भी मौजूद है। मगर अतीत बीत चुका है भविष्य हमें बुलाता है।

वह भविष्य आरंभ का नहीं है। वह बराबर कोशिश का है, मेहनत का है ताकि हमने जो वायदे किए थे और आज हम जो प्रतिज्ञा करेंगे उन्हें पूरा कर सकें। भारत की सेवा के माने उन करोड़ों की सेवा है जो पीड़ित है, जिसके माने है कि गुरूवत और अज्ञानता, बीमारी और नाइंसाफी खत्म कर दी जाएँ। हमारे जमाने की सबसे बड़ी हस्ती की अभिलाषा रही है कि हर इंसान का हर आँसू पोंछ दिया जाए। यह शायद हमारी ताकत के बाहर हो मगर जबतक लोगों के आँखों में दुःख के आँसू हो उस वक्त तक हमारा काम समाप्त नहीं होगा।

इसलिए हमको बराबर मेहनत करनी है ताकि हमारे सपने साकार हो सकें। यह सपने भारत के लिए ही नहीं बल्कि संसार के लिए भी है क्योंकि आजकल के सारे देश और संसार के लोग आपस में इतने जुड़े हुए हैं कि उनमें से एक भी अलग रहने की कल्पना नहीं कर सकता। कहते हैं कि शांति अविभाज्य है। इसी तरह आजादी भी और सम्पन्नता और विपद भी, क्योंकि अब इस एक दुनिया के अलग–अलग टुकड़े नहीं किए जा सकते।

आजाद भारत के लोग भी कई समुदायों, जातियों क्षेत्रों एवं भिन्न–भिन्न भाषा–भाषी समूह में बंटे हुए थे। इनके खान–पान, रहन–सहन बोल–चाल, सोचने एवं समझने के तरीकों में भी काफी विभिन्नताएँ थीं। इन परिस्थितियों में हमारे राष्ट्रीय नेताओं के सामने सबसे बड़ी समस्या थी कि समूचे भारत को कैसे एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया जाए।

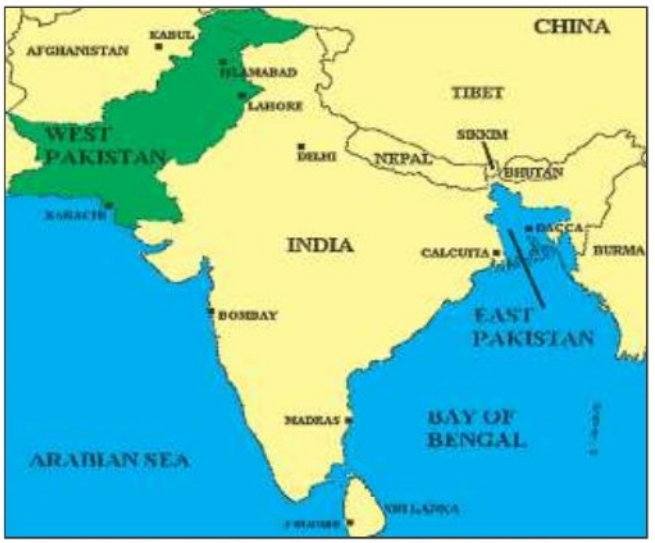
देश को संगठित करने के साथ ही आर्थिक विकास भी एक बड़ी समस्या थी। हमारे संविधान की सबसे बड़ी खासियत है कि इसमें 'आम आदमी' को सर्वाधिकार सम्पन्न माना गया है। इसके तहत सबको जो 21 साल की उम्र पुरा कर चुके हो (अब 18 साल ही) अपनी सरकार चुनने का अधिकार अर्थात् मतदान करने का अधिकार दिया गया। शुरू में ब्रिटीश और अमेरिका जैसे विकसित देशों में भी मताधिकार सम्पन्न पुरुषों को ही था, धीरे–धीरे यह शिक्षित पुरुषों को मिला फिर सामान्य पुरुषों को और अंततः स्त्रियों को यह अधिकार मिला जबकि भारत में आजादी के बाद पहले आम चुनाव में ही यह अधिकार सबको प्रदान किया गया।

हमारे संविधान ने भारत के सभी नागरिकों को जाति–धर्म या क्षेत्रीय स्तर पर अलग–अलग रहने वालों को कानून की नजर में बराबरी की दृष्टि से देखा। कुछ लोग भारत को भी पाकिस्तान की तरह धर्म केन्द्रित राष्ट्र बनाना चाहते थे लेकिन हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त को स्वीकार किया एवं सभी धर्म के लोगों को समान अवसर प्रदान किया। संविधान की नजर में हिन्दू, मुस्लिम सिक्ख, ईसाई, जैन आदि धर्मावलंबी एक समान हैं। लेकिन हमारे संविधान का मानवीय पक्ष यह भी है कि हमारे जो नागरिक सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हों, जिनके साथ अस्पृश्यता या छुआछूत जैसा व्यवहार किया जा रहा था उसे विशेष संरक्षण देने का प्रावधान किया।

उस समय देश की आबादी लगभग 34.5 करोड़ थी। अन्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनने के लिए कृषि के विकास की जरूरत थी। क्योंकि कृषि पर उस समय लगभग 90% जनता निर्भर थी। किसान गाँवों में रहते थे। इन्हें कृषि के लिए मौनसून (वर्षा) पर निर्भर रहना पड़ा था। सिंचाई की व्यवस्था विकसित नहीं थी। वर्षा नहीं होने से किसानों को तो अकाल का सामना करना ही पड़ता था, कृषकों पर निर्भर अन्य पेशा के लोग जैसे नाई, बढ़ई लोहार एवं कारीगर वर्ग भी संकट की स्थिति में आ जाते थे। शहर में रहने वाले औद्योगिक मजदूरों की स्थिति भी दयनीय थी। इनके बच्चों को शिक्षा एवं स्वास्थ्य की बुनियादी सुविधा भी उपलब्ध नहीं थी।

अतः आजादी के बाद कृषि के विकास के साथ–साथ औद्योगिक विकास की भी आवश्यकता थी ताकि रोजगार की प्राप्ति के साथ–साथ लोगों का जीवन स्तर उठ सके।

आजादी के साथ–साथ विभाजन के कारण धार्मिक उन्माद (साम्प्रदायिकता) ने लगभग संपूर्ण भारत को अपने चपेट में ले लिया था। लेकिन देश के कुछ ग्रामीण इलाके, बिहार और विभाजन से प्रभावित क्षेत्रों को छोड़कर पूरा देश साम्प्रदायिक विचार धारा से अलग रहा। इन परिस्थितियों में भारत धर्मनिरपेक्षता के बिना एक संगठित तथा मजबूत राष्ट्र नहीं बन सकता था। विकास एवं एकता के साथ राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को साथ–साथ चलने के लिए मतभेदों एवं हिंसक टकराव को समाप्त करना अनिवार्य था। साम्प्रदायिकता के साथ–साथ जातिवाद, अमीर–गरीब, शहर–देहात आदि के बीच गहरे मतभेद एवं दूरियाँ थीं। इन दूरियों को पाटना भी आजादी के लिए चुनौती थी।



स्वतंत्रता के बाद विभाजित भारत और नये पाकिस्तान का जन्म

नए संविधान का निर्माण

आजादी के पहले ही भारतीयों ने कैबिनेट मिशन की चुनौती को स्वीकार करते हुए भारत के लिए अपने संविधान के निर्माण की जिम्मेदारी संभाली। एक संविधान सभा का गठन किया गया जिसके लगभग 300 प्रतिनिधि देश भर से चुनकर आए थे। इन सदस्यों के बीच दिसम्बर 1946 से नवम्बर 1949 तक गंभीर विचार–विमर्श के बाद भारत का संविधान लिखा गया। संविधान के कुछ भाग (उपबन्ध) को 26 नवम्बर 1949 को ही लागू कर दिया गया एवं 26 जनवरी 1950 को इसे पूर्ण रूप से लागू किया गया।


चित्र 2 – नए संविधान पर हस्ताक्षर करते पंडित नेहरू

हमारे संविधान की सभी विशेषताएँ इसकी प्रस्तावना में निहित हैं। इसे 'संविधान की कुंजी' भी कहा जाता है। प्रस्तावना इस प्रकार है :– हम, भारत के लोग भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सामाजवादी, धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी संवत 2006 विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित एवं आत्मर्पित करते हैं।

हमारे संविधान में केन्द्र और राज्य सरकार के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया ताकि केन्द्र और राज्य के बीच टकराव न हो। अगर टकराव की संभावना बनती है तो वैसी स्थिति में केन्द्र का कानून ही प्रभावशाली होगा। संविधान सभा ने लम्बे वाद–विवाद के बाद देश की सुरक्षा, एकता और अखंडता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार को मजबूत और सक्षम बनाने का प्रयास किया। केन्द्र सरकार को कराधान, संचार, रक्षा और विदेश नीति की जिम्मेदारी दी गई। आम आदमी की जरूरतों शिक्षा, स्वास्थ्य एवं कानून–व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इन सभी जिम्मेवारियों के निर्वहन का भार राज्य सरकार को दिया गया। हमारे संविधान ने केन्द्र और राज्य के बीच शक्तियों को तीन सूचि में विभाजित किया है। केन्द्र सूचि, राज्य सूचि एवं समवर्ती सूचि। समवर्ती सूचि में वन, कृषि एवं ऐसे विषयों को रखा गया जिसका स्पष्ट विभाजन

अल्पसंख्यकों को सुरक्षा एवं सम्मान प्रदान करें। मुख्यमंत्रियों को नेहरू का पत्र :

हमारे पास एक मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय है जो संख्या की दृष्टि से इतना बड़ा है कि अगर वे चाहें तो भी कही नहीं जा सकते। यह एक बुनियादी तथ्य है जिसके बारे में बहस की कोई गुंजाइश नहीं है। पाकिस्तान की तरफ से चाहे जितना उकसावा हो और वहाँ के गैर–मुसलमानों पर चाहे जो भी अत्याचार हो रहे हों हमें इस अल्पसंख्यक समुदाय के साथ सभ्य ढंग से व्यवहार करना है। हमें इस समुदाय को भी वही सुरक्षा और अधिकार देने होंगे जो किसी लोकतांत्रिक राज्य के नागरिकों को मिलते हैं।

नहीं किया गया हो। समवर्ती सूची पर केन्द्र और राज्य दोनों को ही कानून बनाने का अधिकार है। टकराव या मतभेद की स्थिति में केन्द्र का ही कानून प्रभावशाली होगा। संविधान सभा में चर्चा के दौरान कुछ लोगों ने केन्द्र के हित को प्रधानता दी और कहा कि जब केन्द्र मजबूत होगा, तभी वह पूरे देश के लिए सोचने और योजना बनाने में सक्षम होगा। कई सदस्यों ने राज्यों को अधिक स्वायत्तता और आजादी देने के पक्ष में दलील दी। उनका कहना था कि वर्तमान व्यवस्था में लोकतंत्र दिल्ली में ही केन्द्रित है, इसलिए बाकी देश में इसी भावना और अर्थ में साकार नहीं हो रहा है।

संविधान सभा में भाषा के मुद्दे पर भी लम्बी बहस हुई। अधिकांश लोग अंग्रेजी की जगह हिन्दी को अपनाना चाहते थे। लेकिन गैर हिन्दी भाषियों ने इसका विरोध किया। टी.टी. कृष्णमाचारी ने दक्षिण के लोगों की ओर से चेतावनी देते हुए कहा कि अगर उनपर हिन्दी थोपी गई तो बहुत सारे लोग भारत से अलग हो जाएँगे। इस विवाद से बचने के लिए हिन्दी को भारत की राजभाषा का तो दर्जा दिया गया लेकिन अदालतों सहित विभिन्न सेवाओं में अंग्रेजी को कामकाज की भाषा के रूप में अपनाया गया। संविधान के निर्माण में डा. भीम राव अम्बेदकर की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी। ये संविधान सभा के प्रारूप समिति के अध्यक्ष भी थे। इन्होंने संविधान सभा में राजनीतिक लोकतंत्र के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों के उत्थान के लिए आवाज बुलंद की। इनके उत्थान के लिए इन्होंने सरकारी सेवाओं में आरक्षण की वकालत की ताकि सामान्य लोगों के साथ कदम से कदम मिलाकर ये चल सकें।

आरक्षण के संबंध में एच.जे.खाण्डेकर के विचार

समकालीन राजनीति में आरक्षण जैसे ज्वलंत मुद्दे पर संविधान निर्मात्री सभा में वाद–विवाद के दौरान 24 अगस्त 1949 को खाण्डेकर ने अनुसूचित जातियों के आरक्षण के संबंध में जो प्रश्न उठाया कि ससंदीय प्रणाली में अनुसूचित जातियों को आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में दी जाने वाली सीटों को सही लाभ तभी मिलेगा जब उनके लिए वैसे ही निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित किये जायें जिनमें उनकी आबादी बहुमत में है। खाण्डेकर ने इसको और भी स्पष्ट करते हुए यह कहा कि ऐसा नहीं होने पर आम

निर्वाचन क्षेत्र के आरक्षित स्थानों से अनुसूचित जाति के योग्य प्रतिनीधि नहीं निर्वाचित हो सकते हैं, जिसके कारण ससंदीय प्रणाली में उनका सही प्रतिनीधित्व नहीं हो सकेगा।

हमारे संविधान ने राज्य के नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार भी दिए तथा राज्य के प्रति निष्ठावान बने रहने के उपाय के रूप में नागरिकों के लिए मौलिक कर्तव्य भी बताए। राज्य को दिए गए नीति निर्देशक तत्व ने यह सुनिश्चित किया कि देश के भौतिक संसाधन का इस्तेमाल सामूहिक हित में किया जाए एवं अधिक धन संग्रह से बचा जाए। संविधान ने समूचे देश के नागरिकों के एक झंडा (तिरंगा), एक संविधान, एक राष्ट्रगान आदि का प्रावधान किया ताकि देश की एकता एवं अखंडता सुरक्षित रहे।

आप समझ सकते हैं कि संविधान का निर्माण करते समय भारत के नेताओं और जनता के सामने एक साझे और सशक्त भारत के भविष्य की तस्वीर थी। नेहरू जी के भाषण के अंश से भी आप समझ सकते हैं कि उनके सपने का भारत कैसा था। संविधान सभा के सदस्य भी इस आदर्श अर्थात् व्यक्ति की गरिमा और आजादी, सामाजिक आर्थिक समानता, जनता की खुशहाली और राष्ट्रीय एकता में विश्वास रखते थे। यह आदर्श आज तक जिन्दा है। यही कारण है कि हम संविधान का आज भी सम्मान करते हैं।

क्या आप भी कुछ कहना चाहेंगे?

संविधान सभा के कई सदस्य संविधान को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नहीं मानते थे। एक सदस्य लक्ष्मी नारायण साहू का कहना था कि यह संविधान जिन आदर्शों पर आधारित है उनका भारत की आत्मा से कोई संबंध नहीं है। यह संविधान यहाँ की परिस्थितियों में कार्य नहीं कर पायेगा और लागू होने के कुछ समय बाद ही ठप्प हो जाएगा

—संविधान सभा वाद विवाद खंड 11 पृ.—613

राज्यों का पुनर्गठन किया गया

अंग्रेजों ने प्रशासनिक सुविधा और व्यापारिक लाभ को ध्यान में रखते हुए भारत में राज्यों का गठन किया था। अंग्रेजों ने भारत की सांस्कृतिक विविधता और भाषायी भिन्नता को आधार नहीं बनाया था। लेकिन जब प्रथम विश्वयुद्ध के बाद कई देशों का पुनर्गठन भाषायी

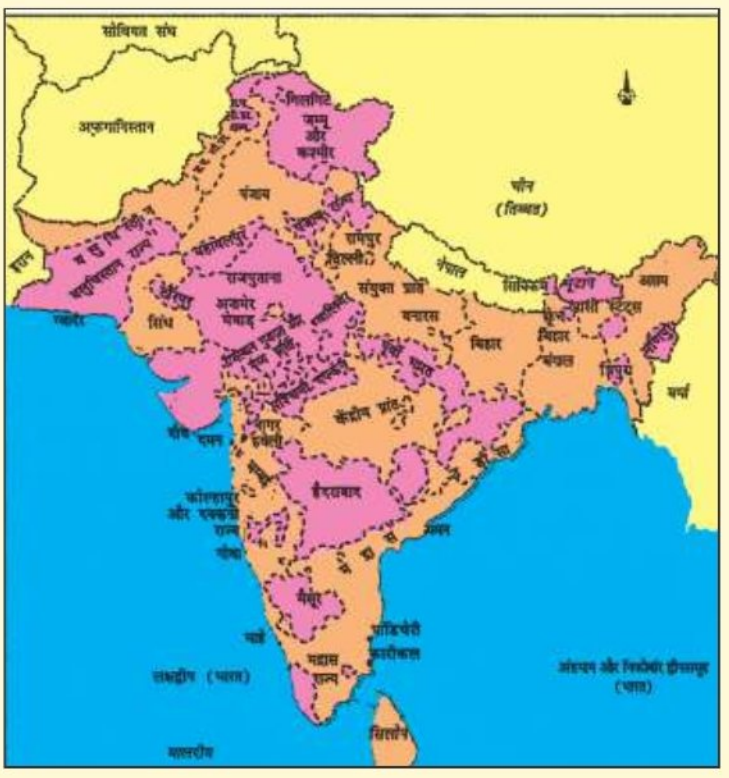
आधार पर किया गया जिनमें रूस, तुर्की और आस्ट्रिया प्रमुख थे तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी 1920 के दशक में लोगों की भावनाओं को देखते हुए आजादी के बाद भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का आश्वासन दिया। लेकिन जब भारत को धर्म के आधार पर दंगों और विभाजन के बाद भारत को आजादी मिली तो राष्ट्रीय नेताओं के मन में चिंता हुई कि अगर राज्यों का पुनर्गठन भाषा के आधार पर किया गया तो और कई पाकिस्तान बन सकते हैं। इन्हीं परिस्थितियों में नेहरू और बल्लभ भाई पटेल ने भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का विरोध किया। जब लोगों के द्वारा भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की मांग उठी तो पटेल ने कहा 'इस समय भारत की पहली और अंतिम जरूरत यह है कि इसे एक राष्ट्र बनाया जाए। राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने वाली हर चीज आगे बढ़नी चाहिए और उसके रास्ते में रुकावट डालनेवाली हर चीज को दर किनार कर देना चाहिए। हमने यही कसौटी भाषायी प्रांतों के सवाल पर भी अपनाई है। इस कसौटी के हिसाब से हमारे राज्य में इस मांग को समर्थन नहीं दिया जा सकता।'


चित्र 3 – स्वतंत्र भारत के दो शिल्पकार पंडित नेहरू एवं सरदार पटेल

राष्ट्रीय नेताओं द्वारा 1920 के दशक में किए गए वायदे से मुकरने के कारण क्षेत्रीय भाषा–भाषी जैसे तेलगू, तमिल, मराठी, कन्नड़ बोलने वालों में असंतोष पनपने लगा। विशेष रूप से तेलगू भाषी लोग 1952 के प्रथम चुनाव में आंध्र प्रदेश की मांग को लेकर काफी उग्र थे। आंध्र प्रदेश की मांग को लेकर गांधीवादी नेता पोट्टी श्री रामलू राजू ने भूख हड़ताल किया जसमें 58 दिनों के बाद 15 सितम्बर 1952 को उनकी मृत्यु हो गई। इनकी मृत्यु के बाद पूरे आंध्र क्षेत्र में अराजकता फैल गई। इस विरोध को केन्द्र ने गंभीरता से लिया और इनकी मांगें मान लीं। इस तरह 1 अक्टूबर, 1953 को आंध्रप्रदेश के रूप में एक नए राज्य का गठन हुआ।

सरकार ने क्षेत्रीय भाषा–भाषियों द्वारा नए राज्य के गठन की मांग को देखते हुए 'राज्य

पुनर्गठन आयोग' का गठन किया। इस आयोग के अध्यक्ष फजल अली थे। आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1956 ई. में सौंप दी। इसने तमिल, मलयालम, कन्नड़, बंगला, उड़िया एवं असमिया भाषी लोगों के लिए अलग–अलग राज्य के पुनर्गठन की सिफारिश की। विशाल हिन्दी भाषी क्षेत्र को प्रशासनिक सुविधा एवं सांस्कृतिक एकरूपता को देखते हुए कई राज्यों में विभाजित किया गया। कुछ वर्षों के बाद से राज्यों के विभाजन की मांग भी उठने लगी और तीव्र आन्दोलन का रूप भी अख्तियार किया। फलस्वरूप 1960 में बंबई प्रांत का, मराठी भाषी महाराष्ट्र एवं गुजराती भाषी गुजरात में, 1966 में पंजाब से हरियाणा को और आगे चलकर 2001 में उत्तर प्रदेश से उतरांचल को, मध्यप्रदेश से छत्तीसगढ़ को एवं बिहार से झारखंड को अलग कर 28 वें राज्य के रूप में गठन किया गया। अभी भी महाराष्ट्र से अलग करके विदर्भ, आंध्रप्रदेश से तेलंगाना, एवं पूर्वोत्तर में बोडोलैंड के गठन की मांग को लेकर लगातार आन्दोलन हो रहे हैं।



14 अगस्त 1947 से पहले भारतीय प्रांत और रियासतें।

रियासतें

ब्रिटिश भारत



* जब रियासतों के शासक भारत अथवा पाकिस्तान से जुड़ने के लिए मान गये या फिर हरा दिये गये तो उनकी रियासतें खत्म हो गईं। परंतु 31 अक्टूबर 1956 तक कई ऐसी रियासतों को प्रशासनिक इकाइयों के रूप में बनाये रखा गया। इसीलिए 1947–48 से 31 अक्टूबर 1956 की कालावधि के लिए इन्हें भूतपूर्व रियासत कहा गया है।

क्रमशः तीनों मानचित्रों के अवलोकन से आप राज्यों के गठन की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। भाषायी आधार या अन्य कारणों से 1956 एवं उसके बाद गठित राज्यों की सूची बनायें।



विकास की यात्रा

पंचवर्षीय योजनाओं पर नेहरू के विचार

प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू योजना प्रक्रिया के भारी समर्थक थे। उन्होंने विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों के नाम लिखे अपने पत्रों में नियोजन के आदर्शों और उद्देश्यों की व्याख्या की है। 22 दिसंबर 1952 के एक पत्र में उन्होंने लिखा था :

...पंचवर्षीय योजना के पीछे भारत की एकता और देश के विभिन्न जन-समूहों के विगत आपसी सहयोग की आवश्यकता निहित है...। हमें यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि इस प्रक्रिया में सिर्फ सरकारी तंत्र का ही महत्व नहीं होता बल्कि जनता के उत्साह और सहयोग का महत्व इससे भी ज्यादा है। हमारे लोगों को एक विशाल उद्यम में साझेदारी का एहसास, उन्हें अपने आगामी उद्देश्य की ओर बढ़ते सहयात्री जैसा अहसास होना चाहिए। वैसे योजना बहुत सारे अर्थशास्त्रियों, सांख्यिकी विशेषज्ञों और ऐसे ही दूसरे लोगों की गणनाओं पर आधारित हो सकती है, और होगी। परंतु केवल आंकड़ों और संख्याओं से हालांकि ये महत्वपूर्ण हैं, वे किसी योजना में जीवन फूंक नहीं सकते। जीवन का यह उच्छ्वास तो कहीं और से आता है। अब यह हमारी जिम्मेदारी है कि ठंडे अक्षरों में लिखी योजना को एक ऐसा जीवंत, गतिशील उद्यम बना दें कि वह लोगों की कल्पनाओं को साकार कर सके।

हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने आजादी के पहले ही यह महसूस किया था कि राजनीतिक आजादी के साथ–साथ आर्थिक समृद्धि भी आवश्यक है। अगर भारत औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था से मुक्त होकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं बनता है तो राजनीतिक आजादी ज्यादा दिनों तक नहीं रह सकती। अतः भारत को आर्थिक रूप से विकसित करने के लिए, आधुनिक तकनीक के सहारे कृषि और उद्योगों के लिए आधार निर्मित करना सबसे बड़ी चुनौती थी सरकार ने महसूस किया कि बगैर सरकारी सहयोग एवं योजना के देश की आर्थिक प्रगति तेजी से नहीं हो सकती। अतः सरकार ने नीति बनाने एवं लागू करने के लिए 1950 में योजना आयोग का गठन किया। अब सरकार और निजी क्षेत्र दोनों मिलकर योजना के परामर्श से उत्पादन को बढ़ाऐंगे एवं रोजगार करेंगे। योजना आयोग ने पंचवर्षीय योजना के माध्यम से सरकारी और निजि क्षेत्र की भागीदारी करने का सफल प्रयास किया।

सबसे पहले अन्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हासिल करने के लिए योजना आयोग ने 1951–56 के बीच कृषि को सुनियोजित रूप से सबसे ज्यादा बढ़ावा दिया। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–67) में देश को औद्योगिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए बड़े–बड़े उद्योगों के स्थापना पर बल दिया गया। हालांकि उद्योगों की स्थापना तो हुई लेकिन खेती, प्राथमिक शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य आदि पर उतना ध्यान नहीं दिया गया। क्योंकि हमारे पास उस समय संसाधन सीमित थे और आवश्यकताएँ अधिक



चित्र 4 – सिंचाई के साधन विकसित करने हेतु गंडक नदी पर बना बांध

थीं। भविष्य में पर्यावरण को होने वाली क्षति को ध्यान में रखते हुए गाँध जी की अनुयायी मीरा बहन ने 1949 में ही कहा था, विज्ञान और मशीनरी के द्वारा कुछ समय तक भारी फायदा हो सकता है लेकिन आखिकार तबाही ही मिलेगी। हमें कुदरत के संतुलन के पुराने नियमों के हिसाब से अपनी जिन्दगी चलानी चाहिए, तभी हम स्वस्थ और नैतिक रूप से सभ्य प्रजाति के रूप में जीवित रह पाएँगे।



चित्र 5 – बोकारो इस्पात संयंत्र

हमारी सरकार ने विश्व के विकसित देशों के सहयोग से भिलाई, दुर्गापुर, बोकारो, राउरकेला आदि जगहों पर बड़े–बड़े उद्योग लगाए। इसी तरह भारत ने 11वीं पंचवर्षीय योजना तक कृषि उद्योग, विज्ञान एवं तकनीक, शिक्षा आदि के क्षेत्र में निजि एवं सार्वजनिक क्षेत्रों की भागीदारी से काफी प्रगति कर ली है। आज भारत का विकास दर चीन के बाद विश्व में दूसरे स्थान पर है। हर व्यक्ति को काम उपलब्ध कराने के लिए महत्मा गाँधी नरेगा, कोई व्यक्ति भूखा न रहे उसके लिए खाद्य सुरक्षा की गारंटी योजना आदि पर सरकार काफी संजीदा है।



चित्र 6 – बरौनी रिफाइनरी

1990 के दशक में तेज आर्थिक विकास के साथ–साथ औद्योगिक क्षेत्र में ढॉचागत परिवर्तन हुआ। सूचना एवं संचार के क्षेत्र में क्रांति ने कम्प्यूटर साफ्टवेयर एवं हार्डवेयर, आधुनिक संचार एवं परिवहन के साधनों यथा दोपहिया एवं चारपहिया वाहनों एवं टेलीफोन



चित्र 7 – हैदराबाद का सॉफ्टवेयर सेंटर

सेवा आदि के क्षेत्र में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। कम्प्यूटर साफ्टवेयर के क्षेत्र में भारत ने एक नई पहचान बनाई। बंगलोर की पहचान भारत की सिलिकान वैली के (अमेरिका) रूप में बनी। माइक्रोसाफ्ट जैसी कम्पनी ने हैदराबाद (आंध्रप्रदेश) में साफ्टवेयर विकास केन्द्र की स्थापना की।

भारत में रेलवे, डाक एवं संचार, बैंक, बीमा, आर्थिक ऊर्जा, पेट्रोलियम, सुरक्षा सामग्री से जुड़े उद्योग आज भी सरकार द्वारा नियंत्रित हैं जबकि अन्य बड़े उद्योगों में निजी क्षेत्रों की भागीदारी बड़े पैमाने पर है जो हमारी मिश्रित अर्थव्यवस्था का परिचायक है। दोनों क्षेत्रों की भागीदारी से भारत में तकनीकी एवं आधारभूत संरचनाओं का संतोषजनक विकास हुआ है। फलस्वरूप आजादी के बाद जनसंख्या में तीन गुणी से भी अधिक वृद्धि के बावजूद प्रति व्यक्ति आय में भी लगभग तीन गुणी वृद्धि हुई है।

लोकतांत्रिक सशक्तिकरण

आजादी के बाद भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना हुई। आप इसी अध्याय में पढ़ चुके हैं कि कई समस्याओं के बावजूद भारत ने सफलातापूर्वक आर्थिक विकास, राज्यों का पुनर्गठन, भाषा संबंधी विवादों का निपटारा, साम्प्रदायिक शक्तियों पर नियंत्रण किया। देश की विदेश नीति का संचालन भी गुटनिरपेक्षता की नीति को ध्यान में रखते हुए किया गया।

गुटनिरपेक्षता की नीति—आजादी के समय विश्व दो बड़े राष्ट्रों अमेरिका और सोवियत रूस के खेमें मे विभक्त था। भारत को सबकी मदद की जरूरत थी। अतः सबके साथ अच्छे संबंधों का निर्वाह करते हुए किसी गुट में न रहते हुए भारत ने गुट निरपेक्षता की नीति अपनाई तथा भारत जैसे गरीब और विकासशील देशों को भी इसी नीति पर चलने की सलाह दी।

कुछ समय बाद भारत में लोकतांत्रिक आदर्श कमजोर होने लगे और आपातकाल की घोषणा की गई। देश में पुनः जनान्दोलन की स्थिति उत्पन्न हो गई। इसकी शुरुआत बिहार एवं गुजरात से हुई। नेतृत्व जयप्रकाश नारायण ने प्रदान किया। जयप्रकश नारायण ने संपूर्ण क्रांति का नारा दिया। आपात काल के दौरान प्रधानमंत्री की शक्ति में वृद्धि, प्रेस पर नियंत्रण, नागरिक अधिकारों पर प्रतिबंध, नसबन्दी द्वारा जन्म दर पर नियंत्रण, झुग्गी–झोपड़ी

उन्मूलन, कर्मचारियों के वृद्धि पर रोक तथा कठोर एवं आलोकतांत्रिक कदम उठाए गए। आपात काल के विरोध में जयप्रकाश नारायण ने संपूर्णक्रांति का आह्वान किया।

जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति का मतलब



चित्र 8 – गांधी मैदान में जनसभा को संबोधित करते हुए जयप्रकाश नारायण

जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति की अवधारणा उनके राजनीतिक चिन्तन का अंतिम पड़ाव था। जयप्रकाश नारायण ने छात्रों एवं युवाओं को राजनीतिक दलों से अलग रहकर देश की सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन लाने का सुझाव दिया। छात्र एवं युवा शक्ति के उदय का कारण सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, देश की खराब आर्थिक स्थिति एवं नौजवानों में व्याप्त बेरोजगारी है। 5 जून 1974 को पटना के गाँधी मैदान में जयप्रकाश नारायण ने छात्रों को संबोधित करते हुए संपूर्ण क्रांति का विचार रखा। इन्होंने कहा, 'आज आजादी के 27 वर्ष के बाद भी लोग भूख, बढ़ती हुई कीमतों तथा भ्रष्टाचार से परेशान हैं। रिश्वत दिए बिना कहीं काम नहीं होता। लोग अन्याय से संघर्ष कर रहे हैं परन्तु कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। लाखों छात्रों एवं नौजवानों का भविष्य अन्धकार में है। गरीबी बढ़ रही है। किसानों की स्थिति दयनीय है।' इस स्थिति से छुटकारा पाने लिए इन्होंने संपूर्ण क्रांति की अवधारण को सामने रखा तथा इसके लिए सत्ता परिवर्तन को आवश्यक बताया। इन्होंने कहा कि 'संपूर्ण क्रांति एक ऐसी व्यापक क्रांति है जिसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैचारिक अथवा बौद्धिक, शैक्षणिक तथा आध्यात्मिक क्रांतियाँ सम्मिलित हैं। यह संख्या कम या अधिक भी हो सकती है।' इन्होंने आगे कहा कि सत्ता परिवर्तन हमारा उद्देश्य नहीं है, परन्तु यह आवश्यक है। जब हमारे प्रतिनिधि भ्रष्ट, अक्षम और भाई भतीजावाद के शिकार हैं तो उन्हें सत्ता से हटाना ही पड़ेगा। इसके बाद ही व्यक्ति तथा समाज में परिवर्तन के लिए काम करना होगा।

जयप्रकाश नारायण ने भ्रष्टाचार पर नियंत्रण के लिए लोकपाल जैसी स्वशासी संस्था की स्थापना की आवश्यकता बताई। इन्होंने महंगाई पर नियंत्रण के साथ–साथ कृषि एवं औद्योगिक मजदूरों की दशा सुधारने पर भी बल दिया। जयप्रकाश जी ने जाति व्यवस्था पर प्रहार करते हुए दहेज, छुआ–छूत जैसी सामाजिक बुराइयों का भी विरोध किया। इन्होंने इसके लिए शिक्षा की भी बात की। लेकिन शिक्षण–व्यवस्था देश की आवयश्यकताओं के अनुरूप हो इसलिए प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में अमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता बताई। कई दलों को मिलाकर जनता पार्टी की सरकार मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी। इस सरकार ने आपातकाल में प्रेस आदि पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त किया तथा नागरिक अधिकारों को फिर से बहाल किए। जनता पार्टी की सरकार ने संसदीय संस्थाओं एवं लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत किया। लेकिन आपसी गुटबाजी के कारण यह सरकार अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। मध्यावधि चुनाव हुए जिसमें पुनः इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस को जीत हासिल हुई। श्रीमती गाँधी के समय पंजाब में चरमपंथी एवं अलगाववादी आन्दोलन हुए। इनके विरुद्ध जून 1984 में आपरेशन ब्लू स्टार नामक कार्रवाई की गई। इस कार्रवाई के प्रतिशोध में श्रीमती गाँधी के दो सिक्ख अंगरक्षकों ने ही 31 अक्टूबर 1984 को उनकी हत्या कर दी।

श्रीमती गाँधी की हत्या के बाद इनके बड़े बेटे राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने इनके नेतृत्व में कांग्रेस को ऐतिहासिक बहुमत हासिल हुआ। इन्होंने देश में तेज आर्थिक विकास एवं संचार क्रांति के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई। भारत को 21वीं सदी में ले जाने का सपना भी दिखाया। लेकिन भ्रष्टाचार संबंधी (बोफोर्स घोटाला) विवादों में घिर जाने के कारण अगले चुनाव में कांग्रेस को पराजय का सामना करना पड़ा।

नई राजनीतिक व्यवस्था का जन्म गठबंधन एवं मोर्चे की राजनीति–1989 से भारत की जनता ने किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं दिया। सबसे पहले वी.पी. सिंह के नेतृत्व में मोर्चे की (जनता दल, भाजपा एवं वामपंथियों की) मिली जुली सरकार बनी। आपसी खींच–तान के कारण यह सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी और मध्यावधि चुनाव में देश को जाना पड़ा। इस चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में सरकार बनी।

इस सरकार के समक्ष कई समस्याएँ खड़ी थीं। देश आर्थिक रूप से बदहाली के दौर से गुजर रहा था। अयोध्या मंदिर–मस्जिद विवाद और वी.पी. सिंह सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों में पिछड़ी जाति के लोगों को आरक्षण प्रदान करने के कारण देश में कानून एवं व्यवस्था की समस्या उत्पन्न हो गई थी। कश्मीरी अलगाववादियों की भी गतिविधियाँ बढ़ने लगी थीं। इसी बीच 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद ध्वंस की घटना ने भी पूरे देशवासियों को प्रभावित किया। कांग्रेस की सरकार ने इन आन्तरिक एवं वाह्य परिस्थितियों का सामना सफलता पूर्वक समापन किया तथा देश की अर्थव्यवस्था को आर्थिक सुधारों के माध्यम से पटरी पर लाया। इस सरकार ने पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक संशोधन के माध्यम से लागू करने का भी ऐतिहासिक कार्य किया।



चित्र 9 – पोखरण–1 परमाणु परीक्षण इंदिरा गांधी की सरकार में 1974 में हुआ।

चित्र 10 – पोखरण 2– परमाणु परीक्षण बाजपेयी जी की सरकार में 1998 में किया गया।

अगले चुनाव में भाजपा की अगुआई में गठबन्धन की सरकार बनी। इस सरकार ने सफलता के साथ आर्थिक उदारीकरण के दूसरे दौर को भी लागू किया। तथा राष्ट्रीय सुरक्षा एवं तकनीक को मजबूती प्रदान करते हुए पोखरण–2 विस्फोट भी किया। यह सरकार 'फीलगुड एवं भारत उदय' के नारों के साथ चुनाव में गई लेकिन किसानों की दयनीय स्थिति के कारण यह नारा फीका पड़ गया, और सरकार को पराजय का सामना करना पड़ा। कांग्रेस गठबंधन की जीत हुई। (मोर्चे की राजनीति का स्पष्ट ध्रुवीकरण हुआ। कांग्रेस की नेतृत्व वाली मोर्चा संप्रग (संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) एवं भाजपा नेतृत्व वाली मोर्चा राजग (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) के नाम से जाना जाता है।

अभी लगातार दो चुनाव में कांग्रेस की अगुआई वाली संप्रग सरकार कई समस्याओं का सफलता पूर्वक सामना करते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

गणतंत्र के साठ वर्षों के बाद

स्वतंत्रता के बाद 26 जनवरी 1950 को हमारा संविधान लागू हुआ और भारत गणतंत्र बना। इस दौरान भारत ने लगभग हर क्षेत्र में सफलता के साथ कदम बढ़ाया। हमारे संविधान ने सरकार एवं देशवासियों के लिए कुछ मानदण्डों (आदर्शों) का निर्धारण किया जो हमारे संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। स्वतंत्रता के बाद से आज तक हम संसदीय लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ लगातार आगे बढ़ रहे हैं। जो हमारे लिए एक महान उपलब्धि है। स्वतंत्रता के समय कुछ अंतर्राष्ट्रीय मामलों के विशेषज्ञों का मानना था कि भारत एक राष्ट्र के रूप में ज्यादा दिनों तक सफल नहीं हो सकता है क्योंकि भारत में क्षेत्रीय, सांस्कृतिक एवं भाषायी विभिन्नताएँ मौजूद हैं। हर क्षेत्र या समूह अपनी जरूरतों के हिसाब से अलग–अलग राष्ट्र की मांग करेगा और देश बिखर जाएगा। पिछले कुछ वर्षों में भारत में अलगाववादी आन्दोलन हुए भी लेकिन इसने देश की एकता एवं अखंडता को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया।

भारत के किन–किन क्षेत्रों में अलगाववादी आन्दोलन हुए, इससे देश को क्या–क्या नुकसान झेलने पड़े। आप अपने शिक्षक से चर्चा करें।



चित्र–11



चित्र–12

गरीबों की दयनीय स्थिति एवं विपदा को दिखाता हुआ चित्र–1, जबकि चित्र–2 में सुविधा सम्पन्न वर्ग के रहन–सहन का स्तर दिखाई दे रहा है।

कुछ विशेषज्ञों को ऐसा लगता था कि चूँकि भारत अविकसित और अभावग्रस्त देश है अतः यहाँ सैनिक शासन स्थापित हो जाएगा। लेकिन ऐसी सारी आशंकाएँ गलत सावित हुई है। अब तक भारत में सफलता पूर्वक लोकसभा के 14 आम चुनाव एवं सैकड़ों विधान सभा एवं स्थानीय निकायों के चुनाव हो चुके। देश की व्यवस्थापिका, न्यायपालिका एवं कार्यपालिका के साथ सामंजस्य स्थापित करके काम कर रही है। स्वतंत्र प्रेस हमारा मार्गदर्शन कर रहा है। इस तरह हमारी राष्ट्रीय एकता एवं प्रगति की राह में भाषायी एवं सांस्कृतिक विविधता भी रूकावट नहीं डाल रही है। परन्तु सामाजिक क्षेत्र में जाति आधारित खाई अभी भी बरकरार है। आज भी हमारे दलित समुदाय के लोग भेद–भाव, छुआ–छूत के शिकार हैं। इन्हें ग्रामीण क्षेत्रों में उपेक्षा भरी निगाहों से देखा जाता है। इनके लिए जीने की जो न्यूनतम आवश्यकताएँ हैं, उसका भी आभाव है। हमारे संविधान के धर्मनिरपेक्ष आदर्शों के विपरीत कई जगहों पर धार्मिक समुदायों के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। हमारा देश आर्थिक रूप से तो समृद्ध हो रहा है लेकिन गरीबों और अमीरों के बीच खाई बढ़ती जा रही है। कुछ लोग अच्छे–अच्छे घरों में सारी सुविधाओं से युक्त जीवन व्यतीत करते हैं तो कुछ लोगों को जीतोड़ मेहनत के बाद भी दोनों शाम का खाना नसीब नहीं होता है। अमीर लोग अपने बच्चों के साथ स्वास्थ्य लाभ लेने के लिए पहाड़ों पर छुट्टियाँ बीताने जाते हैं लेकिन गरीबों को इलाज के लिए डाक्टर तक उपलब्ध नहीं है। अमीर अपने बच्चों को विदेशों में पढ़ाते हैं और बेहिसाब खर्च करते हैं लेकिन गरीब अपने बच्चों को स्कूल भेजने में भी असमर्थ पाते हैं।

चर्चा करें–कुछ लोग अपने बच्चों को स्कूल क्यों नहीं भेज पाते। इस विषय पर अपने शिक्षक से भी सहयोग ले सकते है।

आप पढ़ चुके हैं कि हमारा संविधान भारत के सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है, सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में पिछड़े हुए लोगों के सशक्तिकरण का प्रयास करता है, लेकिन स्वतंत्रता के समय हमारे राजनेताओं ने जो सपना देखा था क्या हम उसे प्राप्त कर पाये हैं? स्पष्ट रूप से नहीं। हम हर क्षेत्र में सफल होने का दावा नहीं कर सकते फिर भी हम विफल नहीं हैं।

क्या आपके भी सपनों का भारत ऐसा हो सकता है

क्या आनेवाले दिनों में हमारा भारत ऐसा हो सकता है, जहाँ गाँव और शहरों के बीच का अन्तर कम हो जाएगा। ऐसा भारत जहाँ कृषि, उद्योग और रोजगार बेहतर तालमेल के साथ काम करें, ऊर्जा (बिजली) सड़क, आवास और पानी सबके लिए उपलब्ध हो। भारत ऐसा राष्ट्र बने जहाँ सभी का इलाज हो। यहाँ की सरकार भरोसेमंद पारदर्शी और भ्रष्टचार मुक्त हो। यहाँ से गरीबी और निरक्षरता जड़ से समाप्त हो जाए। बच्चे और महिलाएँ अत्याचार और शोषण से मुक्त हो और समुदाय का रहनेवाला हर व्यक्ति अलग–अलग महसूस न करें।

एक स्वतंत्र विदेश नीति की चाह



जिस समय भारत को आजादी मिली तब तक दूसरे विश्व युद्ध की तबाही को कुछ ही समय हुआ था। 1945 में गठित की गई नई अंतर्राष्ट्रीय संस्था – संयुक्त राष्ट्र – अभी अपने शैशवकाल में थी। 1950 और 1960 के दशकों में शीत युद्ध का उदय हुआ, शक्तिशाली देशों के बीच प्रतिद्वंद्विता पैदा हुई और अमरीका व सोवियत संघ के बीच वैचारिक टकराव गहरे होते गए। फलस्वरूप दोनों देशों ने अपने-अपने समर्थक देशों को मिलाकर सैनिक गठबंधन बना लिए। यही समय था जब औपनिवेशिक साम्राज्य ध्वस्त हो रहे थे और बहुत सारे देश स्वतंत्रता प्राप्त कर रहे थे। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू नवस्वाधीन भारत के विदेश मंत्री भी थे। उन्होंने इस संदर्भ में स्वतंत्र भारत की विदेश नीति की रूपरेखा तैयार की। गुटनिरपेक्ष आंदोलन इसी विदेश नीति का मूल आधार था।

मिस्र, यूगोस्लाविया, इंडोनेशिया, घाना और भारत के राजनेताओं के नेतृत्व में गुटनिरपेक्ष आंदोलन में दुनिया के देशों से आह्वान किया कि वे इन दोनों मुख्य सैनिक गठबंधनों में शामिल न हों। परंतु गठबंधनों से दूर रहने की इस नीति का मतलब "अलग-थलग" या "तटस्थ" रहना नहीं था। अलग-थलग रहने का मतलब था कि विभिन्न देश अंतर्राष्ट्रीय मामलों से दूर रहें जबकि भारत जैसे गुटनिरपेक्ष देश तो अमेरिकी और सोवियत गठबंधनों के बीच सुलह-सफाई में एक अहम भूमिका अदा कर रहे थे। इन देशों ने युद्ध को टालने के प्रयास किए और अकसर युद्ध के खिलाफ मानवतावादी और नैतिक रवैया अपनाया। परंतु विभिन्न कारणों से भारत सहित बहुत सारे गुटनिरपेक्ष देशों को युद्ध का सामना करना पड़ा।

1970 के दशक तक बहुत सारे देश गुटनिरपेक्ष आंदोलन के सदस्य बन चुके थे।



चित्र 13

भारत को विकसित बनाने के लिए हमें पूरी ईमानदारी और निष्ठा से काम करने की जरूरत है। कृषि और खाद्य प्रसंस्करण, शिक्षा और स्वास्थ्य सुरक्षा, सूचना और संचार तकनीक, भरोसेमंद इलेक्ट्रीक पावर, तकनीकी आत्मनिर्भरता आदि क्षेत्रों में सामंजस्य स्थापित करना ही होगा। हमें गाँवों के तरफ लौटकर मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध करानी होगी जो आज शहरों में उपलब्ध है। अगर शहर की सुविधाएँ गाँवों में आईं तो विदेशों में काम कर रहे लोग अपने देश लौटेंगे और भारत को समृद्ध बनाएँगे।

अभ्यास

आइए फिर से याद करें–

1. सही विकल्पों को चुनें–

(i) "वर्षों पहले हमने भविष्य को प्रतिज्ञा दी थी" किसके भाषण का अंश है?

(क) महात्मा गांधी (ख) जवाहरलाल नेहरू

(ग) राजेन्द्र प्रसाद (घ) बल्लभ भाई पटेल

(ii) आजादी के समय भारत के पास कौन सी समस्या नहीं थी?

(क) देशी रियासतों के विलय (ख) शरणार्थी की समस्या

(ग) पुनर्वास की समस्या (घ) नेतृत्व की समस्या

(iii) इनमें से कौन सही नहीं है?

(क) आजादी के समय देश की आबादी लगभग 34.5 करोड़ थी।

(ख) भारत खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर था।

(ग) 90 प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर थी।

(घ) भारत में उद्योग की कमी थी।

(iv) विभाजन के समय सबसे बड़ी समस्या क्या थी?

(क) धार्मिक उन्माद (ख) गरीबी (ग) जातिवाद (घ) बिजली

(v) भाषा के आधार पर सबसे पहले किस राज्य का गठन हुआ?

(क) उत्तर प्रदेश (ख) हिमाचल प्रदेश (ग) आंध्र प्रदेश (घ) तमिलनाडु

(vi) "अगर हिन्दी उनपर थोपी गई तो बहुत सारे लोग भारत से अलग हो जाएंगे" किसने कहा?

(क) राजगोपालाचारी (ख) सरदार पटेल (ग) राधाकृष्णन (घ) कृष्णमाचारी

(vii) 'संपूर्ण क्रांति' का नारा किसने दिया?

(क) जयप्रकाश नारायण (ख) विनोबा भावे (ग) महात्मा गांधी (घ) अन्ना

हजारे

(viii) भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का विरोध किसने किया?

(क) जवाहरलाल नेहरू (ख) बल्लभ भाई पटेल

(ग) उपरोक्त दोनों (घ) किसी ने नहीं

(ix) पोखरण–1 का परीक्षण किसके प्रधानमंत्रित्व काल में हुआ?

(क) जवाहरलाल नेहरू (ख) इंदिरा गांधी

(ग) मोरारजी देसाई (घ) अटल बिहारी वाजपेयी

(x) संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में किसने हस्ताक्षर किया?

(क) जवाहरलाल नेहरू (ख) राजेन्द्र प्रसाद

(ग) महात्मा गांधी (घ) वल्लभ भाई पटेल

आइए विचार करें–

(i) आजादी के समय भारतीय कृषि किस पर निर्भर थी?

(ii) आजादी के समय सबसे बड़ी समस्या क्या थी?

(iii) हिन्दी भाषा का विरोध किसने किया?

(iv) भाषायी आधार पर बनने वाले पाँच राज्यों के नाम बताएँ।

(v) योजना आयोग का गठन कब किया गया?

आइए करके देखें–

(i) हमारे संविधान में देश की एकता एवं अखण्डता का भरपूर ख्याल रखा गया है। इस विषय पर वर्ग में सहपाठियों के साथ चर्चा करें।

(ii) आज हमारे देश की स्थिति क्या है? हम कहाँ तक सफल रहे हैं? इस सम्बंध में अपने विचार से सहपाठियों को अवगत कराएँ।

अध्याय - 14

हमारे इतिहासकार कालीकिंकर दत्त 1905-1982

आप पिछली कक्षाओं में भारत के प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास से संबंधित बिहार के कुछ महान इतिहासकारों के बारे में पढ़ चुके हैं। इस कक्षा में आप आधुनिक भारत के इतिहास लेखन पर काम करने वाले इतिहासकार डा० कालीकिंकर दत्त के बारे में पढ़ेंगे।

बिहार में इतिहास विषयक शोध कार्य करने की आधुनिक परम्परा की शुरुआत सर यदुनाथ सरकार के समय से ही है, इसी श्रृखंला में डा० सुविमल चन्द्र सरकार के निर्देशन में शोधकार्य करनेवाले कालीकिंकर दत्त ने भविष्य में अपने आपको महान् इतिहासकार के रूप में स्थापित किया। डा० दत्त ने बिहार एवं बंगाल के अंतिम तीन शताब्दियों के इतिहास का गहन अध्ययन एवं मंथन किया। इनके प्रयासों के कारण बिहार का आधुनिक इतिहास सही स्वरूप में सबके सामने आया।



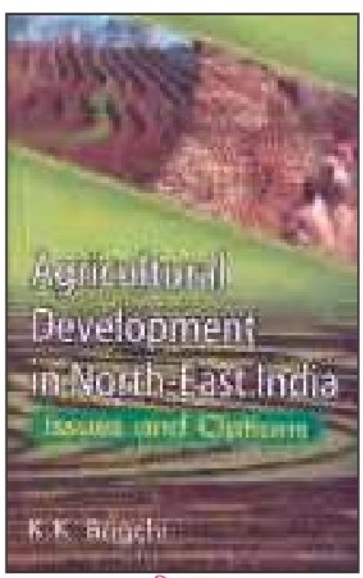
चित्र 1 – इतिहासकार के. के. दत्त

डा० कालीकिंकर दत्त का जन्म पाकुर जिला के झिकरहाटी गाँव में 1905 ई० में हुआ था। इनके पिता उच्च विद्यालय के शिक्षक थे। अपने पिता के विद्यालय महेशपुर उच्च विद्यालय से ही इन्होंने प्रवेशिका (मैट्रिक) की परीक्षा पास की। इन्होंने 1927 ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम०ए० की परीक्षा पास की। इन्होंने डा० एस० सी० सरकार के निर्देशन में पटना कॉलेज के इतिहास विभाग में बंगाल के आर्थिक इतिहास पर काम करना प्रारंभ किया। इस कार्य के लिए इन्हें बिहार एवं उड़ीसा सरकार की छात्रवृति भी मिली। इसी कार्य के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रेमचन्द्र छात्रवृति भी 1931 ई० में इन्हें प्राप्त हुई। 1930 में ये पटना कॉलेज इतिहास विभाग में व्याख्याता भी नियुक्त हुए। 'अलीवर्दी एण्ड हिज टाइम्स' नामक शोध–प्रबंध पर इन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय से पी०एच०डी० की उपाधि मिली। लगभग 40 वर्ष की उम्र में

(1944) इनकी प्रोन्नति शैक्षणिक सेवा वर्ग–1 में हुई। अगले ही साल सुविमल चन्द्र सरकार के अवकाश ग्रहण करने के बाद ये इतिहास विभाग के अध्यक्ष बन गए। इन्हें 1958 में पटना कॉलेज का प्राचार्य भी बनाया गया। 1960 ई० में अवकाश ग्रहण करने के बाद काशीप्रसाद जयसवाल शोध संस्थान के पूर्णकालिक निदेशक 28 फरवरी 1962 तक रहे एवं बिहार राज्य अभिलेखागार के प्रभारी निदेशक वे 7 मई 1972 तक रहे। डा० दत्त मगध विश्वविद्यालय के संस्थापक उप कुलपति (आजकल कुलपति) रहे। तीन साल की निर्धारित अवधि पूरा करने के बाद 14 मार्च 1965 को पटना विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने। दो पूर्ण कालावधि पूरा करने के बाद 1971 में सेवा निवृत हुए। अभी तक बिहार में लगातार इतने वर्षों तक किसी ने भी उप कुलपति पद का निर्वाह नहीं किया है। डा० दत्त शोध एवं सर्वेक्षण कार्य से संबंधित अन्य संस्थाओं से भी जुड़े रहे।

कई पदों पर आसीन होने के बावजूद डा० दत्त की प्रतिष्ठा का आधार लेखन एवं शोधकार्य ही था। उन्होंने पचास से भी अधिक पुस्तकों का लेखन एवं संपादन कार्य किया। इनके द्वारा कुछ पुस्तकों का लेखन उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों की जरूरतों को ध्यान में रखकर लिखी गई तो कुछ पुस्तकों का संपादन कार्यालय दायित्व एवं सरकारी–गैर सरकारी अनुरोध पर किया गया।

1. टेक्सट बुक ऑफ मोर्डन इंडियन हिस्ट्री, इलाहाबाद से 1934 में दो भागों में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को डा० दत्त ने सुबिमलचन्द्र सरकार के साथ मिलकर लिखा। इस पुस्तक का हिन्दी संस्करण का अनुवाद भारत का आधुनिक इतिहास (प्रथम भाग) एवं आधुनिक भारत वर्ष का इतिहास (द्वितीय भाग) नाम से प्रख्यात इतिहासकार रामाशरण शर्मा द्वारा किया गया।



चित्र 2

2. एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया तीन भागों में आर०सी० मजूमदार एवं एच०सी० राय चौधरी के साथ लिखी जिसका अनुवाद भारत का वृहत् इतिहास नाम से डा० योगेन्द्र मिश्र ने की।

इनकी महत्वपूर्ण सम्पादित पुस्तकों में

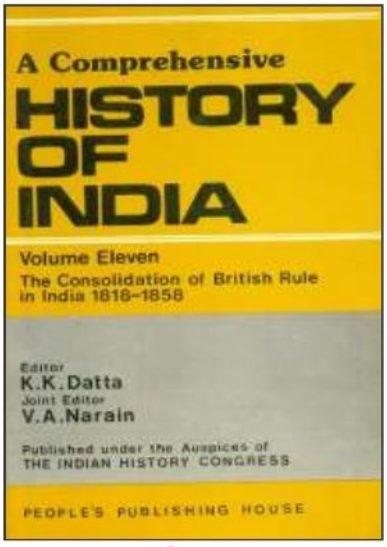
1. हिस्टोरिकल **मिस्सेलेनी**

2. अनरेस्ट एगेंस्ट ब्रिटिश रूल इन बिहार

3. राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज ऑफ महात्मा गांधी रिलेटिंग टू बिहार 1917–47

4. सम द् फरमान्स, सन्स ऐंड पर्वानाज़ (1718–1802)

5. इंट्रोडक्सन ऑफ बिहार आदि प्रमुख हैं।



चित्र 3

इनके द्वारा लिखित महत्वपूर्ण पुस्तकों में हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, तीन भागों में (1956–58) पटना से प्रकाशित हुई। यह बिहार सरकार द्वारा प्रायोजित पुस्तक थी। इस पुस्तक के सामग्री संकलन हेतु कई अभिलेखपालों को लगाया गया जिन्होंने बिहार के कोने–कोने से स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित दुर्लभ पुस्तकों, पंफलेटों बुकलेटों का संकलन किया। यह पुस्तक आजादी की लड़ाई का मुख्य स्रोत तो बनी ही, 1857 की क्रांति की शताब्दी ग्रंथ भी बन गयी। प्रथम खण्ड में 1857 से 1928, द्वितीय खण्ड में 1929 से 1941 तथा तृतीय खण्ड में 1942 से 1947 तक के इतिहास का विस्तृत विवरण है। इस पुस्तक के महत्व को देखते हुए बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी ने बिहार में स्वातंत्रय आंदोलन का इतिहास नाम से हिन्दी में अनुवाद कराया।

इसके अतिरिक्त इन्होंने **गांधी जी इन बिहार** (पटना 1969), **बायोग्राफी ऑफ कुँवर सिंह एण्ड अमर सिंह, राजेन्द्र प्रसाद** (नई दिल्ली 1970) के साथ–साथ **रिफ्लेक्शन ऑन द म्यूटिनी** (कलकत्ता 1966) की भी रचना की।

इनके द्वारा लिखित बहुत सामग्रियों का आज तक प्रकाशन नहीं हो पाया। ये **रिजनल रिकार्डस सर्वे कमिटी की स्थापना** के समय से ही जुड़े रहे। इस कमिटी का वार्षिक प्रतिवेदन आज शोधार्थियों के लिए स्रोत तक पहुँचने के साधन के रूप में काम कर रहा है। इनका पूरा लेखन बिहार के आधुनिक इतिहास लेखन के क्षेत्र में आधार की तरह है। इन्होंने

इतिहास की लगभग पचासों पुस्तकों का लेखन एवं संपादन किया। जिसमें उनकी सबसे महत्वपूर्ण कृती Comprehensive History of Bihar Volume -III (कम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री आफ बिहार खण्ड–III)।

डा० दत्त सदैव छात्रों के हित का ख्याल रखते थे। उन्हें प्रतियोगिता परीक्षा से लेकर शोधकार्य हेतु प्रोत्साहित करते थे। इन्होंने प्रतियोगिता परीक्षा (आई०ए०एस०) को ध्यान में रखते हुए आई०ए० से एम०ए० तक इतिहास के पाठ्यक्रम को संशोधित करवाया। आई०ए०एस० की परीक्षा में शामिल होनेवाले छात्रों के लिए कोचिंग की भी व्यवस्था कराई।

डा० कालीकिंकर दत्त ने इतिहास के क्षेत्र में देश–विदेश की कई संस्थाओं की स्थापना एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। के०पी० जयसवाल शोध संस्थान, अभिलेखागार, रिजिनल रेकॉर्डस कमिटी, ए० एन० सिन्हा समाज अध्ययन संस्थान आदि की स्थापना में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। खुदाबख्स ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी, सिन्हा लाईब्रेरी, रामकृष्ण मिशन, गांधी संग्रहालय के साथ भी इनका लम्बा सहयोग रहा।

ये बोधगया स्थित बौद्ध मंदिर के व्यवस्थापक समिति के सदस्य भी रहे। इन्होंने इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस की 1958 में त्रिवेंद्रम् कांग्रेस की अध्यक्षता भी की। कई वर्षों तक चेन्नई स्थित इण्डो ब्रिटिश हिस्ट्रोरिकल सोसाइटी के निदेशक रहे।

डा० के० के० दत्त की प्रतिभा एवं कार्यों को देखते हुए इन्हें समाज में मान–सम्मान भी खूब मिला। मोआर्ट स्वर्णपदक और ग्रिफित पुरस्कार प्राप्त करने के बाद पटना कॉलेज में जो अभिनन्दन समारोह हुआ आज तक का शिक्षकों एवं छात्रों का सबसे बड़ा जमावड़ा है। ये एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के मानद् सदस्य भी रहे। वर्द्धमान विश्वविद्यालय ने इन्हें डी०लिट्० की उपाधि भी प्रदान की।

इस प्रकार डा० दत्त अध्ययन–अध्यापन शोध और लेखन के उच्च मानदण्ड का निर्वाह करते हुए 24 मार्च 1982 को परलोक वासी हो गए। इन्होंने लेखन–कार्य को प्रतिदिन के धार्मिक अनुष्ठान की तरह माना। अपनी तरह कार्य करने के लिए अपने सहकर्मियों, छात्रों एवं लेखन कार्य से जुड़े लोगों को वे सदैव प्रेरणा देते रहें। इनका मानना था कि अगर प्रतिदिन एक पेज भी लिखा जाए तो प्रत्येक साल एक किताब लिखी जा सकती है।

